बन्द आसमान का आख़िरी दरवाज़ा

भगवान अटलानी



साहित्यागार, जयपुर



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

मूल्य : पैंतालीस रुपये

संस्करण : 1987
प्रकाशक : साहित्यागार
एस० एम० एस० हाईवे
जयपुर–302 003

मुद्रक : मनोज प्रिन्टर्स, गोदीकों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

BAND ASMAN KA AKHIRI DARWAZA

प्रिय मित्र प्रेम प्रकाश को

— भगवान अटलानी

मूल्य
©
संस्करण
प्रकाशक

मुद्रक

BAND

सिर्फ यह कि—

भगवान अटलानी एक ऐसा नाम रहा है जो हिन्दी कहानी के क्षेत्र में एक निश्चित रचनात्मक प्रतिबद्धता के साथ सामने आया..........यह वह समय था जब हिन्दी कहानी से अकहानी, सहज कहानी; अजनबीपन और अपरिचय के अंधड़ गुजर चुके थे—और भारतीय मानस अपनी प्रतीति अपने साहित्य से मांग रहा था। यहीं से भारतीय आम आदमी की पहचान का सवाल उठा था, व्यवस्था और तंत्र में घुट रहे मनुष्य की नियति का प्रश्न उठा था और यथा-स्थिति के विरुद्ध एक सक्रिय मानसिकता के निर्माण को जरूरी समझा गया था.... हिन्दी कथा साहित्य ने यहीं से अपनी रचनात्मकता की नई शर्तों के साथ आम आदमी की पक्षधरता को अपना आधार बनाया था और ऐसे में कहानियों के जो सर्जनात्मक स्वर उभरे उनमें भगवान अटलानी की कहानियों की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भागीदारी रही है।

नाटकीयता और बनावटी भाषा से अलग अटलानी ने अपने समय के मुहावरे को पकड़ा और कहानी की बौद्धिक परिपाटी से अलग उसे बोध का स्वर दिया वह बोध—जो गहरी संलग्नता और सहज मानवीयता से उपजा था, इसीलिए उनकी कहानियां साहित्य का दस्तावेज तो नहीं, परन्तु अपने समय के प्रताड़ित, दलित, शोषित और वंचित मनुष्य की वर्तमान नियति का दस्तावेज जरूर बन सकीं।

कुछ लोग साहित्य के लिए लिखते हैं, पर कुछ लोग अपने समय से क्षुब्ध होकर परिवर्तन के लिए लिखते हैं.......परिवर्तन का भी रचनायें स्लोगन बन जाने के खतरे से ग्रस्त रहती हैं और वे हताशों के बीच नाटकीय आशा का एक अविश्वसनीय संसार गढ़ती हैं, परन्तु भगवान अटलानी ने घुटन, धुयें और अंधेरे के बीच भी मनुष्य की जिजीविषा और जीने की शक्ति के आखिरी दरवाजे खोजने की अपनी मौलिक प्रतिबद्धता को नहीं छोड़ा—इसीलिए उनकी कहानियां अपने समय के आदमी और इंसानियत का साथ देती हैं.......और यही इन कहानियों की रचनात्मक सार्थकता है जो अपने समय और समय की नियति से निरपेक्ष नहीं है।

और यही भगवान अटलानी की कहानियों की शक्ति है। और यह शक्ति ही बन्द आसमानों के आखिरी दरवाजे खोलने की कारगर कुन्जी है। इत्यलम्....

W-26, ग्रीन पार्क,
नई दिल्ली–110 016

कमलेश्वर

मेरी ओर से......

साहित्य में विचारधारा विशेष के साथ प्रतिबद्धता का मुद्दा हमेशा उठाया जाता रहा है। मेरे एक मित्र प्रतिबद्धता के पक्ष में यहां तक कहते हैं कि जो लेखक विचारधारा विशेष को समर्पित लेखन नहीं करता, वह ऐसे मस्तूल की भाँति है जो एक न एक दिन डूब जायेगा। लेकिन प्रतिबद्धता के मसले पर कुछ प्रश्न मेरे मस्तिष्क मे अपनी नोकें तीखी करते रहे हैं। क्या विचारधारा विशेष के साथ प्रतिबद्धता लेखक को चारों ओर से बन्द नहीं करती ? उसकी सुग्राहिता के तेवर एकायामी होकर नही रह जाते ? एक स्तर पर जब प्रतिबद्धता कट्टर पक्षधरता में परिणत हो जाती है, सम्बन्धित विचारधारा को मसीहाई अन्दाज में आरोपित करने की विचारणा गुण-दोष मे अन्तर नहीं करती। इस मुकाम पर प्रतिबद्धता धर्मान्धता का पर्याय होती है।

मेरा लेखक अपने सम्पूर्ण सम्बन्धों, सम्पर्कों और दबावों के बीच हमेशा विचारधारा विशेष से असम्पृक्त रहने की चेष्टा करता रहा है। ऐसा नहीं कि आम आदमी की तकलीफ मेरे लेखक की तकलीफ नहीं बनी या आम आदमी का शोषण मेरे लेखक को आन्दोलित नही करता या आम आदमी की मानसिक उथल-पुथल मेरे लेखक को उद्वेलित नही करती रही। ऐसा भी नहीं कि ऐसे तकलीफजदा या उद्वेलन के क्षणों मे मेरे लेखक ने जो कुछ लिखा उसमे खुद को एक विचारधारा विशेष से तोड़ने की बाकायदा कोशिश की गई हो। लेकिन मेरे लेखक ने उस चौहद्दी मे कैद होकर लिखना, लिखते चले जाना कभी स्वीकार नही किया। शायद इसीलिये मेरी रचनायें कथ्य और विचार के स्तर पर एक-दूसरे को दोहराती नजर नही आतीं।

मेरी रचनाओं का कथ्य कल्पना से नहीं, जीवन से जुड़ता है। जिन्दगी के जिस नुक्ते ने, काल के जिस वक्फे ने, जीवन-दर्शन के जिस सोच ने, मानव मन की जिस पीड़ा, शोक या आल्हाद की जिस लहर ने मुझे छुआ है, मेरी रचनायें उसकी सीधी अभिव्यक्ति हैं। मेरी आस्था है, व्यक्ति का उज्जवल उसके अंधेरे से बड़ा होता है। कमजोरियों पर हावी होने की कोशिश इन्सान का मूल संस्कार है। मन, मस्तिष्क और विचारों के खिड़कियाँ-दरवाजे खोलकर हवा के हर झोंके का मैं स्वागत करता हूँ।

इसीलिये विचारधारा विशेष के सन्दर्भ में न सही किन्तु आम आदमी को समझने, उसकी मानसिकताओं का साझीदार बनने के सन्दर्भ में मैं प्रतिबद्ध हूँ।

भगवान अटलानी

'भगवान-भवन'
ए-130, आदर्श नगर, जयपुर–302 004

अनुक्रम

———

सजा

ऐसी कोई सम्भावना तब तुम्हारे जहन में क्यो नही उभरी ? क्यों अपनी नाक ऊंची रखने के चक्कर में तुमने किसी दुष्परिणाम की कल्पना तक नही की ? बड़ा समझदार और होशियार मानते हो न अपने आप को ? हेम की जान लेकर साबित की है तुमने अपनी समझदारी । वाह रे दम्भी आदमी ! क्या कहने है तुम्हारी समझदारी के ।

तुम नाटक बड़ा अच्छा करते हो । मान गए । तुम्हारे मां-बाप आए, ससुराल वाले आए । हमउम्र साता आया, लंगोटिया यार आए । सबको धत्ता बता गए तुम । किसी को हवा भी नही लगने दी तुमने कि कारण तलाश करने की जरूरत नहीं है क्योंकि कारण का ताना-बाना बुनने वाला आदमी खुद इसका कारण है ।

तुम सोचते हो, तुम्हारी इज्जत बनाने या बिगाड़ने की शुरूआत अपने आप से करते हो । तुम समझते हो, इस बात को भूल जाओगे । नही । घर ताउम्र तुम्हें काटने को दौडेगा । बिस्तर तुम्हें लीलने की कोशिश करेगा । हर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तुम्हारे गले में अटकने लगेगा । कपडे तुम्हे निगलेंगे । दिन आग बनकर उगेगा । रातें परछाइयां बन जाएंगी । दुनिया को धोखा दे सकते हो, तुम अपने आपको धोखा नही दे सकते ।

अरे, हेम तो तुम्हें पल-पल, कदम-कदम पर याद आएगी । कितनी नेक लड़की थी वह । दूसरी शादी की न अगर तुमने तो पता लग जाएगा कि सीलवेस और ट्रेल में क्या फर्क होता है । तुम्हारी हर जायज-नाजायज, अच्छी-बुरी जिद को मानने वाली हेम जैसी लडकी तुम्हें पत्नी के रूप में मिली, तुम्हारा सौभाग्य था । अब ख्वाब में भी मत सोचना ऐसी पत्नी के लिये । दफ्तर की जगह पिकनिक में चले गए तो कोई चिन्ता नही । होटलबाजी करते रहे तो फिक्र नहीं । गप्पे मारते रहे तो गम नही । घर आठ बजे पहुंचो या बारह बजे मुस्कराकर प्रतीक्षा करती मिलती थी तुम्हें हेम । कभी उसने मुह खोलकर कहा भी नहीं तुमसे कि तुम्हारे इन्तजार में बैठे-बैठे उसकी आँखें पथरा जाती हैं, दिल घबड़ाने लगता है, दिमाग बुरी तरह परेशान होकर थक जाता है ।

कई बार तुम देर से लौटे हो । खाना खाकर अखबार देखते रहे हो । बिस्तर

पर जाने के बाद तुम्हें पता लगा है कि हेम बुखार में जल रही है। हँसते, मुस्कराते तुम्हारी सेवा करने वाली वह सहनशील लड़की अन्दर ही अन्दर घुलती रही। खोखली होती रही। तुम्हारी लापरवाही, तुम्हारा मनमानापन, तुम्हारी स्वेच्छाचारिता ने उसे जर्जर बना दिया।

ज्यादती करने में कोई कसर छोड़ी तुमने ? पाँच साल के विवाहित जीवन मे एक तरफ तुमने उसकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, दूसरी ओर उसकी गोद सप्रयास खाली रखी। कभी सोचा तुमने कि अपना सारा दिन वह कैसे गुजारती होगी ? किलकारियो के सहारे तो विधवाएं पहाड़ों का सामना करने का बल पाती देखी गई हैं। तुमने हेम को एकान्तवासिनी, निर्वासिनी बनाकर एक खुली जेल में कैद कर दिया। सिर्फ एक साल पुरानी बात है, ज्यादा समय नहीं हुआ। तुम्हे अच्छी तरह याद होगा। तुम हेम को जबरदस्ती "अबोर्शन" के लिये ले गए थे। गर्भवती नही हुई थी तब तक फिर भी ठीक था। पहली सन्तान का मानसिक सुख दारुण पीड़ा मे बदल दिया तुमने हेम के लिये। "मेरे पास जीवन की निश्चित योजनाएं हैं। मैं एक सेन्टीमीटर भी इधर-उधर नहीं हो सकता उससे। अभी बच्चा नही चाहिये।"

लो, चलो अपनी गाड़ी हुई पटरा पर। करो कार्यान्वित अपनी योजनाएं। क्या गलत कहा था हेम ने कि तुम तुनक गए ? तुम खुली छत पर सरेआम उसे अपने साथ संभोग के लिये विवश कर रहे थे। झूठी तसल्ली के लिये ही सही, मगर वश्याओं के अड्डों पर भी चारपाइयों के बीच फटे-पुराने पर्दों की आड़ होती है। तुम एक विवाहित औरत हो जो अभी माँ भी नही बनी। छत पर बिछे कम से कम दस बिस्तरों की खुली या बन्द आँखों मे बेपर्दा करने पर तुले थे। एक तो तुम्हें ऐसा बेहूदा प्रस्ताव रखना ही नही चाहिये था। फिर चलो, तुमने ऐसा कुछ चाहा भी तो हेम की इन्कारी को चुनौती नहीं मानना चाहिये था। वह गरीब क्या चुनौती देती तुम्हें ? ऐसा कोई अधिकार कभी दिया था क्या तुमने उसे ?

जिस रात पत्ते खेलकर लौटते हो, तुम अलग ही रंग में होते हो। एक विचित्र कामना, उद्दाम हवस तुम में कलाबाजियां मार रही होती हैं। दो-चार पैग भी तुम्हारे अन्दर होती ही हैं ऐसे अवसरों पर। हारकर आओ या जीतकर तुम तोड़ने मरोड़ने की धुन में रहते हो। ठीक है, तुम्हारा मूड है। तुम किसी गैर औरत के पास नही जा रहे, अपनी पत्नी के पास जा रहे हो। मगर तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारी पत्नी के भी कुछ मूड हो सकते हैं। उसकी भी कोई पसन्द-नापसन्द हो सकती है। तुम्हें मगर दीन-दुनिया का होश नही होता, अपनी पर उतारू होते हो इसका मतलब वह भी बेशर्म होकर तुम्हारे साथ नंगी नाचे ? उसकी इज्जत नहीं है ? मगर तुम ये बातें सोचो तब न ? तुम तो सिर्फ अपने बारे में सोचते हो। तुम्हारी इच्छा पूरी होनी चाहिये। तुम्हारे मूड के अनुसार काम होना चाहिये।

तुम पति हो। पत्नी के सामने हर मामले में तुम्हारा वर्चस्व स्थापित होना चाहिये। दरअसल तुम ऐसी पत्नी के योग्य नहीं थे। तुम्हें लड़ने-भिड़ने, अपनी चलाने वाली पत्नी मिलनी चाहिये थी। कोई और आदमी अगर तुम्हारी जगह होता तो हेम की पूजा करता। तुमने उसकी सादगी और सेवापरायणता का दुरुपयोग किया। ज्यादा जिद्दी बन गए। ज्यादा नखरेबाज हो गए। ज्यादा समझदार और ऊंचा मानने लगे, खुद को।

अब मानलो, कोई देख ही लेता। मोहल्ले भर में बातें बनती। पास-पड़ौस की औरतें हेम को टोकती, ताने मारती, मजाक उड़ाती। तुम्हारा क्या था? तुम्हे तो सामने आकर कोई कहता नही। तुम्हें पता है, जिस मकान में तुम रहते हो उसमें तुम्हारे अलावा सात किरायेदार और रहते हैं। यही चोचले पूरे करने थे तो कोई अलहदा फ्लेट ले लिया होता। अलग फ्लैट ले सको, इतना पैसा जेब में नहीं है। पत्नी की परेशानियां महसूस कर सको, इतनी समझ दिमाग में नही है। अब कोई क्या करे तुम्हारा?

तुम्हें हेम की बात अच्छी नहीं लगी तो क्यों नही लगी? बताओ। उसने कोरा इन्कार तो किया नहीं था। कह रही थी, कमरे में चले चलो। फिर आकर छत पर सो जाएगे। यह बात मानने मे तुम्हारा क्या घिसता था भला? मगर कैसे मानते? वेद वाक्य गलत न हो जाता? तुम्हारी नाक न कट जाती पत्नी के सामने उसकी नाक दुनिया के सामने कट जाए चिन्ता की कोई बात नही। तुम्हारी नाक पर खरोंच नही आनी चाहिये। अब तो खुश हो न?

एक आदमी जिद्दी होता है। एक महाजिद्दी होता है। एक महाजिद्दी था चाणक्य। शिखा न रहते हुए भी जिसकी शिखा का जिक्र तुम अक्सर करते रहते हो। चाणक्य महाजिद्दी जरूर था मगर तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं था। खरे-खोटे, भले-बुरे की समझ उसमे थी। इसीलिये जहां वह नन्दवंश का समूल नाश कर सका वही चन्द्रगुप्त जैसे शासकों का निर्माण भी कर सका। तुम हेम जैसी अबोध और मासूम लड़कियों की हत्या तो कर सकते हो किन्तु किसी चन्द्रगुप्त का निर्माण करने की क्षमता तुम में पैसा भर भी नहीं है। पत्थर को हीरा क्या बनाओगे तुम हीरों को तोड़ने वाले बेकद्र आदमी?

करेंगे चाणक्य से अपनी तुलना और होश नहीं है परिणाम-दुष्परिणाम की कल्पना करने का भी। हेम ने तुम्हें महत्व क्यों नही दिया? लोकलाज जैसी तुम्हारी तुलना मे तुच्छ चीज को महत्व दे दिया। उसकी इतनी हिम्मत हो कैसे गई? सजा दी उसको। ऐसी सजा दो कि वह कांप उठे। भविष्य मे कभी सोच भी न सके तुम्हारी शान में कोई गुस्ताखी करने वाली बात। कभी सिर उठाकर तुम्हारी हुक्म-उदुली न कर सके।

मन ही मन प्रफुल्लित होते हुए तुमने सुना दी सजा। तुमसे बड़ा न्यायाधीश हुआ है आज तक इस दुनिया में? अपराध की तुम्हारी अपनी परिभाषा। तुम ही निश्चित करो कि अपराध हुआ या नहीं हुआ और अगर हुआ तो किस श्रेणी का, किस स्तर का हुआ। क्या और कितनी सजा मिलनी चाहिये उस अपराध की जिसे तुम सिर्फ तुम अपराध कहते हो। सब कुछ तय तुम करोगे। हेम क्योंकि शुरु से तुम्हारी हर इच्छा और हर जिद्द को मानती, पूरा करती रही है इसलिये तुम्हारे इस शक्ल का निशाना भी वही बनेगी।

है तुम में हिम्मत किसी एक आदमी से भी इस घटना पर राय लेने की? अपने किसी पत्लेवाज, दारूबाज दोस्त से ही पूछ कर देखो, अगर पूछ सको तो। सरेआम बेपर्दगी का विरोध करके हेम ने क्या गलत किया? विरोध भी कैसा? दबी जुबान का विरोध। खुलकर तो उस बेचारी ने कभी तुम्हारा विरोध किया ही नहीं। काश, वह ऐसा कर पाती। तुम्हारे मिजाज बस इतने ऊंचे नहीं होते जितने अब हैं। मगर उसके स्वभाव में यह बात थी नहीं। उसे तो एक ही काम आता था-तुम्हारी पूजा करना, तुम्हें खुश रखना।

तुम्हें खुश रखने की उसकी कोशिश का ही तुमने नाजायज फायदा उठाया। पाँच साल में एक बार भी तो लोहा नहीं लिया उसने तुमसे। जो औरत माँ बनने के लिये तरस रही हो, उसी को गर्भपात के लिये कहा जाय। मान जायगी? मानना तो दूर की बात है, सुनेगी ही नहीं, हाथ ही नहीं रखने देगी। वही तुम्हें खुश रखने की कोशिश। तुमने जो चाहा, उसने किया। रात को चौंककर उठना, सोते-सोते बड़बड़ाना, अचानक फफक्का मारकर रोना। इन बातों को तुमने मस्तिष्क पर पड़ने वाला प्रभाव इन लक्षणों से जाहिर होता था। डॉक्टर की सलाह छोड़ तुमने कभी इन चीजों पर गम्भीरता से विचार भी नहीं किया। संयोग मानकर हाँ हूं करके टाल गए।

"मैं ही तुम्हारा सब कुछ हूं। मेरी परवाह करो, सिर्फ मेरी। मैं अगर नाखुश रहा तो दुनिया को खुश रखकर क्या करोगी।" तुम्हारे इस विचार से कितनी दुर्गन्ध आती है, तुम नहीं समझ सकोगे। हेम समझती थी। यह दुर्गन्ध उसके दिमाग में घर कर गई थी। इस दुर्गन्ध का ही प्रभाव था कि वह टूटने लगी थी। मगर एक आस्था थी उसकी, तुम्हारी खुशी में खुश रहना ही सब कुछ है। नतीजा यह हुआ कि वह बिना कुछ कहे टूटती चली गई और तुम नगाड़े बजा-बजाकर, आले फेंक-फांककर उसे तोड़ते-छेदते चले गए।

टूटने का यह नाकाबिले बर्दाश्त चरमबिन्दु था जिसे वह ढो नहीं पाई। वह सिर्फ एक घटना का शिकार नहीं हुई है, इस बात को तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना

चाहिये। यह एक सिलसिला था पांच साल अर्थात् साठ महीने अर्थात् एक हजार आठ सौ पच्चीस दिन लम्बा सिलसिला। इस सिलसिले में कितने घण्टे, कितने मिनट, कितने सेकिण्ड होते हैं, तुम खुद ही हिसाब लगा लो। ऐसे करोड़ों हिस्सों में धीरे-धीरे उसको मारा है तुमने। वह क्षण उस सिलसिले का चरम क्षण था कि हेम बेजान होकर गिर गई, उसके दिल की धड़कनें एकाएक खामोश हो गई। वरना उस दिलेर औरत ने मौत को हँस-हँस कर न जाने कितनी बार गले लगाया होगा। तुम मर्द हो न, पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के अंग। चलो, तुम एक बार नंगे होकर कमरे से निकलकर, सत्रह सीढ़ियां चढकर हम लोगों के बीच छि अपने बिस्तर तक आकर बताओ। कर दिखाओ एक बार ऐसा। तुम नही कर सकते ऐसा, ताकयामत नही कर सकते। और वही काम जो शक्तिशाली और महान् होकर भी तुम नही कर सकते ऊंची कुर्सी पर बैठकर तुम अकड़ के साथ हेम से कराने पर तुले थे। इस मुल्क में औरत आज भी मर्द के पांव की जूता है। तुम जूती को सिर पर थोड़े ही बैठाओगे? उसे नंगा करके कमरे से छत तक लाओगे ताकि तुम्हारे अहम् को चुनौती देने का दुस्साहस यह कभी न कर सके। वही किया तुमने।

तुमने आदेश न मानने और तुमसे ज्यादा लोकलाज की परवाह करने के जुर्म में हेम को कमरे में जाकर, वस्त्र विहीन अवस्था में छत पर आने की सजा सुनाई। अपनी शर्म, सकपकाहट, कसमसाहट को ताक पर रखकर तुम्हें खुश करने के लिए हेम यह भी करने को तैयार हो गई। उसकी इस तैयारी से ही तुम संतुष्ट नहीं हो सकते थे? बिना किसी जुर्म के इतनी बड़ी सजा स्वीकार करने वाली के समर्पण ने तुम्हें थोड़ा भी नही पिघलाया? उस पर अधिकार कूटने की ललक जो पहले ही तुम्हारी थी घमण्ड, तुम्हारी लोलुपता कहां चैन लेने देते तुम्हें?

बए, यहीं तुम मात खा गए। हेम नहीं लौटी। पहली और दूसरी सीढ़ी के बीच लुढ़की हुई उसकी लाश मिली तुम्हें। छलनी हुआ उसका कमजोर दिल इतना दबाव सह नहीं सका। ढह गया। लम्बे इन्तजार के बाद तुम नीचे उतरे। तब भी तुम यह सोच रहे थे कि हेम संकोचवश कमरे से बाहर नही निकल रही होगी। तुम्हे चुनौती पर चुनौती दिये जा रही है हेम, ऐसा लगता था तुम्हें। सीढियों में से नंगी हेम को गोद में उठाकर, कमरे में तुमने उसकी बेहोशी दूर करने की कोशिश की थी। लेकिन कोई बेहोश हो तो उसकी बेहोशी दूर करो न तुम। उसका खून हो चुका था तब तक। तुमने कर दिया था उसका खून।

और तुम कितने ठण्डे खून वाले आदमी हो। हेम को कपड़े पहनाए। रोशनी बुझाई। दरवाजा बन्द किया। सुबह तक छत पर अकेले पड़े सोने का दिखावा करते रहे। सुबह आँखें मलते हुए उठे सब लोगों के उठने के बाद। आराम से कमरे में आये और फिर हाय-तौबा मचाई। तुम्हारी, सिर्फ तुम्हारी वजह से हेम मर गई। मगर दुनिया का कोई कानून तुम्हें हाथ नहीं लगा सकता। दुनिया का

कोई ग्रादमी तुम्हारी तरफ सन्देह भरी ग्रंगुली नही उठा सकता। तुम्हें लोगों की सहानुभूतिया मिल रही हैं। इकतीस साल की भरी जवानी मेंग्र ाखिर तुम्हारी पत्नी की मृत्यु हो गई है। कौन नही दिखाएगा सहानुभूति ? एक बात बताग्रो। तुमने कही हेम की मृत्यु की कल्पना पहले ही तो नही कर ली थी ? दूसरी शादी करने में कोई दिक्क़त न ग्राए, यह सोचकर तुमने पिता बनने से किनारा-कशी की हो ? तुम सब कुछ कर सकते हो। सब कुछ सम्भव है तुम्हारे लिये। लगभग तय है कि जल्दी ही तुम्हारी शादी के लिये प्रस्ताव ग्राने शुरू हो जाएंगे। तुम थोडी उदासीनता का नाटक करोगे। थोड़ी बहुत ना-नू का दिखावा करोगे फिर इस ग्रन्दाज में गोया उस लड़की पर या मशविरा देने वालों पर ग्रहसान कर रहे हो, स्वीकृति दे दोगे। लगभग तय है कि तुम्हारी शादी हो जाएगी। हो सकता है लड़की खूबसूरत हो। हेम से भी ज्यादा खूबसूरत हो, यह भी संभव है।

लेकिन एक बात याद रखना। सब कुछ हो जाएगा मगर हेम जैसी लड़की तुम्हे फिर नही मिलेगी। तुम्हारी खुशी के लिये मर मिटने का जज्बा हो जिसमें ऐसी लड़की तुम्हें फिर नही मिलेगी। शादी तुम्हारी जरूर हो जाएगी। एक जिस्म तुम्हारे पास होगा जरूर लेकिन घर ताउम्र तुम्हे काटने को दौड़ेगा। बिस्तर तुम्हे लीलने की कोशिश करेगा। हर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तुम्हारे गले मे ग्रटकने लगेगा। कपड़े तुम्हे निगलेंगे। दिन ग्राग बनकर उगेगा। रातें परछाइयां बन जाएंगी। दुनिया को धोखा दे सकते हो तुम, ग्रपने ग्राप को धोखा नही दे सकते। ग्राखिर तुम कैसे भूल सकते हो कि एक नेक़बख्त, बेकसूर लड़की के तुम खूनी हो।



हत्या

थकावट के बावजूद यह नींद नही आ रही है, गांव के ऊबड़ खाबड़ कच्चे रास्ते पर कुल मिलाकर दो घंटे साइकिल चलानी पड़ी होगी। मगर अस्थि-पंजर ढीले हो गये हैं। चारों तरफ अन्धेरा है। इस गांव में तो बिजली भी नहीं है। दूर-दराज से कोई रोशनी की किरण तक चमकती नजर नही आती, उस पर यह नींद का न आना।

वैसे तो कई "सैडिसन" डिस्पेंसरी की आलमारी में है, एक गोली ही नींद के लिये काफी होगी। मगर मैं जानता हूं कि गोली खाकर सोने से कुछ नहीं होगा। नींद आ जायेगी तो सपनों मे वह अन्धेरी झोंपड़ी और उस झोंपड़ी में तड़पता, दवा के अभाव में दम तोड़ता मरीज मुझे घेर लेगा। ऐसी नीद आने से जागते रहना ज्यादा अच्छा है।

गोबर का ढेर। पानी का सड़ांध मारता खड्डा। भिन्न-भिन्न करते मच्छर। अनिश्चय की आशंकाओं से डरा सहमा, रूखा-सूखा भोजन। कमर तोड़ मेहनत। सुबह के धुंधलके से शाम तक अविराम मां-बाप, पत्नी और तीन बच्चों को जिन्दा रखने की चिन्ता। तीन रुपये रोज की दिन-ब-दिन घटती हुई मजदूरी। हाट-बाजार में बढ़ती हुई महंगाई। घिसटती सांसों को जीवित रखने की लड़ाई में बुरी तरह घायल एक मामूली सा निरवस्त्र आदमी-बीमार न हो तो जरूर होजाय। फिर जो बीमार है उसके ठीक होने की संभावना ही क्या है?

मैं साइकिल पर चला जा रहा हूं। इस गांव की डिस्पेन्सरी में आये आज दूसरा दिन है। प्राइवेट प्रेक्टिस के ख्याल से पहला केस। यहां आने से पहले एक सीनियर डाक्टर ने सलाह दी थी "गांव में कभी किसी से फीस मांगने की गलती मत करना। मरीज को देखकर, उसे अपने पास से दवा, इन्जेक्शन देकर, कीमत के नाम पर पन्द्रह-बीस रुपये वसूल कर लेना। दवा और इन्जेक्शन डिस्पेन्सरी से मुफ्त मिल ही जायेगी तुम्हें।"

सीख मैंने गांठ बांध ली थी। यों भी यहां नया-नया आया हूं, गांव की जनता को प्रभावित करने का काम पहले करना चाहिये। एक-दो केस अगर बिना लिये भी कर दूंगा तो यह आगे बात काम आयेगी। यही सब सोचता हुआ मैं साइकिल पर चला जा रहा हूं। रास्ता इतनी पगडंडियो में फट जाता है बार बार कि अगर मैं अकेला होऊं तो निश्चित भटक जाऊं। जो लड़का मुझे बुलाने आया था, आगे

आगे साइकिल चलाता हुआ रास्ता दिखा रहा है। अब तक शहर की पक्की सड़कों पर साइकिल चलाई है। कच्चे रास्ते पर साइकिल चलाते हुए यों लगता है जैसा शुरू में साइकिल सीखते समय लगा करता था। इधर-उधर आकड़े के पौधे या बबूल के पेड़ और बेर के झाड़ हैं। कहीं कहीं तो ये झाड़ इतना आगे झुक आये हैं कि कपड़े फट जाने या चेहरा छिल जाने का डर लगता है।

लड़का तेजी से साइकिल चला रहा है। इन रास्तों पर साइकिल चलाने की इसे तो आदत है। मगर मुझे साथ देने में बड़ा कठिनाई महसूस हो रही है। साइकिल के कैरियर पर "इमरजैन्सी" बैग लगा हुआ है। मुझे शंका होती है कि झटके खाकर अन्दर बहुत कुछ टूट-फूट गया होगा। रास्ते में साइकिल से उतरकर बैग खोलना मेरी "डिग-निटी" के अनुकूल नहीं लगेगा, यह सोचकर मैं आगे चलते लड़के को पकड़ने के लिये साइकिल के पैडल पर दबाव बढ़ा देता हूं।

पता नहीं मरीज कितना पैसे वाला है? गांव के लोगों को कहते हैं, घर की साज-सज्जा या पहनावे से आंकना बड़ा मुश्किल है। बाहर से फटे पुराने कपड़े पहने कंगाल सा नजर आने वाला आदमी भी झोपड़ी के कोने में कितना माल दबाये हुए है, कोई नहीं कह सकता।

अगर पता लग जाये कि मरीज क्या करता है तो उसकी कमाई का अन्दाज लगाया जा सकता है। फीस की बात न भी सोचूं मगर कम से कम दवा तो अपनी गांठ से न देनी पड़े। मैं और जोर लगाकर लड़के के ठीक पीछे आ जाता हूं।

"साइकिल बहुत तेज चलाते हो भाई। क्या नाम है तुम्हारा?" मैं शुरुआत करता हूं।

"होरी" वह शरमाई हँसी हँसता है।

"पढ़ते हो?"

"नहीं।"

"फिर क्या करते हो?"

"खेत पर काम करता हूं।"

"यह मरीज कौन है? तुम्हारा कोई रिश्तेदार है?"

"नहीं।"

"तब"?

"हम एकगांव के हैं।"

"अच्छा क्या करता है वह?"

"मजूरी"

"रोजाना क्या कमा लेता है ?"

"तीन रुपया"

"खाने वाले कितने हैं ?"

"वह कुछ सोचकर बताता है– "सात जीव ।"

"और कौन कौन हैं ?"

"माँ-बाप, आप, घरवाली है और तीन बच्चे ।"

"इनमें से और कोई नहीं कमाता ?"

"भौजी और बड़ा लड़का भी मजूरी करते हैं ।"

"इन दोनों को क्या मिलता है ?"

"ढाई रुपया भौजी को और दो रुपया लड़के को ।"

"फिर तो अच्छा कमा लेते हैं, वे लोग ।"

वह उदास हो जाता है, "मजूरी साल भर कहां मिले है, साहेब, फसल का चार महीना ही तो मिले है ।"

तीन, ढ़ाई, और दो, साढ़े सात रुपये रोजाना, सवा दो सौ रुपये महीना । मोटे अनाज का भाव भी इन दिनों सवा दो सौ से कम नहीं है । परिवार के सात सदस्य हैं, बड़ी मुश्किल से अपना काम चला पाते होंगे ।

मरीज की आर्थिक स्थिति का अन्दाज होते ही यह मुश्किल यात्रा, रास्ते की बीहड़ता और कुल मिलाकर चारों ओर का माहौल एकाएक मुझे असह्य लगने लगता है । केस पा जाने की अव्यक्त, गुप्त प्रसन्नता भुंझलाहट में बदलने लगती है ।

"तुम्हारा गांव कितनी दूर है अभी ?"

"वो सामने ही है, साहेब ।"

गदी सी पोखरनुमा बावड़ी, पनघट, घूंघट से मुंह ढके सिर पर घड़ा रखे पनघट से लौट रही औरतें हमें देखकर एक तरफ हो गई हैं ।

"होरी के संग आज यो जंटरमैन कौन है ? "

"नयो डागदर साहेब है । दीनू को देखने आयो है ।" जानकारी का सिक्का जमाता हुआ एक स्वर पीछे से आकर मुझे कोंच जाता है ।

खाक डागदर साहेब है मैं मन ही मन बड़बड़ाता हूं ।

साइकिल रेत में फंस गई है। होरी साइकिल पर बैठे बैठे ही ताकत लगाकर दस-पन्द्रह कदम आगे खींच ले गया है। मैंने जोर आजमाने की कोई कोशिश नही की है। साइकिल से उतर कर अपने साथ-साथ साइकिल को भी घसीटने लगा हूं।

यह जा रहा हूं मैं, केस देखने। जितनी मेहनत अब तक की है, उतनी ही लौटती समय फिर करनी पड़ेगी। "इमरजैन्सी बैग" मे कुछ टूट गया होगा तो जेब से भुगतना पड़ेगा। मरीज को चैकअप करना होगा। उसे दवा देनी होगी। टाइम खराब करना पड़ेगा। बदले में मुझे क्या मिलेगा? कोरा सिर दर्द। इस तरह हो रहा है मुहूर्त्त मेरी प्राइवेट प्रैक्टिस का।

होरी रुक गया है। उसके निकट आकर मैं भी रुक गया हूं। हमारे सामने एक खालिस खस्ता हालत झोपड़ी है। कोई पाँच फुट ऊंची, काली पड़ गई मिट्टी की दीवारें, सड़ी हुई भद्दी खपरैल, खोखो की लकड़ी का चरमराता, दरारों भरा ढहने को उत्सुक, ढीला ढाला दरवाजा, खपरैल के नीचे की एक बल्ली ठीक दरवाजे के ऊपर इस अन्दाज से बाहर निकली हुई कि थोड़ा सा चूकते ही खोपड़ी टूट जाये।

होरी अपनी साइकिल को स्टैण्ड पर लगाकर मेरे "इमरजैन्सी बैग" की तरफ लपका। मैं हाथ के इशारे से उसे रोक देता हूं। साइकिल स्टैण्ड पर खड़ी करके "इमरजैन्सी बैग" कैरियर से निकालता हूं।

होरी झोंपड़ी के दरवाजे में घुस गया है। अन्धेरा और मनहूसियत। मैं इस बात की सतर्कता बरतते हुए कि बल्ली या चौखट मेरे सिर से न टकराये। झुककर झोपड़ी मे पाव रखता हूं। तेज दुर्गन्ध का भभका अनायास मुझे पीछे धकेल देता है। हड़बड़ाहट मे मेरा सिर जोर से उछलकर बल्ली से टकरा जाता है। एक बारगी तो बिलबिला जाता हू। फिर स्वयं को संयत करके जेब से रुमाल निकालकर मैं नाक से लगाता हू।

दुर्गन्ध झेलने की मनःस्थिति बनाकर मैं झोंपड़ी में जाता हूं। नंगी चारपाई पर एक अट्ठाईस तीस वर्षीय कंकाल अधमरा सा पड़ा है। चारपाई के आसपास उल्टी के साथ निकली हुई बदबूदार गन्दगी है। खून के साथ मिली हुई। नाक को रुमाल से अच्छी तरह दबा लेने के बाद भी सड़ांध के कारण सिर भिन्नाने लगा है।

झोपड़ी मे सब कुछ अव्यवस्थित है। थेगली लगे हुए कपड़े मुड़े, निचुड़े बिस्तर, चक्की, रोगी की नंगी चारपाई, गंदगी मिलकर एक अजीब घिनौना दृश्य उपस्थित कर रहे हैं। होरी के बताये हुए इस परिवार के सब सदस्य रोगी के पास

पास हैं। सिवाय उसकी पत्नी के जो झोंपड़ी के कोने मे घूंघट निकाले हुए घुटनों में मुंह फंसाये बैठी है। बूढ़ा गमगीन सा चारपाई के सिराहने बैठा है। बुढ़िया और तीनों बच्चे चारपाई के पावों की तरफ हैं।

मेरे अन्दर घुसते ही बूढ़ा अपनी जगह उठ खड़ा होता है, और बुढ़िया वहा व्याप्त मातमी सन्नाटा तोड़ती हुई मेरी तरफ बढ़ आई है । मेरे अकेले बेटे को बचालो, वैद्य जी महाराज !"

असह्य सड़ांध को झेलने की कोशिश करते हुए बुढिया की कातर आंखें और वैद्य जी महाराज का सम्बोधन मुझे बेहद चिढ़ा जाता है। बुढिया को डाटने की इच्छा होती है तभी रोगी चारपाई की ईस पर छाती लगाकर उल्टी कर देता है। छीटों से बचने के लिए मैं तुरन्त दो कदम पीछे हट जाता हूं, बाद मे ध्यान आता है कि कच्चे फर्श पर जमा गन्दगी मे खून की मात्रा बढ़ गई है।

मैं गन्दगी से बचता हुआ रोगी के निकट जाता हूं। "इमरजेंन्सी बैग" खोलकर उसमें से टार्च निकालता हूं। झोंपड़ी में अन्धेरा और बेहद सीलन है । टार्च जलाये बिना "इमरजेंन्सी बैग" की स्थिति देख पाना भी मेरे लिये संभव नही है।

टार्च जलाता हूं। शुक्र है, इसमें कुछ टूटा नही है। मुझे तसल्ली होती है। टार्च की रोशनी रोगी की आंखों पर डालता हू। देखते ही चौक जाता हूं, लगता है, पानी की कमी के कारण कभी भी इसकी जान जा सकती है।

"कब से तकलीफ है इसको ? " मैं सतर्क हो गया हूं।

"कल रात से दस्त और उल्टियाँ होवे हैं। पानी की एक बूंद भी पेट मे टिके ना है।"

"अब तक कितनी उल्टियां हो चुकी होगी ? "

"बार-बार ही होवत है वैद्य जी महाराज अब तो खून भी गिरने लगी है।" बुढ़िया की आवाज भर्राई हुई है।

इन्ट्रवेनस ग्लूकोज इसकी पहली जरूरत है। उल्टियां रोकने का भी कोई उपाय करना चाहिये। मैं "इमरजेंन्सी केस" में से स्टैथोस्कोप निकालता हूं, हुक कान से लगाते हुए निर्देश देता हूं। "किसी साफ बर्तन में पानी गरम करो और ये फर्श भी साफ कर दो। बाहर से मिट्टी लाकर गन्दगी को ढक दो।"

एकाएक मुझे होस आता है। यह क्या करने जा रहा हूं मैं ? फीस मिलने की कोई उम्मीद यहां से है नही मेहनत को चलो,गोली मारो। मगर ये 'इन्ट्रावेनस इन्जेक्शन भी इसकी अपनी जेब से लगा दूं ? ऐसा ही करता रहा तो होली,

नौकरी, उल्टी रोकने का इन्जेक्शन इसको पहले देना पड़ेगा। खैर वह है भी डेढ़-दो रुपये की मगर ग्लूकोज के इन्जेक्शन तो महंगे पड़ जावेंगे।

मैं नुस्खा लिख देता हूं। तुम झटपट जाकर ये सुइयां ले आओ। अपने साथ पन्द्रह-बीस रुपये ले जाना, "स्टेथोस्कोप समेटते हुए मैं होरी से कहता हूं।

बूढ़े और बुढ़िया ने विवश नजरों से एक दूसरे को देखा। मैं मन ही मन भिनभिनाता हूं साले तुम लोगों को दवा के पैसे भी डाक्टर दे।

मैं अपने आप को नुस्खा लिखने में व्यस्त कर देता हूं। कागज होरी को देता हूं। बुढ़िया उसे साथ लेकर झोपड़ी के बाहर चली गई है। बाहर से फुसफुसाहट सुनाई देती रहती है फिर आवाज आती है। "बहू, जरा बाहर तो आइयो।"

मरीज की पत्नी पहली बार हिली है। अब तक कपड़ों की निर्जीव गठरी की तरह वह सिमटी हुई बैठी रही थी। उसके उठते ही पैरों में पड़े चांदी के दो मोटे कड़े आपस में टकरा कर बज उठे हैं। जल्दी ही बूढ़े को भी बुलावा आता है। उन डरे हुए तीन बच्चों की उपस्थिति के बावजूद बूढ़े के बाहर जाते ही मुझे झोपड़ी मे बेहद सन्नाटा सा महसूस होता है। मौत का सन्नाटा।

बुढ़िया और उसकी बहू अन्दर आती है। इस बार कोई आवाज न सुनकर मैं बहू के पावों की तरफ देखता हूं, वहा कड़े नही हैं।

बूढा शायद होरी के साथ चला गया है।

मेरे निर्देशों का पालन प्रारम्भ हो गया है। बुढ़िया बाहर से मिट्टी लाकर चारपाई के नीचे बिछा रही है। उसकी बहू अल्यूमी नियम के कटोरे मे पानी भरकर बाहर चली गई है। मैं सिरिन्ज और निडल लेकर बाहर आता हूं अल्यूमीनियम का कटोरा छानों पर रखा हुआ है। मैंने झुककर देखा कि पानी साफ है या नहीं फिर सिरींज और निडल पानी में डाल देता हूं।

कटोरे को किसी बर्तन से ढक दो, मैं अन्दर आते हुए कहता हूं।

तभी रोगी फिर उल्टी करता है। पहले की तरह मैं झटके से पीछे हट जाता हू। लेकिन इस बार कुछ छींटे मेरी डबल नेट की बैलबाट को खराब कर गये हैं। मैं गुस्से भरी नजरों से पहले हांफते हुए रोगी की तरफ और फिर बुढ़िया की तरफ देखता हूं। मेरी आंखें बुढ़िया की आंखों से टकरा जाती हैं। वहां बेचैनी, आतंक, याचना, और विवशता का मिलाजुला रूप है। न जाने क्यों वे आंखें मुझे छेदती सी महसूस होती हैं। मैं जेब से रुमाल निकालकर छींटे साफ करने लगता हूं। बैलबाट पर खून के दाग हैं। अभी-अभी हुई उल्टी की तरफ देखता हू। वहां भी खून के अलावा कुछ नहीं है।

"इसकी उल्टी मे खून क्यों आते हैं, वैद्य जी महाराज ?" बुढ़िया पूरी तरह घबड़ा गई है।

अगर बैग में से ग्लूकोज के इन्जेक्शन निकालकर मैंने इसे नहीं लगाये तो यह मर जायेगा। बलवती इच्छा के अधीन मेरे हाथ बैग की तरफ बढ़ते हैं। मगर तुरन्त स्वयं को रोक लेता हू। मेरा तो पेशा ही ऐसा है। किस किस पर दया करूंगा? घास से दोस्ती करने लगेगा तो घोड़ा पेट कैसे भरेगा?

बुढिया कोई जवाब न पाकर बुझी-बुझी सी मिट्टी लाने बाहर चली गई है। उसकी बहू ने उबलते हुए पानी का कटोरा लाकर मेरे पास रख दिया है। मैं बैग खोलकर इन्जेक्शन लगाने की तैयारी करने लगता हू।

बुढिया हल्के हाथ से मिट्टी बिछा रही है। उसकी बहू पूर्ववत् कोने मे आकर बैठ गई है।

"होरी गयो ?" बुढिया की आवाज सुनकर मैं दरवाजे की तरफ देखता हूं।

बूढा वापस लौट आया है। उसका सफेद बालों वाला सिर हाँ में हिल रहा है।

मैं इन्जेक्शन तैयार करके बुढिया को टार्च से रोशनी डालने को कहकर बूढ़े को अपने पास बुलाता हूं। रोगी की नस उभारकर, बूढ़े को टार्च पकड़ाकर मैं "प्रिक" करता हूं। खून सिरिंज में उतरने लगा है। मैं धीरे-धीरे इन्जेक्शन लगा देता हूं।

"होरी कितनी देर में आयेगा ?" मैंने बूढ़े से पूछा।

"जल्दी ही आ जावेगो," वह मरा मरा सा जवाब देता है।

"माँ पानी"..........." रोगी ने धीरे से कहा है।

बुढ़िया पानी लेने लपकती है कि मैं उसे रोक देता हूं, नहीं, थोड़ी देर पानी नहीं देना है। वरना फिर उल्टी हो जायेगी।"

बुढ़िया रुक गई है। लड़का बड़ी प्यासी निगाहों से एकटक माँ को देख रहा है। अपनी आँखें चुराती हुई बुढ़िया, लड़के के सिराहने जाकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगती है।

लड़के की प्यासी निगाहें ऊपर उठकर फिर माँ को ताकने लगी हैं। उसका मुंह खुला हुआ है। बुढ़िया अगुलियां फेरते फेरते बेटे पर झुक आई है।

"टप-टप" दो आंसू बुढिया की आखों से निकलकर सीधे लड़के के मुंह में जा गिरे हैं।

लड़के ने जीभ को होठों पर फेरने की कोशिश की है कि अचानक उसकी आँखें उलट गई हैं। सिर झटके के साथ बाईं ओर लुढ़क गया है। मैं फुर्ती से उसके हार्ट पर झुककर हाथ से पल्स पकड़ने की चेष्टा करता हूं। वहां कुछ भी नहीं है। पथराई आँखों मे प्यास लिये एक मुर्दा मेरे सामने है, बस।

बुढ़िया चीख के साथ लड़के के ऊपर गिर गई है। बूढ़े ने असहाय सा बैठकर चारपाई की पाटी पर अपना सिर टिका दिया है। वह दौड़ती हुई आई है और अपने पति पर बिलखकर विलाप करने लगी है। बड़ो को रोता देखकर बच्चे भी चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे हैं। झोंपड़ी मे कोहराम मच गया है।

मैं सिर झुकाकर झोपड़ी के बाहर निकल आता हूं, रुदन लोगो को खींचने लगा है। आने वालो में से एक हकलाकर मुझ से पूछता है।" "दीनू....दीनू मर गयो का ?"

मेरे जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही वह झोपड़ी मे घुस गया है। मैं यहा के इस वातावरण से, इस गांव से जल्दी से जल्दी निकल जाना चाहता हू। पहला केस था वह भी मर गया, फीस छोड़ी, अपनी जेब से इन्जेक्शन लगाया, इतना करने के बाद भी बदनामी पल्ले पड़ेगी।

अन्दर जाने की बिलकुल इच्छा नहीं है। मगर "इमरजेंसी बैग" झोपड़ी मे ही रह गया है। अन्दर जाता हूं वहां विलाप और सान्त्वनाओ का तूफान चल रहा है।

आगन्तुकों में से एक ने मेरी तरफ देखा है। "जरा मेरा बैग उठा दीजिये।"

बूढ़े का सिर अब तक पाटी पर झुका है। मेरी आवाज सुनकर वह ऊपर देखता है।

मैं बैग लेकर बाहर निकलता हू तो वह भी मेरे पीछे बाहर आ जाता है।

"मुझे अफसोस है बाबा, मैं आपके लड़के को नही बचा सका।"

"मौत को आज तक कौन रोक सको है डागदर जी," कहकर वह फफक फफक कर रो दिया है।

मैं असमंजस की स्थित में चुपचाप उसके पास खड़ा रहता हूं। वह जल्दी ही स्वयं को सम्भालकर धोती के पल्ले से अपने आंसू पोंछ लेता है। फिर बड़ा सकुचाता हुआ वह कहता है। "डागदर जी हम गरीब आपकी और कोई सेवा तो नहीं कर सके, मगर........।"

अंटी में संभालकर रखा हुआ एक पांच का और एक दो का नोट दाहिने हाथ में रखकर उसने मेरी तरफ बढ़ा दिया है। दाहिनी भुजा को छूती बायें हाथ की अंगुलियां उस श्रद्धा को आकार दे रही हैं।

बहू के कड़े बेचकर, इन्जेक्सन के लिये रुपये भेजने के बाद बचे सात रुपये मेरी फीस। और कफन ? अन्दर पड़ी हुई लाश का कफन कहां से आयेगा ?

मैं झटके से साइकिल लेकर भाग छूटता हूं।

और अब पड़ा पड़ा सोच रहा हूं। मेरे "इमरजैन्सी बैग" में रखे ग्लूकोज के इन्जेक्शन की कीमत क्या इतनी है ?

मुझे नींद नहीं आ रही है।



उपहार

कई दिनों से सोच रहा था, तुम्हें लिखूं, मगर अपने आशावादी स्वभाव के कारण आज तक टालता रहा हूं, जब भी लिखने का विचार आता था, यह कह कर अपने को समझा लेता था कि कभी न कभी तुम खुद ही इन सब बातों को महसूस कर लोगी। तम समझदार हो, पढ़ीलिखी हो, कभी न कभी अपने व्यवहार को ठीक कर ही लोगी। आज भी मैं तम्हें शायद नहीं लिखता पर लिखने को मजबूर हो गया हूं। अभी दफ्तर से लौटा हूं और तुम्हारी लिखी हुई पंक्तियां मेज पर पड़ी कह रही हैं, राजन और उमा के साथ सिनेमा जा रही हू। साढे ना बजे तक लौट आऊंगी।

सोचता हूं और अधिक दबाने से कहीं मेरा असंतोष लाइलाज नासूर मे न बदल जाए। इसलिए सब कुछ लिख कर अपना हृदय तुम्हारे सामने खोल कर रख रहा हूं। लिख कर अपनी बात तुम से कहने का एक कारण यह भी है कि तुम्हें मेरी बातों पर अच्छी तरह गौर कर के निर्णय लेने के लिए काफी समय और अवसर मिल जाएगा।

हर आदमी कहीं न कही कमजोर होता है, सुधा पुराने जमाने मे जब राजा लोग किलों पर चढ़ाइयां किया करते थे, उनके जासूस इस बात का पता लगाने की कोशिश करते थे कि किले की दीवार किस जगह से कमजोर है। दुर्गाधीश भी प्राचीर की कमजोरियों को ध्यान मे रखते हुए सुरक्षा की व्यवस्था करते थे। वे अपने दुर्ग से यह सोच कर विमुख नही हो जाते थे कि उस मे कुछ कमजोरियां हैं। पत्नी के लिए किसी दुर्ग से कम महत्वपूर्ण नही है। मैं भी एक आम आदमी हू और मुझे में भी कुछ कमजोरियां हैं। तुम मेरी कमजोरियों से परिचित हो। मेरे व्यवहार में कोई परिवर्तन आए, यह तो ठीक नहीं है न। अपनी छोटी सी गृहस्थी की गाड़ी के हम दो पहिए हैं। एक दूसरे के सहारे हमें इस गाड़ी को आगे मंजिल की ओर, परम सुख और सतुष्टि की ओर ले जाना है। हमारी शादी हुए कुल तीन साल ही तो हुए हैं। एक दूसरे की कमजोरियों को इतना श्लाघ्य समझ कर सुखी रह पाना क्या हमारे लिए संभव हो सकेगा ?

मैं हर बात को अच्छी तरह समझ लेता हूं, उस के विभिन्न पहलुओं पर अच्छी तरह विचार कर लेता हूं, पर उचित शब्दों में अपनी भावनाओं को अभिव्य-

क्ति मैं दे नहीं पाता । परिणामस्वरूप चार लोगों के बीच कोई विवादास्पद विषय उठते ही या तो मुझे चुप रहना पड़ता है या हां में हां मिलानी पड़ती है । तुम तर्क करने मे होशियार हो । राजन भी अच्छा बहस कर लेता है । कभी तुम दोनों के बीच बैठ कर मैं अपने विचारों को व्यक्त करने का प्रयत्न करता हूं तो तुम मेरी इस कमजोरी से भली भांति परिचित होने के बावजूद राजन का पक्ष लेने लगती हो। तुम और राजन दोनों मिल कर हमेशा मुझे गलत सिद्ध करने का प्रयत्न करते हो । पत्नी और मित्र के सामने ही अगर मेरी अभिव्यक्ति की यह दशा होगी तो किसी और के सामने मेरी ज़ुबान कैसे खुलेगी ? कहां से मुझे प्रेरणा मिलेगी, कहां से मुझ में इतना साहस पैदा होगा कि चार लोगों के बीच बैठ कर मैं दावे के साथ कुछ कह सकूं । राजन की बात मैं छोड़ भी दूं पर यदि तुम ही मुझे परास्त करने की कोशिश में लगी रहोगी तो मेरा आत्मविश्वास कैसे जाग सकेगा ? क्या मैं अपने को नितांत एकाकी नहीं समझूंगा ?

अब राजन की बात ही लो । मैं तुम पर या उस पर कोई अविश्वास नहीं कर रहा हूं मगर तुम्हारा और उसका इतना मेलजोल, इतना खुला सम्पर्क मुझे अच्छा नहीं लगता । तुम घंटों उसके साथ अकेली बैठी गपशप करती रहती हो । रमा को साथ ले कर ही सही, उसके साथ पिक्चर देख आती हो । माना मेरे पास समय की कमी है, तुम्हारा दिल बहलाने के लिए मैं अधिक समय नहीं दे पाता हूं, मगर यह समय की कमी भी हमारी आवश्यकताओं के कारण ही है न ? इतनी देर देर तक काम करते रहना क्या मुझे अच्छा लगता होगा ?175/-रुपये दफ्तर से मिलते हैं। उनमें से 45/-रुपये तो केवल किराए के लग जाते हैं । 50/-रुपये प्रति माह घर भी भेजने होते हैं । वृद्ध माता-पिता के प्रति कम से कम इतना दायित्व तो हमारा है ही । अब बताओ, 80 रुपये मे किस तरह काम चल सकता है ? 50 रुपये का एक पार्टटाइम काम करता हू, तब जाकर कहीं हम दो लोगों का ठीक तरह से गुजारा हो पाता है ।

ऐसी अवस्था मे होना तो यह चाहिए कि तुम मेरे साथ सहानुभूति रखो, मेरा उत्साह बढ़ाओ । लेकिन तुम तो मेरी ओर लापरवा होती जा रही हो । अभी दो रविवार पहले तुम ने दाल के पकौड़े बनाए थे । राजन और मैं साथ-साथ बैठे थे । फिर भी तुम्हारा ध्यान इसी बात की ओर अधिक था कि राजन ठीक से खा रहा है या नहीं ? तुम राजन को बराबर आग्रह कर के खिला रही थी । तुम ही बताओ तुम्हारा वह व्यवहार मुझे अखरना नही चाहिए था क्या ? मैं कुछ कहता तो तुम विवाद खड़ा कर देती और विवाद मे तुम्हारे सामने टिक नहीं सकता । अपनी इस कमजोरी के कारण ही मैं तुम से कुछ कहता नहीं हूं फिर यह विचार भी कुछ कहने से मुझे रोक देता है कि तुम मेरे बारे में ऐसी धारणा न बना लो कि मैं तुम पर अविश्वास करता हूं ।

इस बार दिवाली पर राजन ने तुम्हें (साड़ी परखने के बाद मुझे लगा गोया तुम कह रही हो, "हुंह, लाए भी तो 25 रुपल्ली की यह साड़ी।") एक विदेशी साड़ी ला कर दी। तुम ने औपचारिक रूप में एक दो बार इनकार कर के वह साड़ी उस से ले ली। दिवाली से एक दिन पहले मैं भी तुम्हारे लिए पांच पांच रुपये बचा कर इकट्ठे किए हुए पैसों से राजस्थानी प्रिंट की एक साड़ी ले कर आया था। मैं तुम्हें आश्चर्य में डालना चाहता था, मगर साड़ी परखने के बाद बनी तुम्हारी मुखभंगिमा देख कर मुझे लगा था गोया तुम कह रही हो, "हुंह, लाए भी तो 25 रुपल्ली की यह साड़ी।

मैं तुम से तो भला क्या कहता, मगर एक हीनता की भावना ने मुझे घेर लिया था। इस समय मैं कम जरूर कमाता हूं, सुधा मगर आत्मसम्मान की भावना मुझ में भी है। माना कम कीमत की साड़ी ला सका था मैं, पर मेरी भावनाओं को भी तो देखना चाहिए था तुम्हें। सच तो यह है कि राजन की लाई हुई साड़ी तुम्हें लेनी ही नहीं चाहिए थी। वह तुम ने ली सो तो ली, उसके साथ ही तुम ने मेरी भावनाओं को, मेरे प्रेम को भी अपमानित किया।

बात छोटी सी है पर तुम्हारी बदलती हुई मनःस्थिति का अच्छा चित्रांकन करती है। सगाई के समय तुम लोगों के पास मेरा जो फोटो गया था, शादी के बाद कितना आग्रह कर के तुम ने मुझे उसकी "कैबीनेट कापी" बनवाने के लिए कहा था। तुम खुद मेरे साथ बाजार चल कर अपने इकट्ठे किए हुये पैसों से एक खूबसूरत सा स्टील का फ्रेम खरीद लाई थी। बहुत स्नेह व आदर के साथ सामने की मेज पर तुम ने उस फोटो को सजा कर रखा था। छोटी छोटी चंदन की दो बतखें तुम ने फ्रेम को, उस के शीशे को साबुन से साफ किया था। तुम्हारी आतुरता देख कर मन ही मन मैं गदगद हो उठता था। मगर अब वह फोटो मेज पर उपेक्षित सा पड़ा रहता है। कई कई दिन गुजर जाते है, तुम उसे साबुन से तो क्या कपड़े से भी साफ नही करती हो। फ्रेम के दोनो ओर पड़ी चन्दन की बतखें गिर जाती है। तुम उन्हें उठा कर खड़ा तक नही करती।

सुबह दफ्तर जाते समय खाना खा कर जाता हूं। शुरू से ही तुम खिला कर भेजती रही हो। शाम को दफ्तर से निकल कर पार्टटाईम काम कर के लौटते हुए तुम्हारे हाथ के बने स्वादिष्ट गरम गरम भोजन की गंध ने मुझे सदा ही साइकिल के पैडल तेजी से मारने की प्रेरणा दी है। शीघ्रतापूर्वक, चिन्ता कर के रोटियां बेलते समय तुम्हारी चूड़ियों की "खनखन" सुन कर सच, मुझे लगता था, मैंने दिन भर काम कहां किया है। एक दो बार मैंने तुम्हें भोजन बनाकर रख देने की बात कही थी। तो तुम मुझ पर नाराज हो गई थी, और अब पिछले काफी समय से रात को घर लौट कर मैंने गरम भोजन नही किया। शाम का बना हुआ भोजन

अलसाए बदन से तुम इस तरह थाली में मेरे सामने ला कर रखती हो, जैसे एक अनिवार्य और अपरिहार्य विवशता तुम पर लाद दी गई हो। महीनों गुजर गए, मैंने तुम्हारी वह चिन्तातुर भगिमा नहीं देखी।

हम लोगों को साथ साथ भोजन किए भी तो कई महीने हो गए हैं। पहले रविवार को हम दोनों साथ भोजन किया करते थे। मगर आजकल रविवार को घर गृहस्थी के कामकाज तुम कुछ इस तरह से फैला लेती हो कि साथ भोजन करने का अवसर ही नहीं मिलता। भोजन करता हूं तो कई बार लगता है, क्योंकि पेट भरना आदमी की विवशता है इसलिए अनिच्छा होते हुए भी भोजन करना ही पड़ेगा। कैसी अजीब विवशता है यह। भोजन करने के बाद जो तृप्ति पहले होती थी, अब नहीं होती।

मेरे कपड़ों की ओर ध्यान दिया है तुमने इन दिनों ? चैक वाली पैन्ट की जेबें कब से फटी पड़ी हैं। तुम ने उन्हें ठीक नहीं किया। सफेद कमीज कोहनियों से फट गई थी। मैंने तुम्हें कहा था कि उसकी बाहें काट कर आधी कर देना, तुम्हें याद नहीं रहा। ड्राइक्लीनर से कोट धुलवा कर लाए 15 दिन हो गए हैं, उसका टूटा हुआ बटन आज तक तुम ने नहीं बदला। पहले तुम मेरी कमीज और पैन्ट के बटन, उधड़ी हुई सिलाई, छोटे-छोटे रफू के काम खुद ही देखभाल कर ठीक कर दिया करती थी। मैंने तो तुम में आये परिवर्तन का एक उदाहरण दिया है।

हमारे जीवन में किस व्यक्ति का कितना महत्व है, इसका सबसे अच्छा परिचय हमारी दिनचर्या उस व्यक्ति को मिले स्थान से प्राप्त होता है। सुबह स्नान करते समय मैं गरम पानी काम मे ले रहा हूं या ठंडा ? शेव बनाने के बाद कहीं बुरुश को खुद तो साफ नही कर रहा हूं ? दफ्तर जाते समय मैंने सर्दी से बचने के लिए पर्याप्त कपड़े पहने हैं या नहीं ? मेरे कपड़े साफ धुले हुये हैं अच्छी तरह प्रेस किए हुये हैं या नही ? मैं स्वास्थ्य की दृष्टि से कोई गलत सलत सी चीज तो नहीं खा रहा हूं ? इन सब बातो का कभी तुम्हें जरूरत से ज्यादा ध्यान रहता था और आज तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नही रहती। मैंने अपनी ओर से ध्यान रख लिया तो ठीक, तुम कुछ नहीं कहोगी। मैं इन बातों को तुम्हारे दायित्व का अंग नही मानता। मगर इतना तो तुम भी मानोगी कि कभी तुम्हें मेरा इतना ध्यान रहा करता था।

कभी-कभी इच्छा होती है, सुधा, कि तुम और मैं कही दूर ऐसी जगह चले जाएं जहां हमारी "प्राइवेसी" में दखल देने वाला कोई न हो। छः दिन काम करने के बाद जी चाहता है कि हम दोनो अकेले कही घूमने जाएं, अकेले किसी पार्क में जा बैठें, अकेले कोई पिक्चर देख आएं। कधो को तोड़ती सप्ताह भर ढोए हुए भारी

बोझ की तहों को धो पोंछ कर मरम्मत होने के लिए उचित वातावरण, वाञ्छित परिस्थिति का होना आवश्यक होता है। उन्मुक्तता से बातचीत करने की भूख से व्यस्त मेरा हृदय कई बार किसी व्यवधान को सहन करने की स्थिति में नहीं होता। लेकिन तुम तो आजकल राजन के बिना कोई भी कार्यक्रम नहीं बनाती। मुझ से भी अधिक तुम्हें राजन के साथ कोई भी कार्यक्रम बनाने से पूर्व तुम्हे मुझ से पूछ लेना भी आवश्यक नहीं लगता। मजबूरन मुझे कभी-कभी ऐसे विचारों से जूझना पड़ता है, जिन्हें मैं तुम्हारे सामने प्रकट तक करना नहीं चाहता।

मैंने शुरू में लिखा है न, शायद हमेशा की तरह आज भी मैं ये बातें सिर्फ सोच कर रह जाता मगर तुम्हारे व्यवहार का जो पहलू आज मेरे अन्दर तक डूबता हुआ, मुझे रौंदता हुआ चला गया है, उसने मुझे मूक रहने नहीं दिया। तुम्हें याद नहीं है। यद्यपि मुझे याद दिलाना भी नहीं चाहिए। फिर भी तुम्हें बता रहा हूं कि आज मेरा जन्म दिन है। यह सोच कर कि आज मैं पार्टटाइम काम पर नहीं गया था कि तुम और मैं पिक्चर देख आएंगे। पर आया तो बाहर ताला लटकता मिला। पड़ोसियों से चाबी लेकर ताला खोला तो मेज पर पड़ी तुम्हारी परची मिली।

मैं तुमसे कुछ नही कहता, सुधा कुछ नही मागता। तुम खुद समझदार हो। मेरी किसी बात मे तुम्हें वजन लगता हो तो उसे जरूर ठीक करो। ये तुम्हारे और मेरे बीच उगते काटे हैं। सच्चे दिल से इन पर विचार करो। इन उगते कांटों को अभी से समाप्त करना जरूरी है, वरना संभव है कि आगे चल कर हमें कई टुकड़ों मे विभक्त कर दें।

यह भी हो सकता है तुम्हें मुझ से कुछ शिकायतें हों। विश्वास करो, तुम्हारी हर शिकायत का कारण मेरी अज्ञानता या विवशता दोनों में से एक होगा। तुम्हारी किसी भी शिकायत को दूर करके मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। पिछले वर्ष मेरे जन्म दिन पर तुम ने मुझे कफलिंक्स उपहार मे दिए थे इस बार अपना उपहार मैं तुम से मांगता हू। तुम मेरी शिकायतों को दूर करदो। क्या यह उपहार तुम मुझे दे सकोगी?

□

आस्था की कतरनें

कहते हैं आकृति हृदय का दर्पण है। मस्तिष्क में पलता गया, मन में चलता कोई विचार अथवा द्वन्द्व मुखमण्डल पर अपना प्रभाव अवश्य छोड़ता है। किसी व्यसन अथवा गुण विशेष युक्त व्यक्ति की मुखाकृति पर तदनुसार चिन्ह संकेत उभरने लगते हैं। वैसे तो यह विचार विभिन्न तर्कों को पक्ष-विपक्ष में आमन्त्रित करके विवादग्रस्त होने की क्षमता रखता है। फिर भी व्यक्तिगत रूप से मैं सदैव इस उक्ति की पात्रता को सन्देह की दृष्टि से देखता रहा हू। इस सन्देह का कारण मेरी एक प्रबल मान्यता है। आज की दुनियां में बहुत कम लोग इतने सीधे-सादे रह गये हैं कि वे अपने हृदय की बात सरलता से पढ़ जाने दें। किसके साथ किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिए। यह सामान्य बुद्धि पर हर पढ़े-लिखे या समझदार व्यक्ति मे, मेरे अनुमान से, आदिकाल से ही रही होगी। विचारों को चेहरे से पढ़ लेना तो बहुत बड़ी बात है, आजकल तो वर्षों साथ रहने वाले निकटस्थों के चरित्र और विश्वसनीयता का सही जायजा लेना भी मुश्किल होता है।

कुछ दिन पहले इस कथन की सत्यता पर मेरी थोड़ी बहुत आस्था थी। कुछ स्थितियों मे हाव-भाव से अन्तर्मन की थाह लेने वाली बात मुझे ठीक लगती थी। मगर अब वह हल्की-फुल्की आस्था भी दूर रह गयी है। आप कारण पूछेंगे तो मैं बता दूंगा। मगर आपसे एक आश्वासन पाना चाहूंगा कि आप मेरी बात को पहले पूरा सुन जाएंगे बीच मे न तो कोई प्रश्न ही पूछेंगे और न कहीं उठकर ही जायेंगे। दरअसल यह आश्वासन मैं इसलिए चाहता हूं कि भावनात्मक दृष्टि से इस घटना के साथ मेरा गहरा जुड़ाव है। अब तो जुड़ाव न रहकर गहरी टूटन वाली बात मुझे कहनी चाहिए। आप आश्वासन दे रहे है? तो ठीक है। आईये, मैं सारी बात ज्यों की त्यों बिना किसी जोड़-तोड़ के आपके सम्मुख रख देता हूं।

हम चार दोस्त हैं, बचपन में साथ-साथ गलियों में खेले, शरारतें की, पिटे, बड़े हुए, स्कूल गये। बाद मे कालेज गये। नौकरियों पर लगे। शादी-विवाह हुए। बाल बच्चे हुए मगर मित्रता में कोई अन्तर नहीं आया। अब केवल मैं और डाक्टर नवीन हैं इस शहर मे। डॉक्टर छावड़िया अजमेर में हैं और हमारे चौथे मित्र ओमप्रकाश उदयपुर में एक कम्पनी के मैनेजर है।

हा, यहां मैं यह बतादूं कि स्कूली शिक्षा के बाद हमारी पढ़ाई अलग-अलग

कालेजों में हुई थी। इसका मुख्य कारण था विषय भिन्नता। डॉक्टर छाबड़िया को तो शहर ही छोड़ देना पडा था क्योंकि उसे यहां प्रवेश नही मिला था इसलिए उदयपुर मेडीकल कालेज में जाना पडा था। खैर, हम चारों एक स्थान पर रहे हों या अलग-अलग स्थानो पर मगर प्रयत्न पूर्वक वर्ष में पांच-दस दिन साथ रहने का सिल-सिला जमा ही लेते थे। हम चारो का यही मानना था कि हममें से हर एक दूसरे की खुशी के लिए सब कुछ कुर्बान कर सकता है।

इस वर्ष होली से कुछ दिन पहले मैंने और डॉक्टर नवीन ने तय किया कि यह होली हम चारो एक साथ मनायेंगे। एक साथ मनायेंगे इतना नहीं बल्कि उदयपुर जाकर मनायेंगे। ओमप्रकाश के पास तय तो कर लिया मगर होली के,त्यौहार पर तो लोग दूर-दूर से अपने घर आते हैं और हम बाहर चले जायें, यह बात हमारे घर वालों को अच्छी नहीं लगती। पत्नियां भी रूठती, नाराज होती इसलिए हमने होली से एक दिन पहले अपने अपने घरों पर बताया कि उदयपुर से ट्रंककॉल आया है। ओमप्रकाश की पत्नी की तबीयत खराब है। अस्पताल में भर्ती कराया है। इसलिए हम दोनों उदयपुर जा रहे हैं। रास्ते मे अजमेर रुकेंगे डॉ. छाबड़िया के पास क्योंकि उसने एम. बी. बी. एस. उदयपुर से किया है इसलिए उसकी उपस्थिति लाभप्रद सिद्ध हो सकती है उसे साथ लेते हुए उदयपुर निकल जायेंगे।

यह बहाना चला और कुछ छिन्नों को छोड़कर खूब चला। हमारी पत्नियों के अतिरिक्त घर के सब लोग हमारे प्रस्थान की सार्थकता से सहमत थे। हमारी पुरानी मित्रता का परिप्रेक्ष उन्हें संतुष्ट करने के लिए भी प्रर्याप्त था। मगर पत्नियां पूर्णत: संतुष्ट नही हुई थीं। उनका कहना था कि भाभीजी बीमार हैं देखभाल के लिए या तो उन्हें भी साथ ले जायें या हम लोग भी न जायें। क्योंकि उन्हें साथ ले जाना हमे बिल्कुल स्वीकार नही था इसलिए कुछ समझाकर, कुछ नाराजगी का खतरा उठाकर हम लोग अजमेर के लिए रवाना हो गये।

ठीक होली के दिन सुबह हमने बस पकडी। दोपहर एक बजे जब हम डॉ. छाबडिया के घर अजमेर पहुचे, वह अस्पताल से लौटकर भोजन कर रहा। था मुझे और डॉक्टर नवीन को सामने पाकर, वह भी होली की दोपहर को, चमत्कृत हुए और उत्साहित होकर उछल से पड़ा।

लगभग दस दिन पूर्व उसके घर में दूसरी पुत्री का जन्म हुआ था। सामने पलंग पर उसकी पत्नी नव जात शिशु को साथ लिए लेटी हुई थी। हम दोनों ने आगे बढ़कर बच्ची को देखा। डॉक्टर छाबडिया और उसकी पत्नी को बधाई दी कि उन्होंने सौन्दर्य को प्रतिमूर्त किया है। औपचारिकता के नाते हमने सौन्दर्य प्रतिमूर्ति की बात की हो ऐसा नही था। गुलाबी फ्राक में लिपटी वह छोटी सी गुडिया सचमुच खूब-सूरत थी।

हम दोनों भी डॉक्टर छाबड़िया की थाली में ही, भोजन करने बैठ गये। माताजी रोटियां, सब्जियां पहुंचाती रहीं। हम खाते रहे और बातचीत करते रहे। पूर्वनिश्चयानुरूप यहां भी हमने ट्रंककाल आने, ओमप्रकाश की पत्नीके अस्पताल में भर्ती होने और इस सन्दर्भ में हमारे वहां जाने की बात पर सत्य का मुलम्मा चढ़ाकर गम्भीरतापूर्वक कह दी। डॉक्टर छाबड़िया को चलने अथवा न चलने की दृष्टि से हमने कुछ नहीं कहा।

भोजनोपरान्त हम लोग टहलने बाहर निकले। रास्ते में बात का रुख फिर ओमप्रकाश की ओर मोड़कर हम किन परिस्थितियों में घर से निकले हैं, पत्नियों ने हमारे प्रस्थान को कैसा लिया है, ये और इस तरह की अन्य बातें हमने कह डाली। इस प्रकार जमीन तैयार करने के बाद मैंने उनसे पूछा, "चलने के बारे में तुम्हारा क्या इरादा है?"

"चलेंगे," उसके कथन में विशेष उत्साह नहीं था। लेकिन डॉक्टर नवीन और मैंने उसके इस शब्द को तूल देकर "मजा आ गया" हमेशा ऐसा ही कहा करो, "यह हुई न कोई बात" जैसे वाक्य जड़ दिये।

घूमफिर कर तीन बजे के लगभग घर लौटे तो मैं शारीरिक रूप से कुछ पस्त अनुभव कर रहा था। पूछा तो डॉक्टर नवीन ने भी यही बात कही। इसलिए हम दोनों तो आँखें बन्द करके सो गये। डॉक्टर छाबड़िया की तीन वर्षीय बड़ी बच्ची नीलम को हल्का सा बुखार था। वह उसकी परिचर्या, आमोद, प्रमोद और सेवा-सुश्रुषा में लगा रहा।

जब मेरी नींद खुली कमरे में हर ओर अंधेरा था। मैंने उठकर लाइट जलाई, घड़ी देखी, सात बजे थे। मेरे उठने, लाइट जलाने ने डॉक्टर नवीन की निद्रा में व्यवधान उपस्थित किया ही होगा। "मैंने आवाज देकर रही सही कसर भी पूरी कर दी।"

मैं हाथ मुंह धोने बाहर निकल आया। लौटा तो देखा, मुड्डे पर आसीन डॉक्टर छाबड़िया नीचे से डॉक्टर नवीन को कुछ समझाने का प्रयत्न कर रहे है। डॉक्टर नवीन की मुद्रा से लगा कि न तो वह कुछ समझने को उत्सुक हैं और न ही समझाने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए तो मुंह पोंछता मैं उनके निकट पहुंचा तो डॉक्टर नवीन ने एक लम्बी जमुहाई ली और मेरी ओर सकेत करते हुए कहा, "इसे बताओ"

मैंने डॉक्टर छाबड़िया की तरफ देखा, "क्या बात है भई?" डॉक्टर छाबड़िया के स्वर में असमंजस था और सकोच था, "यार वो........नीलम की तबियत खराब चल रही है। सी. एम. एच. ओ. से भी झगड़ा हो गया है। वह छुट्टी मंजूर नहीं करेगा।"

मेरे होठों पर अनायास ही मुस्कराहट तैर आई, "नीलम को तुम दवा दे रहे हो न ? एक-दो दिन की दवा भाभी जी को समझा दो । परसों नहीं तो उससे अगले दिन लौट ही आयेंगे । कल का सार्वजनिक अवकाश है रही परसों की बात तो तुम बीमारी की अर्जी लिखकर पड़ोसी को दे चलो । आकस्मिक अवकाश वह भी तबीयत खराब होने की स्थिति में । सी. एम. एच. ओ. को मंजूर करना ही पड़ेगा ।

"तुम समझते नहीं हो । पहले भी उससे ड्यूटी के चक्कर में ही झगड़ा हुआ है । लीव विदाउट पे करवा देगा ।"

मैं थोड़ा झुंझला गया, "देखो हमारी तरफ से कोई दबाव नहीं है । तुम चलना चाहो, चलो । न चलना चाहो, मत चलो । मगर ऐसे भोंडे और घटिया तर्क मत दो । साफ कह दो कि चलने की इच्छा नहीं है ।"

मेरे अन्तिम वाक्य ने जैसे उसे बच निकलने का अवसर दे दिया । "ठीक है। तुम मेरे बारे में अगर इस तरह सोचते हो तो ऐसा ही सही । मेरी चलने की इच्छा नहीं है ।"

"नहीं है तो मत चलो ।"

हम तीनों के बीच गहन तनावयुक्त बात हो गयी । हमारे सिर झुक गये । मुद्रा विचारपूर्ण हो गई । हम इस स्थिति से तब उबरे जब माताजी ने बाजार से सब्जी लाने के लिए छाबड़िया को आवाज दी ।

उसके जाते ही डॉक्टर नवीन ने मुझे अपराधी सा ठहराते हुए कहा, तुम्हें इच्छा-अनिच्छा वाली नहीं कहनी चाहिए थी । उसे इनकार करने का अवसर मिल गया ।

मैं उखड़ गया, "क्यों ? क्यों नहीं करनी चाहिए थी यह बात ? वह हमारी बेटी की शादी में आया हुआ कोई बराती है क्या कि हाथ-पाव जोड़कर उसे राजी करें ? स्थिति की नजाकत और उसमें अपनी उपादेयता के आधार पर उसे चलने का या न चलने का निर्णय करना चाहिए था । झूठी बहानेबाजी करके आखिर वह क्या सिद्ध करना चाहता था ?"

मेरी सख्ती से किनाराकशी करते हुए डॉक्टर नवीन ने कहा, सब ठीक है। लेकिन उसे यह अवसर नहीं देना चाहिए था, बस । खैर चलो, एक बार फिर बात करके देख लेंगे ।

"मैं तो अब बात करूंगा नहीं । तुम्हें करनी हो तो करो ।"

डॉक्टर छाबड़िया के लौटने के बाद हम तीनों बाहर निकले । बस स्टैण्ड से रात्रि सेवाओं का समय पूछकर स्टेशन पहुँचे । प्लेटफार्म पर आकर कॉफी का आर्डर

दिया। उस दौरान मैं प्रायः मौन था। कॉफी के मग हाथ में आने के साथ ही डॉक्टर नवीन ने छाबड़िया से कहा, "यार डा. साहब, आज मूड बड़ा फिलोसफराना हो रहा है। तुम बुरा न मानो तो एक बात पूछूं।

"पूछो।" डॉक्टर छाबड़िया ने जिज्ञासु बनकर कहा।

"तो बताओ हम लोग क्यों जी रहे हैं ? मर क्यों नहीं जाते ?"

वाक्य समाप्त होते-होते मुझे आभास हुआ कि डॉक्टर नवीन ने विषय का सूत्र पकड़ लिया है। प्रस्तुतीकरण की इस विचित्र किन्तु सटीक तैयारी का स्पर्श पाकर मुझे बरबस हँसी आ गई। अपनी हँसी को छिपाने के लिए मैं हाथ में मग लिये-लिये उनसे थोड़ा दूर हट गया। काफी समाप्त करके मदारगेट अण्डे, व्हिस्की और बियर खरीदकर घर पहुंचने तक डॉक्टर नवीन आदर्श, उपदेशक और छाबड़िया समर्पित श्रोता में परिणत हो चुके थे।

हम घर पहुंचे तो हम तीनों यार मुक्त अनुभव कर रहे थे। घर छोड़ने और वापस लौटने के बीच जैसे हमारा कायाकल्प हो गया था। किसी तनाव या ग्रन्थी की नाम मात्र परछाई भी हमसे कोसों दूर थी। एक दिल खुश ताजगी एक लुभावनी आत्मीयता हमारे स्नेह को बुरी तरह छलकाये दे रही थी।

साढ़े दस बज रहे थे। हमें साढ़े ग्यारह वाली बस पकड़नी थी और डॉक्टर नवीन को मैंने घड़ी दिखाई।

"अब तैयारी करो डॉक्टर साहब समय हो गया है।"

"यार तुम दोनों मेरे साथ चलो। माताजी को कन्विन्स करना पड़ेगा।

"हम क्या बात करेंगे ? जो कुछ करना-कराना है तुम ही कर लो।

प्रतिवाद न कर पाकर वह अनिच्छापूर्वक बाहर चला गया। हम दोनों ने एक दूसरे की ओर मुस्कराहटें उछाली।

"तुमने एक बात सोची है ?"
"क्या ?"

"वहां पहुंचकर जब उसे पता लगेगा कि भाभीजी स्वस्थ हैं, तब क्या होगा ?"

"जब तुमने यहां इतना किया है तो वहां भी कुछ कर देना"।

"वहां मैं कुछ नहीं करूंगा। तुम्हें ही संभालना होगा।"

हमें अपनी बातचीत का क्रम एकाएक ही तोड़ देना पड़ा। वह वापस लौट रहा था।

"हो गई बात ?"

"नहीं, तुम लोगों को चलना पड़ेगा।"

"क्यों फिर क्या हो गया ?"

"वे मान नही रहे है। तुम चलकर समझाओ।

मैंने और डॉक्टर नवीन ने आंखो ही आंखों में एक दूसरे को आने वाली स्थिति का नेता पद संभालने का संकेत दिया। दोनों ने ही ये सांकेतिक प्रस्ताव ठुकरा भी दिये। अन्ततः प्रस्तावित करने और निरस्त करने का सिलसिला जारी रखते हुए हम डॉक्टर छाबड़िया के साथ उस कमरे मे आ गये जहां उनकी जच्चा पत्नी लेटी हुई थी। माताजी कुछ फासले पर बिछी चारपाई पर बैठी थी।

माताजी से औपचारिक वाक्यों के आदान-प्रदान के बाद हम दोनो चुप हो गये। हम दोनो ही इस प्रतीक्षा मे थे कि दूसरा पहल करेगा। डॉक्टर नवीन ने जब मौन को तोड़ने के प्रति थोड़ी सी भी उत्सुकता नही दिखाई तो विवशतः मुझे ही प्रारम्भ करना पड़ा, "इसे भेज नही रहे हैं क्या ?"

मैंने यह मुलायम अनुरोधपूर्ण प्रश्न छाबड़िया की माताजी से किया मगर उसकी पत्नी ने उत्तर दिया, "ये वहां जाकर क्या करेंगे ?"

उनके लहजे की सख्ती मुझे अच्छी नहीं लगी। फिर भी मैंने भरसक स्वाभाविक बने रहने का प्रयत्न किया, "हम लोग वहां जाकर क्या करेंगे ?"

"आप लोगो का क्या है ? संयुक्त परिवार है। पीछे की कोई चिन्ता है नही। यहां तो सब कुछ इनको ही देखना पड़ता है।"

"आप समझती हैं, हमारे से वहां सब लोग खुश हैं ?"

"होगे तभी तो आप जा रहे हैं।"

रोकते-रोकते भी मेरे स्वर में व्यंग्य व तिक्तता घुल-मिल गये। "जी नहीं, आपको गलत फहमी हुई। सौ सवा सौ रुपये, जबरदस्ती खर्च करके लौटने पर कोई किसी का स्वागत नही करता।"

"कोई स्वागत करे या न करे हमें इससे क्या करना ? हम तो यह जानते हैं कि इन्हें उदयपुर नही जाना चाहिए।"

"हम बुरे समय पर किसी के काम नही आयेंगे तो हमारे यहां कौन आयेगा" डॉक्टर छाबड़िया का स्वर था। स्वर नही, मिमियाहट थी। यह मिमियाहट भी समर्थन की मुद्रा में मौन बैठी माताजी की ओर फूटी थी।

"इसमें बुरे समय पर काम आने की क्या बात है ? यहां आपकी लड़की तो बीमार है। वे अस्पताल में भर्ती हैं। डॉक्टर देख ही रहे होंगे। आपके जाने से

कोई चमत्कार हो जायेगा क्या ?" डॉक्टर छाबड़िया को साक्षात डांट पिलाते हुए उसकी पत्नी ने जोर से कहा।

मुझे बेहद क्रोध आ गया, नीलम के मामूली बुखार में आपको इसकी जरूरत महसूस हो रही है। वहां भाभीजी अस्पताल में पड़ी हैं, आपको कुछ विशेष नहीं लगता। इसकी उपस्थिति नीलम के लिए चमत्कारपूर्ण हो सकती है जहां से एम. बी.बी. एस. किया है वहां जाकर यह कुछ नहीं कर सकता। मुझे तो आपकी मानवीयता पर सन्देह होने लगा है।"

वे रुद्ध कंठ से बोली, "वो तो मैं जानती हूं। आपके रूवाब में आकर ये जरूर जायेंगे। अपनी मासूम बच्ची को मरता छोड़कर दूसरों को ठीक करने दौड़ेंगे।"

उनके कंठ की रुद्धता और आंखों में भर आये पानी ने मुझे उल्टा अधिक उग्र बना दिया, हम लोग न तो दबाव डालते हैं और न बरगलाते हैं। रही इसके जाने न जाने की बात तो जिनके दोस्त डॉक्टर नहीं वे भी इस दुनियां मे जिन्दा रहते हैं, मर नही जाते। ये आपके पति हैं आप चाहे इन्हें अब भेजिये चाहे मरने के बाद अर्थी को कन्धा देने भी मत भेजिए हमें क्या करना है।

फिर मैंने पिटे प्रेमी की तरह सिर झुकाकर बैठे डॉक्टर छाबड़िया को सम्बोधित किया, "मैं तो खुले आम कह रहा हू। चलने को हमारी ओर से कोई दबाव नही है हम उधर बैठे हैं। फैसला करके बता दें।"

हम लोग वहां से उठकर आ गये। जी बिल्कुल उखड़ गया। इच्छा होती थी, इसी क्षण यहां से चल दें। निरंकुशता और बुद्धिहीनता के तांडव ने हमें झकझोर कर रख दिया था। मगर वह छाबड़िया की पत्नी है तो हम भी उसके मित्र हैं। हमारा कोई अधिक नही बनता है क्या उस पर ?

सवा ग्यारह बजे छाबड़िया उदास और बेमिसाल चेहरा लिये धीरे धीरे कमरे में आया तो दो खामोशियों में सम्मिलित होकर तीसरी खामोशी ने वातावरण को असह्यता की सीमाओं तक भारी बना दिया।

अपनी दाव पर लगी प्रतिष्ठा को हम हसरत से देख रहे थे। हमारी बात अधिक वजनदार थी। इसके बाद भी यह देखना था कि पत्नी और मित्रों में से वह किसे वरीयता देता है। निर्वाक्, धड़कते हृदय से हम उसके निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दो-तीन मिनट बाद उसने पूछा, "क्या समय हुआ है ?"

हमारे हृदयो मे एक अदृश्य आशावाद का संचार हुआ। हम अनायास ही सोच गये कि वह साथ चलने का निर्णय लेकर आया है।

"ग्यारह बीस" डॉक्टर नवीन ने बड़ी अपेक्षा के साथ कहा ।

"तो चलो । मैं तुम्हें बस-स्टैन्ड छोड़ आऊं" ।

एक क्षण के लिये एक दूसरे को देखते हुए मैं और डॉक्टर नवीन स्तब्ध रह गये । फिर अपनी-अपनी अटैचियां साथ लेकर उठ खड़े हुए ।

मात्र पत्नी के दबाव के कारण, इतना घनिष्ट होते हुए भी, मित्र की सहायता से इनकार करने वाले को विश्वसनीय माना जा सकता है क्या ? गनीमत है कि बीमारी वाला किस्सा हमारा गढ़ा हुआ विशुद्ध झूंठ था। अगर सच होता तो ? इतने लम्बे समय की मित्रता भी जब हमें चकमा दे गई तो आस्था गिरेगी नहीं क्या ?

इसलिये मैं कह रहा था कि मुखाकृति को हृदय का दर्पण मानने वाली उक्ति पर मेरी जो थोड़ी बहुत आस्था थी, अब वह भी घुल-पुछ गई है ।

□

अपनी नजर में

उसने इस स्थिति की कभी कल्पना भी नहीं की थी। वैसे ही रिश्वत का हिमायती नहीं रहा है, फिर डा. करमा को दिया हुआ वचन ....।

नियुक्ति पत्र मिलने के बाद जब डा. करमा से आशीर्वाद लेने गया था तो विह्वल होकर उन्होंने कहा था "डाक्टर, आज तक मैंने तुम लोगों से कुछ नहीं एम. डी. के दौरान भी तुम्हारा दिया हुआ कुछ स्वीकार नहीं किया लेकिन आज मांगा। एक चीज मुझे तुमसे चाहिये। दोगे ?"

"आप कहकर तो देखिये, सर।"

"मुझे वचन दो कि तुम कभी रिश्वत नहीं लोगे।"

डा. करमा के चरण छूकर उसने प्रतिज्ञा की थी कभी रिश्वत न लेने की। डा. करमा यहां से साढ़े तीन सौ किलो मीटर दूर हैं। किन्तु उनका परिहासयुक्त वाक्य, यों लग रहा है, अभी-अभी बोलकर खड़े हैं वे, "याद रखना डाक्टर, अगर इस प्रतिज्ञा को भंग करोगे तो मरने के बाद मेरी आत्मा भूत बनकर तुम्हें परेशान करेगी।"

सभी तो भ्रष्ट हैं। वह अकेला कैसे बच सकता है इस षड़यन्त्र का भागीदार होने से ? कहने को डेढ़ महीना उसने रिश्वत नहीं ली। मगर सच कहा जाय तो यह हकीकत कहां है ? कारोबार बदस्तूर चलता रहा है। उसके नाम से चलता रहा है। रेडियोग्राफर कह रहा था ना, "डाक'साब, हम तो पैसे लेते हैं और आपके नाम से लेते हैं। आप अपना हिस्सा लेंगे तो ठीक है, वरना हम लोग बांट लेंगे। रही बदनामी की बात सो आप हिस्सा लेंगे तो भी होगी और नहीं लेंगे तो भी होगी।"

रेडियोग्राफर की धृष्टता और साफगोई उसे अन्दर तिलमिलाहट से भर गई थी। एक बार तो उसे डाटकर जलील करने की इच्छा हो आई थी। मगर अपनी असमर्थता का बोध उसे अकर्मण्य बना गया था। वर्षों से यहीं जमा हुआ यह रेडियोग्राफर कितने रसूकात वाला आदमी है, यह बात उसे पिछले डेढ़ महीने की नौकरी ने अच्छी तरह समझा दी थी। भ्रष्टाचार निरोधक विभाग का इन्सपेक्टर उसका निकट का रिश्तेदार है। शहर का हर बड़े से बड़ा नेता उसका परिचित है। शहर का हर बड़े

से बड़ा गुन्डा उसका यार है । पिछले तेरह साल से रिश्वत लेते-लेते इतना माहिर हो गय है वह कि उस जैसे नये-नये डाक्टर मुंह देखते रह जाते हैं।

कल एक्स-रे के लिये एक मरीज आया था । किसी झगड़े में सिर फूट गया था । पुलिस केस बनाना चाहती थी । एक्स-रे की बड़ी मशीन खराब थी । छोटी मशीन से एक्स-रे साफ आया नहीं । रेडियोग्राफर प्लेट साथ लेकर उसके पास आया, "साब, पिक्चर साफ नहीं है । आप इजाजत दें तो मरीज को बाहर से एक्स-रे करा लाने को कह दें । मैं, साथ चला जाऊंगा । उस प्लेट के आधार पर रिपोटिंग कर दीजीयेगा ।"

उसने सोचा, इसमे क्या बुराई है ? किसी का काम होता है तो अपना क्या जाता है ? सहमति पाकर रेडियोग्राफर बाहर से एक्स-रे करा लाया । प्लेट देखकर उसने रिपोटिंग कर दी । स्कल मे फ्रेक्चर था ।

आज सुबह चाय पीते हुए उसने यों ही रेडियोग्राफर से पूछ लिया, "एक बात तो बताओ । तुम कल वाले मरीज में इतनी दिलचस्पी क्यों ले रहे थे ।"

सवाल सुनकर रेडियोग्राफर थोड़ा हड़बडाया, "दिलचस्पी... ....मैं किस मे ले रहा था दिलचस्पी ?"

वह थोड़ा मुस्कराया, "कल वाली एम.एल.सी. में ।"

इस बीच रेडियोग्राफर शायद संभल गया था । प्रत्युत्तर मे वह खुलकर सामने आ गया, "मैंने उससे ढाई सौ रुपये में सौदा किया था ।"

रेडियोग्राफर की बेबाक स्वीकृति ने उसे चौंका दिया, "ढाई सौ रुपये ? किस बात के ढाई सौ रुपये ?"

यहां वाली प्लेट के आधार पर मुझे अन्दाज हो गया था कि उसके स्कल मे फ्रेक्चर है । मरीज फ्रेक्चर की रिपोर्ट चाहता था इसलिये मैंने ढाई सौ मे सौदा तय कर लिया ।

अब उसे लगता है कि रेडियोग्राफर ने बड़ी समझदारी से जान बूझकर बातें इस ढंग से की होंगी । अवसर अनुकूल देखकर उसने आखिरी फ़ैसला कर लेना चाहा होगा । या तो रिश्वत में डाक्टर शामिल हो जाय, नहीं तो उसकी अनुमति मिल जाये रिश्वत लेने के लिये । चोरी छिपे डर-डरकर रिश्वत लेना और अनिश्चय को लम्बा खींचना निश्चित रूप से उसे पसन्द नही रहा होगा ।

उस दिन उसने चार्ज लेकर डाक्टर को रिलीव किया था । एक मरीज एक्स-रे रिपोर्ट की नकल लेने उसके पास आया । रेडियोग्राफर ने बताया, "यहाँ मरीज को नकल दस रुपये मे दी जाती है । यह महनताना है ।"

"मेरी तो यह ड्यूटी है मेहनताना मुझे सरकार देगी । मरीज को इससे क्या ,, देना ?"

"यही रिवाज है साब यहां। सभी डाक्टर लेते हैं।"

"लेते होंगे। तुम तो मुझे यह बताओ कि कानूनन हमें रिपोर्ट की नकल देनी चाहिये या नहीं ?"

"कानूनन कोई एतराज वाली बात नहीं है। मगर दस रुपये न लेकर आप ठीक नहीं करेंगे साब। यह तो आपकी फीस है।"

"तुम्हारे कहने से फीस हो जायगी क्या ? रिश्वत को फीस कह देने से काम नहीं चलता।"

"आप इसे भले ही रिश्वत कह लीजिये। वैसे स्वयं सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब तक ने इसकी मौखिक स्वीकृति दी हुई है।"

"कुछ भी हो। मैं ऐसा पैसा नहीं लूंगा।"

"आपकी मर्जी साब," कहकर कंधे उचकाता रेडियोग्राफर चला गया था।

उसने बिना 'फीस' लिये ही नकल दे दी थी और इसके बाद एक अघोषित युद्ध प्रारम्भ हो गया था। एक तरफ डिपार्टमेंट का सारा स्टाफ था और दूसरी तरफ वह अकेला। डिपार्टमेंट का मालिक फिर भी अकेला। सभी लोग सामने बहुत इज्जत से पेश आते। बहुत आदरपूर्वक बात करते। वह कोई काम कहता तो तुरन्त कर रहे हैं, ऐसा दिखाते। वैसे हर समय कोई न कोई मोर्चा बड़ी खामोश सादगी से उसके खिलाफ खुला रहता। कभी एक्सरे-मशीनें एकाएक खराब हो जातीं। कभी केमीकल्स खत्म हो जाते। कभी प्लेट्स बेतहाशा खराब होने लगतीं। कभी किसी मरीज को सीधा उसके पास भेज दिया जाता रुपये पैसे का प्रस्ताव रखने के लिये। इमरजेंसी एक्स-रे जो सामान्यतः डॉक्टर की अनुपस्थिति में हो जाते हैं, उसके इन्तजार में रुके रहते।

इस असहयोग को समझते हुए भी उसने कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया या उग्रता नहीं दिखाई। मुस्कराहट के साथ सारे काम संभालता रहा। रिश्वत चाहे प्रत्यक्ष हो चाहे अप्रत्यक्ष उसने अपने से बिल्कुल दूर रखी। पुलिस केस से सम्बन्धित एक्स-रे वह अपनी देखरेख में कराने लगा। रिपोर्टिंग के समय सबको चैम्बर से बाहर भेजकर वह अकेला इल्यूमिनेटर के सामने बैठता। प्लेट की अच्छी तरह जांच करने के बाद ही रिपोर्ट लिखता।

वह रेडियोग्राफर से आमने-सामने की लड़ाई लड़ना नहीं चाहता था। इलाका वैसे भी बदनाम है। आये दिन मारपीट, हत्याएं होती रहती हैं। लोग इतने दुस्साहसी हैं कि हड्डी टूटी बाँह हाथ से संभाले इस तरह अस्पताल चले आते हैं गोया सैर करने निकले हों। एक तरफ ये बातें दूसरी तरफ रेडियोग्राफर की ऊंची पहुंच। वह किसी भी कीमत पर उससे उलझने को तैयार नहीं था।

किन्तु रेडियोग्राफर के बताये हुए ग्राज के सत्य ने उसे सोचने पर मजबूर कर दिया। वह समझता था, अब किसी से रिश्वत नहीं ली जा रही है। सारा काम तरकीब से हो रहा है। रिश्वत का जरिया बन्द हो जाने के कारण खिसियाहट पैदा होना स्वाभाविक है। असहयोग और अड़चनें उस खिसियाहट का ही परिणाम हैं। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा।

परन्तु ग्राज पता लगा कि असहयोग और अड़चनें किसी खिसियाहट का परिणाम नहीं हैं। यह एक कोशिश थी उसे झुकाने की। काम चल रहा था। पर्दे मे ही सही, रिश्वत भी ली जा रही थी। हो सकता है उन लोगों की कमाई पहले की तुलना मे कम हो गई हों। नहीं, वह भी कम नहीं हुई होगी। डॉक्टर का हिस्सा भी तो उनके पास ही जा रहा था।

मजे की बात यह है कि इस प्रकरण में सबसे अधिक मूर्ख वही सिद्ध हुआ है। मूर्ख ही नही वज्रमूर्ख सिद्ध हुआ है वह। आदर्श की धुन में इतना ध्यान भी नही रहा उसे कि उसके पद और नाम का दुरुपयोग किया जा रहा है। रिश्वत देने वालों ने तो अपने मिलने-जुलने वालो से यही कहा होगा न, "सब लिप्त हैं यहां लाला, डॉक्टर हो या कम्पाउन्डर। हटवाड़े के माल की तरह सब का अपना मोल होवत है, बस।"

एक पैसा रिश्वत न लेने के बावजूद उसे रिश्वतखोर कहा जाता होगा। अस्पताल में भी सभी लोग यही समझते होगे कि डॉक्टर रिश्वत लेता है। अब वह चाहे तो भी यह स्वरूप बदलेगा नही। किसी से कुछ कहेगा तो उल्टा लोग कहेंगे, "रिश्वत लेने वाला कभी कहता थोड़े ही है।"

अब जब इतना अपयश मिल ही गया है तो अपना हिस्सा लेने में क्या हर्ज है? रेडियोग्राफर बता रहा था "आपसे बहुत पहले एक बार डॉक्टर इन्चार्ज के साथ हम लोगों की मीटिंग हुई थी। उसमें तय हुआ था कि ऊपर की कमाई का आधा हिस्सा डॉक्टर को, बीस प्रतिशत सीनियर रेडियोग्राफर को, पन्द्रह प्रतिशत जूनियर रेडियोग्राफर को पांच-पांच प्रतिशत ट्रेनी रेडियोग्राफर, नर्स और वार्ड ब्वाय को मिलेगा। हिसाब से ढाई सौ में से सवा सौ आपके होते हैं। आप अब भी मना करेंगे तो हमारा कुछ नहीं है। हम उसे भी आपस में बांट लेंगे हमेशा की तरह। वैसे डाकसाब यह सब होता आया है और आगे भी होगा। इसे कोई रोक नहीं सकता।"

कमीना, रिश्वतखोर कहता है इसे कोई रोक नही सकता। उसके बाप का राज्य है कि इसे कोई रोक नही सकता। किसी मरीज से लिखवाकर शिकायत कराद्र्ं तो बच्चू को नानी याद आ जाये। सारी चौकड़ियां भूल जाये। मेरे नाम से

पैसा लेगा मुझे बदनाम करेगा और मेरे सामने ही ताल ठोककर कहेगा कि इसे कोई रोक नहीं सकता।"

आक्रोश के दौर में वह न जाने क्या-क्या सोच गया है। अपने तर्कों से प्रभावित वह स्वयं को एक सुखद अधिकारपूर्ण और फैसलाकुन स्थिति में महसूस करता है। तभी रेडियोग्राफर की कही हुई एक और बात उसे याद आ गई है, "डाक" साब, सब लोग जानते हैं कि इस डिपार्टमेंट मे पैसा चलता है। आपको ताज्जुब होगा कोई एक डेढ़ साल पहले खुद सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब ने अपना कमीशन बंधवाने का प्रयोजन रखा था। उन दिनों डा० चौधरी इन्चार्ज थे। उन्होंने साफ मना कर दिया। कहने लगे "सबके आमदनी के अपने जरिये हैं। हमने कभी हिस्सा मांगा है उनसे कि वे हमसे हिस्सा मांग रहे हैं?"

वह फिर बेबस महसूस करने लगा है। शिकायत को ऊपर वालो में से कोई सुनेगा नही। चोर तो चोर की तरफदारी ही करेगा। मैं परदेशी आदमी। कहीं पिटवा दिया या किसी और चाल से फंसवा दिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। सीधी टक्कर किसी हालत में नहीं ली जा सकती उनसे। बैठे-बिठाये अपना नुकसान कराने से क्या फायदा?

मन ही मन डा० करमा से क्षमा मांगते हुए वह तय करता है कि रेडियोग्राफर को अपनी सहमति दे देगा। बाहर से चोर दिखाई देने और अन्दर से ईमानदार बनने में कोई तुक नहीं है। रेडियोग्राफर ने आश्वासन दे ही दिया था कि गड़बड़ कहीं नही होगी। उसका नाम कही नहीं आयेगा। कम से कम डेढ़-दो हजार रुपये महीने की आमदनी छोड़ी जाये तो क्यों आखिर? बदनामी की बदनामी, नुकसान का नुकसान। सिद्धान्त या आदर्श के लिये लड़ने की कोई गुंजाईश हो तो चलो फिर भी ठीक है। यहां तो समझौते के अलावा कोई चारा ही नही है।

निर्णय के बावजूद उसे नींद नही आ रही है। कुछ गलत हो रहा है, यह भावना उसे परेशान करती रहती है। रिश्वत का भागीदार हो जाने के बाद अपने मातहत कर्मचारियो से भला-बुरा कहने का नैतिक साहस रह पायेगा क्या उसमे? क्या वे बराबरी के स्तर पर आंखें मिलाकर बात नही करेंगे उससे?

एक बात और भी है। आज अपनी ओर से सही रिपोर्ट लिखता है वह। कल रिश्वत के लोभ मे अगर उसे गलत रिपोर्टिंग के लिये कहा जाता है तो क्या वह मना कर सकेगा? कीचड़ मे एक बार पांव धंसने की देर है, बाहर निकलने की सम्भावनायें अपने आप खत्म हो जाती है। रेडियोग्राफर उसका राजदार होगा। वह उससे मन चाही रिपोर्ट लिखवा सकता है। लिखने को मजबूर कर सकता है। अपनी कमजोरियां जाहिर न हो जायें इस डर से वह भी वही सब कुछ करेगा जो

रेडियोग्राफर चाहेगा। अन्ततः इसका जिम्मेदार उसे ही माना जायेगा। रिपोर्ट पर उसके हस्ताक्षर होते हैं। कानूनी जिम्मेदारी केवल उसकी बनती है और किसी की नहीं।

पैसे के पीछे न्याय-अन्याय, संगत-असंगत का विवेक खो देना ठीक रहेगा क्या? एक बार पैसा लेने के बाद विवेक को तो थपकियां देकर सुलाना होगा। धीरे-धीरे वह भी कुन्द पड़ता चला जायेगा। सही-गलत का दिशा निर्देश देना बन्द कर देगा।

दुनिया की नजर मे वह बेईमान और रिश्वतखोर सही, अपनी नजर मे तो बेदाग आदमी है न? रिश्वत स्वीकार कर लेने के बाद तो वह अपनी नजर में भी गिर जायेगा। दूसरे कुछ भी समझें, अपनी नजर में वह नही गिरेगा। खुद अपने सामने अपनी आंखे न उठ सकें, यह उससे बर्दाश्त नही होगा।

भले ही दूसरे लोग रिश्वत लें, उसी का नाम लेकर लें। अगर उनका विरोध करने का साहस या सामर्थ्य उसमें नही है तो कोई बात नहीं। वह उनका विरोध नही करेगा। किन्तु लालच या दबाव में आकर वह अपने आपको भ्रष्ट होने नहीं देगा। खुद को अपनी ही नजर से गिरने नहीं देगा।

इस फैसले के बाद वह अपने आपको बेहद हल्का महसूस करता है।



नपुंसक

आँखें खोलकर उसने अंधेरे को घूरना चाहा। पहले एक काला सा पर्दा उसकी आँखों के सामने उतरा और फिर उसके पीछे कुंठित उजाले की गोद में बिसूरती किंचित सी सफेदी उभरी। सामने दीवार पर ब्रीफ केस लटक रहा था। उसके राज का मौन साझीदार। ब्रीफ केस के निकट एक कैलेन्डर टंगा था। स्पष्ट दिखाई न देने के बावजूद खिलखिलाते हुए बच्चे को गोद में संभालती माँ का चित्र उसके कल्पना चक्षुओं के सम्मुख ठिठक गया। फूल बिखराता बच्चा, प्रसन्न बदन में उसे अपने ऊपर ठिठोली करते से लगे। सहसा उसे लगा, कैलेन्डर मे चित्रित चेहरे बदल रहे हैं। माँ के चेहरे पर ज्योत्सना का चेहरा चिपक गया है और गोद में खेलता हुआ बच्चा धुएं की तरह क्रमश: हवा मे घुलता जा रहा है। ज्योत्सना करुण हो उठी है। अपूर्णाकांक्षा की सजीव प्रतिमा सी वह बच्चे को विलुप्त होता देख रही है। एक अपरिचित सा शून्य उसकी आँखों में उतर रहा है। वह उस शून्य को खंगालने का प्रयत्न करता है। बहुत दूर, कोहरे की एक मोटी पर्त को भेदने की चेष्टा में वह एक टेढ़े-मेढ़े आकार से टकरा जाता है। वह पहचानने की कोशिश करता है कि आकार सिमट-फैलकर अक्षरों में ढलने लगता है। विमूढ सा वह उन अक्षरों को पढ़ जाता है 'नपुंसक'। उसके कानों में एक साथ हजारों घंटियां बज उठती हैं, हजारों घन गरजने लगते हैं।

उसने भयभीत होकर ज्योत्सना की ओर देखा। वह दीन-दुनिया से बेखबर, निद्रा के आगोश में थी।

विवशता की भी कोई सीमा तो होनी चाहिये। साधारण सा एक क्लर्क इतनी बड़ी विभीषिका को झेलने का साहस कहां से लाये? डा. कुकरेजा जैसे ख्याति प्राप्त चिकित्सक भी जिसके सम्मुख घुटने टेक चुके हैं, वह अकेला, अकिंचन किस भरोसे और विश्वास को लेकर लड़ेगा उससे? स्वयं अपनी सान्त्वना के लिये तो उसके पास कई तर्क हैं किन्तु ज्योत्सना को समझाने के लिये उसके पास क्या है? उसके तर्कातीत मौन आक्षेप को क्या कह कर नकारेगा वह? इतने सारे मित्र, रिश्तेदार, माता-पिता, इनमे से किसी के भी सामने क्या मुंह लेकर जायेगा वह? उपहासपूर्ण दृष्टियों और व्यंग्यपूर्ण संकेतों को वह सहन कर सकेगा क्या? पीठ पीछे चुभते विषबुझे तीरों की चोट तो किसी प्रकार पी जायेगा वह किन्तु सीधे हृदय

चुभते अग्निबाणों को झेलने जितनी सामर्थ्य है क्या उसमें ? टूटे शीशे की तरह फ्रेम में जड़ा रहकर वह कब तक सुरक्षित रख सकेगा तस्वीर को ? प्रफुल्ल कब तक साथ निभायेंगे उसका ? बिखर नहीं जायेगा क्या वह स्वयं ही अन्ततोगत्वा।

डा. कुकरेजा के पास ढेरों रुपये हैं। लोग उनके पद, धन और सामाजिक प्रतिष्ठा के सामने मुंह खोलने का साहस नहीं कर पाते। मगर उस जैसे साधनहीन व्यक्ति को इतनी सरलता से निश्चिन्त होकर जीने देंगे क्या लोग ? अभी छब्बीस का ही तो है वह। यह सब होते हुए भी कि मृत्यु की कंटीली अंगुली आजकल अपेक्षाकृत जल्दी ही आदमी का गला दबा देती है, पचास-पचपन तक तो निकाल ही जाते हैं लोग साधारणतः। यदि उसे इतना भी जीना पड़ा तो कैसे कटेंगे ये पच्चीस-तीस लम्बे, क्रूर और भयानक वर्ष ?

उसे लगा, अंधकार को चीरती हुई एक लम्बी सड़क उसके सामने बिछती जा रही है। वह परेशान सा डरा-डरा उस सड़क पर हांफता हुआ दौड़ रहा है। उसकी पिंडलियां और जांघें दर्द से भर गई हैं, गला पानी के अभाव में सूखकर कांटों की चुभन महसूस कर रहा है। सड़क के किनारों पर जगह-जगह कैलेन्डर की बड़ी-बड़ी तारीखें चमक रही हैं। हर तारीख की चमक मे, पिछले पत्थर की तुलना में आंशिक सुर्खी है। वर्षों के स्थान पर मील वाले पत्थरों की जगह, बड़े-बड़े राक्षस खड़े हैं। उनके जबड़े फैले हुए हैं और भुजाएं बार-बार हरकत कर रही हैं। भयानक एवं विकराल लगने वाले उन राक्षसों के चारों ओर, दूर-दूर तक, सड़क खून से सनी हुई है।

उसकी फूली हुई भयभीत सांसें जल्दी-जल्दी फेफड़ों से हवा बाहर निकाल रही है। हर एक उच्छ्वास के साथ खून के कतरे बाहर निकल रहे हैं। ये कतरे जहां जहां सड़क पर गिरते हैं, वहां-वहां बहता हुआ खून काले-काले लोथड़ों में बदल जाता है। वह भयभीत होकर और तेज दौड़ने की चेष्टा करता है कि फिसलकर गिर जाता है। निढाल और बेबस सा भयानक परछाइयों को ताकता हुआ वह खून से भरी हुई दिनों, महीनों और वर्षों से बनी उस सड़क पर औंधे मुंह पड़ा है, खून से लथ-पथ ज्योत्सना अपने सम्पूर्ण आकार प्रकार को लेकर उभरती है। उसकी आंखों में घृणा का सैलाब है, जिसमें बेहद डगमगाती एक नाव है। उस नाव मे एक खूबसूरत सा मुस्कराता हुआ गुड्डा है। गुड्डे के आकर्षक नैन-नक्श एकटक देखता हुआ वह आगे रेंगने की कोशिश करता है कि नाव उलट जाती है। गुड्डा एक झटके के साथ पानी में डूब जाता है। ज्योत्सना उसकी ओर अंगुली उठाकर चीखती है, "तुम नपुंसक हो ! तुम नपुंसक हो !! तुम नपुंसक हो !!!"

उसने कसकर आंखें बन्द करली। काले-सफेद से धब्बे उसकी बन्द आंखों के सामने तैर गये। करवट लेकर उसने अपना हाथ ज्योत्सना की बांह पर रख दिया।

वह पूर्ववत निद्रामग्न रही। लू का एक गर्म झोंका उसे बुरी तरह झुलसा गया। उसने चाहा कि ज्योत्सना को वह झिंझोड़ कर जगा दे और सब कुछ उसे बतादे सच-सच। वह इस घुटन को अकेला बर्दाश्त नहीं कर सकता, इस बोझ को अकेला वहन नहीं कर सकता। टूट जायेगा इस तरह तो वह। भाग्य के अदृश्य लेख को मिटाना उसके वश में नहीं है। स्थिति को अपने स्तर पर निपटाने का भरसक प्रयत्न किया है उसने। किसी को अपनी व्यथा का साझीदार बनाये बिना,ऋण लेकर विशेषज्ञ से इलाज कराया है उसने। इससे अधिक वह कर भी क्या सकता था? दो वर्ष की वैवाहिक निकटता ने ज्योत्सना को समझने का जितना अवसर उसे दिया है, उसे देखते हुए तो उसका दृष्टिकोण निश्चय ही उदार होना चाहिये। ज्योत्सना यदि वस्तुस्थिति को समझ सकी या उसकी विवशता को महसूस कर सकी तो कितना हल्का हो जायेगा वह। ज्योत्सना का सान्निध्य और सहयोग पाकर उस अभाव को भूल जाना कितना सरल हो जायेगा उसके लिये।

ज्योत्सना की बांह खींचकर धीरे से उसने आवाज लगाई। वह कुलबुलाई। फिर उसके स्पर्श को महसूस कर के बोली, "तुम अभी तक सोये नहीं क्या?"

"नहीं, नींद आ नहीं रही है।"

उसकी ओर करवट बदलकर उसके गिर्द अपनी बांह डालकर ज्योत्सना ने कहा, "लो, अब सो जाओ आँखें बन्द करके।"

"ज्योत्सना ने अपनी उनींदी आँखें पुनः बन्द करली हैं और शायद सो भी गई है। उसकी बांह ढीली होकर पीछे की ओर लटक गई है।"

न जाने कितने विचार एक साथ तड़पड़ाये आसमान की ऊंचाइयां नापने के लिये। किस तरह निश्चित होकर सोई है ज्योत्सना। सारी बात उसे बताकर अपने साथ-साथ उसके सुख स्वप्नों को भी भयावहता में परिणित करने से क्या होगा? वह जितने दिन अनभिज्ञ रहेगी चैन से सोयेगी तो सही। उसकी भांति खून से छलछलाती सड़कों पर तो नहीं लौटेगी वह कम से कम। कितना प्यार करती है वह उससे। प्यार का यह सोता इस धधकते रेगिस्तान में सूख नहीं जायेगा क्या? सब कुछ बता देने के बाद ज्योत्सना की दृष्टि मे गिर नहीं जायेगा क्या वह? वह लाख समझायें मगर क्या विश्वास दिला सकेगा ज्योत्सना को कि उसमें क्षमता ही नहीं है कि उसकी आकांक्षाओं को राह दिखाने वाले जीवाणु उसमें भी कुलबुलाते हैं, किन्तु उनका मार्ग अवरुद्ध है।

सायोप्सी के बाद डॉक्टर ने कहा था, "हालांकि उम्मीद बहुत कम है, फि भी आप एक बार एक्स-रे करा लीजिये।"

"डॉक्टर सा०, मुझे स्पष्ट बताइये न, प्लीज।"

"देखिये, मैंने आपको पहले ही बताया था कि मेरे विचार से 'स्पर्म' करोड़ों की संख्या में बन रहे हैं। आपके शरीर की विशिष्ट प्रकार की गंध इसी बात की ओर संकेत करती है। अब मेरी यह धारणा निश्चय में बदल गई है। सीमन टेस्ट और बायोप्सी के बाद इतना तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि आप 'स्टराइल' नहीं हैं किन्तु लगता है 'स्पर्मस' के बाहर आने का रास्ता रुका हुआ है। मुझे दुःख है कि मि० लाल, मैं दावे के साथ और कुछ नहीं कह सकता।"

उसे लगा था, सितारों से भी ऊंचे उसकी आशाओं के महल ढहने की तैयारियां कर रहे हैं। उसके हाथ बौने हो गये हैं। अंगुलियां सिकुड़कर छोटी हो गई हैं और इन बौने हाथों की छोटी-छोटी अंगुलियों से वह उस महल की दीवारों को रोकने की कोशिश कर रहा है। डॉक्टर की बताई हुई 'एक्स-रेज' अदृष्य, महीन, गर्म सुइयों की तरह उसके अन्दर धंसने जा रही हैं। ये तीखी, बारीक सुइयां विशाल गार्डरों में परिवर्तित हो सकेंगी क्या ? भुरभुराते हुए उस महल को ये गार्डर गिरने से रोक सकेंगे क्या ?

ज्योत्सना की अपने ऊपर झूलती बांह को हल्के से हटाकर वह सीधा हो गया। आज नहीं तो कल कभी तो यह भेद खुलेगा ही। ज्योत्सना को क्या जवाब देगा तब वह ? उसकी इस बेपनाह विवशता को चुपचाप झेल सकेगी क्या ज्योत्सना ? उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी, यदि यह बात जानने का कोई साधन उसके पास होता तो कितना सहज हो जाता वह ?

उसके दुःख को हल्का करने के लिये यदि आवश्यक हो तो किसी बच्चे को गोद भी ले सकता है वह। ज्योत्सना की बाहों को एक जीता-जागता खिलौना मिलने के बाद, पूरी तरह नहीं तो कुछ अंशों में ही सही उसकी ममता को सहारा मिल जायेगा। किन्तु नटखट शैशव की अठखेलियों के रूप में अपने स्नेह और ममता का प्रतिदान पाकर भी वह इस अभाव को भूल सकेगी क्या ? उसकी गोद में उसका अपना नहीं किसी और का बच्चा खेल रहा है, यह विचार क्या कभी भी आयेगा नहीं उसके मस्तिष्क में ? उस समय ज्योत्सना से आँखें मिलाने का साहस जुटा सकेगा वह ? जो कुछ उसकी आँखें कहेंगी, उसे पढ़ और समझ लेने के बाद क्या आत्महत्या ही इस पड़ा का एक मात्र निदान नहीं होगा उसके लिये ?

दोष ज्योत्सना का नहीं है। मगर दोष उसका भी तो नहीं है। उसे क्या पता था कि उसके अन्दर एक बन्द गुफा है, जिसका अंधेरा उसके अपने जीवन को ही नहीं बल्कि ज्योत्सना के जीवन को भी निगल जावेगा। पहले पता होता तो सम्भवतः वह मृत्युपर्यन्त अविवाहित रहना अधिक पसन्द करता। कैसी विचित्र विडम्बना है ~ चिकित्सा विज्ञान इतना विकसित होकर भी उसके लिये पंगु है। प्रयोगशाला

में शिशुओं का निर्माण करने का दावा करने वाला विज्ञान उसके जीवन को किलकारियों से नहीं भर सकता, उसे एक शिशु नहीं दे सकता।

एक्स-रे प्लेट का निरीक्षण करते हुए डॉक्टर को वह धड़कते हृदय से देखता रहा था। डॉक्टर की तटस्थ भंगिमा उसके लिये अजनबी नहीं थी। फिर भी डॉक्टर के मुंह से कुछ सुनने से पूर्व ही वह उसके हाव-भाव से जान लेना चाहता था कि डॉक्टर के पास कहने को क्या है।

एक्स-रे प्लेट मेज पर रख कर अपनी वाणी को सान्त्वना का भरपूर पुट देते हुए डॉक्टर ने कहा था, "मैं आपको धोखे में नहीं रखना चाहता मि० लाल, शायद हमारे हाथ में और कुछ भी नहीं है।"

उससे कुछ बोला नहीं गया था। उसकी दृष्टि में शून्य उभर आया था और खाली-खाली नजरों से वह डाक्टर को देखता निर्वाक खड़ा रहा था। सितारों से ऊंचे महल जिनको अपनी बौनी हो गई अंगुलियों से जी तोड़ प्रयत्न कर के किसी तरह गिरने से रोका था उसने, झटके के साथ धराशायी हो गये थे। उसे लगा था, वह समूचा ही मलबे के नीचे दब गया है। उसके होंठों से आवाज नहीं निकल पा रही है। ईंट, चूना और पत्थर मलबे में से उठ-उठकर उसके ऊपर पड़ रहे हैं। एक निश्चित गति से, निश्चित स्थानों पर चोट करते ये ईंट और पत्थर उसके अंग प्रत्यंग पर कुछ गोद रहे हैं। 'नपुंसक....नपुंसक' चीखता हुआ कोई उसके निकट आ रहा है। अर्द्धचेतनावस्था में वह देखता है, बाल खोलकर विलाप करती हुई ज्योत्सना उसके सामने आकर खड़ी हो गई है। उसकी गोद में एक छोटे से बच्चे की लाश है। लाश को अपने साथ बुरी तरह चिपकाये हुए वह उसका नाम लेकर उस पर आरोप लगाती जा रही है और सुबकियां लेती जा रही है।

डॉक्टर कह रहा था "आपको निराश नहीं होना चाहिये मि० लाल, कई बार आगे चलकर 'स्पर्मस' को रोकने वाला रास्ता अपने आपही खुल जाता है। मैंने खुद इस तरह के कई केस देखे हैं। ऑफकोर्स, वी हैव नो आल्टरनेट एक्सेप्ट टु रिलाई अपॉन द गॉड।"

उसे लगा था, डॉक्टर के शब्द उसके कानों से टकराकर लौटते हैं और हवा में टंग जाते हैं। डॉक्टर के मुंह से निकला हर शब्द आकार बदल कर 'नपुंसक' बनता जा रहा है और ज्योत्सना अर्द्धविक्षिप्त सी इस शब्द का उच्चारण कर रही है।

उसने करवट लेकर ज्योत्सना की ओर पीठ फेर ली। जब सारे लोगों को पता लगेगा कि वह क्षमताहीन है, कैसी भीषण स्थिति होगी तब उसकी। घर में ज्योत्सना और घर से बाहर परिचित और मित्र। मुँह छिपाने की जगह भी नहीं

मिलेगी उसे। कहीं घर, दफ्तर, बाजार, परिचित, सगे-सम्बन्धी और रिश्तेदार सबके व्यंग्य से पुते चेहरे, सहानुभूति का अभिनय करती कटाक्षपूर्ण भंगिमाएं उसे कंपा गई।

डा० कुकरेजा की पत्नी को जब पति की इस दुर्बलता का ज्ञान हुआ होगा, उसकी क्या प्रतिक्रिया रही होगी ? वे दोनों आयु से अब प्रौढ़ हो चले हैं, फिर भी प्रत्येक सार्वजनिक कार्यक्रम में साधारणतः साथ होते हैं। तो क्या श्रीमती कुकरेजा पर अपने पति की क्षमताहीनता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा होगा ? दोनों का एक दूसरे के प्रति लगाव तो इसी बात की ओर संकेत करता है।

ज्योत्सना भी श्रीमती कुकरेजा की तरह इस बात को हल्केपन से नहीं ले सकती क्या ? छोटे बच्चे कितने अच्छे लगते हैं उसे। अपने भावी शिशु के सन्दर्भ में उसके स्वप्न आहत और लहूलुहान होकर भी क्या उन दोनों के मध्य पल्लवित मधुर सम्बन्धों को यथावत् बनाये रख सकेंगे ? ज्योत्सना के हृदय में जो प्रेम, आदर, श्रृद्धा और अपनत्व इस समय है, इस जानकारी के बाद भी क्या वह बरकरार रह सकेगा ? क्या वे दोनों ऐसी दीवारों से नहीं घिर जायेंगे, जिनमें सदा-सर्वदा के लिये कैद रहकर घुटने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा ?

उसे लगा, वह सब कुछ सहन कर सकता है किन्तु किसी के, विशेषकर ज्योत्सना के मुंह से अपने लिये 'नपुंसक' शब्द नहीं सुन सकता। उसके मुंह से यह शब्द सुनकर वह स्वयं को वश में नहीं रख सकता। उचित अनुचित कुछ भी घट सकता है उसके हाथों।

एकाएक उसके मस्तिष्क मे एक और विचार आता है। क्यों न वह ज्योत्सना को जांच के लिये डॉक्टर के पास भेज दे और डॉक्टर द्वारा उसे ही बाझ घोषित करा दे ? उसने ज्योत्सना की ओर देखा। अंधेरे को बेधने की अभ्यस्त उसकी आँखों ने लक्ष्य किया, निश्चिन्त होकर सोई ज्योत्सना के मुखमण्डल पर सहज निश्छलता और विश्वास से परिपूर्ण एक मुस्कराहट खेल रही है।

परिस्थितियों की सिकुड़ती सीमा रेखाओं में स्वयं को विवश अनुभव करने वाला व्यक्ति कहां से कहां पहुंच जाता है, उसने सोचा। इसी ज्योत्सना ने प्रत्येक निर्णायक क्षण मे निश्चित होकर उसका साथ दिया है। जब ससुराल वालों के साथ उसके सम्बन्ध मान-सम्मान के त्रिशूल पर फड़फड़ाने लगे थे, ज्योत्सना ने कितनी दृढता के साथ उसका पक्ष लिया था। उसकी अनिच्छा को देख कर आसमान को छूती महगाई की बात सोचकर, सिनेमा की बेहद शौकीन ज्योत्सना अब अपनी ओर से कभी पिक्चर ले चलने के लिये नहीं कहती। उसका और उसके माता-पिता का कितना ध्यान रखती है वह ? शेष लोगों की सुविधा के मूल्य पर व्यक्तिगत सुविधा को कभी भी तो महत्व नहीं दिया है उसने। पूर्ण स.पं.

का जीता-जागता स्वरूप जिस ज्योत्सना का देखा है उसने अब तक, उसी ज्योत्सना को उसीकी अपनी दृष्टि में गिराकर वह स्वयं को क्षमा कर सकेगा क्या ? सदा हँसते मुस्कराते चेहरे पर उदासियां पुती देखने का साहस कहां से लायेगा वह ? ज्योत्सना और उसके बीच उठती हुई इस एक दीवार को तोड़ना उसे कठिन लग रहा है। इतनी दीवारों को चुनने के बाद क्या सब कुछ आसान हो जायेगा उसके लिये ?

आदमी का पंगुत्व स्थायी होता है किन्तु झूठ हमेशा पंगु नहीं रहता। पेड़ों की डालियों की तरह उसके अंग पुनः फूटकर निकलते हैं। उसके पंख दुबारा उग जाते हैं। उसकी जिव्हा दुबारा लम्बी हो जाती है। आज का पंगु झूठ जब भी जवान और शक्तिशाली बनकर ज्योत्सना के सम्मुख आखड़ा होगा, वह उसकी दृष्टि में कितना गिर जायेगा। ज्योत्सना का प्रेम, उसका विश्वास, उसकी श्रद्धा उस जवान हो आये झूठ के बागी हाथों में फंसकर जब घृणा और अविश्वास की विषैली लपटों में परिवर्तित हो जायेंगे, उसकी भक-भक जलती आँखें कितनी गहराई तक झुलसा जायेंगी उसे ? ।

वास्तविकता का नग्न रूप देखकर अधिक से अधिक वह नपुंसक ही समझेगी न उसे। उन जहरीले नाखूनों की चुभन, दहकती आँखों की तपिश, इस एक शब्द से निश्चय ही कई गुना वजनदार होगी। फिर यह आवश्यक भी तो नहीं है कि वह स्थिति को न समझे। यदि उसकी विवशता को वह महसूस कर सकी, तब तो उसकी सभी आशंकाएं ही निर्मूल हो जायेंगी। उसके पक्ष को आज नहीं तो कल, कल नहीं परसों कभी तो अनुभव करेगी वह।

उसने ज्योत्सना की ओर करवट बदल कर उसे आलिंगनबद्ध किया और अपने मुंह को उसके कान के निकट ले जाकर विश्वासपूर्वक बोला, "ज्योत्सना सुनो, मुझे तुम से एक जरूरी बात कहनी है।"



परछाईं

मोना। आश्चर्य मिश्रित परछाईं आल्हाद से उसकी धड़कनें झटका खाकर व तेज तेज दौड़ने लगी। मोना। हां, बिल्कुल मोना। शत प्रतिशत सही। वैसी ही भावुक, पनीली आँखें। वैसे ही खूबसूरत, तराशी फाँक से होंठ। वैसा ही गोल चेहरा। गालों की हड्डियां उसी मनमोहक नाज से उभरी हुई। मस्तक तक घिर आये घने केश। बीच से निकली हुई मांग। नियोजित अनुशासन के विरुद्ध बगावत करती दो लटें।

अदाओं का अनियन्त्रित सैलाब उसे बरबस वहां ले गया। वह सिगरेट के तीखे धुंए से घिरा, दल्लों में लिपटा, अन्धेरे कमरे में बन्द आसमान को घूरता मनुष्य बन गया। मि० पारिख, चीफ सुपरिन्टेन्डेन्ट की कुर्सी, उनका नाम अब उसे अपना नाम नहीं, अपने किसी मित्र का नाम महसूस होता था। ऐसे मित्र का नाम, जिसे समय की सलाखों ने पीट-पीटकर शिनाख्त खो देने पर मजबूर कर दिया हो। मि० पारिख की भूलभुलैया ने जिसे ग्रस लिया था, वही मनीष आज जीवित होकर मि० पारिख के सीने पर पाव रखता, स्मृतियों को रोंदता उसमें प्रवेश कर गया।

"वह मेरी वाइफ है सर, कीर्ति। और वे मेरे बॉस, मि० पारिख।"

मनीष से मि० पारिख तक की यात्रा तय करते हुये स्वप्निलता की धुंध उसकी आँखों में अटकी रह गई।

"लवली," गुनगुनाते हुए उसे लगा, यह विशेषण भ्रामक सिद्ध हो सकता है।

"रियली लवली नेम-कीर्ति।"

रोजी फेस पाउडर का एक पूरा पैक कीर्ति के मुंह पर ढुलक गया। मुस्कराकर उसने अपना सिर झुका लिया।

मनीष फिर लौट आया।

"मोना, तुम इस तरह मत हँसा करो।"

"किस तरह ?"

"इस तरह जैसे अभी अभी तुम हँसी थीं निचले होंठ को दांतों से दबाकर।"

"क्यों ?"

"मुझे डर लगता है।"

"क्यों भला ? डर क्यों लगता है तुम्हें ?"

"इतनी कारीगरी से तराशा हुआ होंठ कभी गलती से कट गया तो........।"

गुलाबी होती लवें। झुकता हुआ चेहरा। दांतों में कस कर दबाया हुआ हँसता निचला होंठ।

"थैंक यू सर," देसाई ने विनम्रता से झुकते हुए कहा।

"तुम्हारी मिसेज कहाँ की है देसाई ?" गोया मि० पारिख ने नहीं मनीष ने पूछा।

"अहमदाबाद की हैं सर।"

गुम्बद से छोड़े हुए शब्द की तरह अहमदाबाद मि० पारिख के मस्तिष्क में गूंजता रहा।

"अहमदाबाद में आपका घर कहां है, मिसेज देसाई ?" मि० पारिख ने सीधा कीर्ति को सम्बोधित किया।

"कांकरिया के निकट है।"

एक भूली बिसरी मीठी तान, बड़ी देर से रुके हुए किसी ठंडे झोंके की तरह मि० पारिख को सिहरा गई।

"तुम इतना चुप चुप क्यों रहती हो, मोना ?" मनीष ने पूछा।

"नहीं तो।"

"नहीं तो क्या होता है ?" मोना ने उलझन से मनीष को देखा।

"नहीं तो की जगह तुमने यह क्यों नहीं कहा कि नहीं तो, बोलती तो हूँ।"

"जब नहीं तो बोलने से काम चलता है, फिर बोलती तो हूँ कहने से क्या फायदा ?

"मैं फायदा नुकसान कुछ नहीं जानता। बस इतना जानता हूँ की तुम ज्यादा से ज्यादा बोलों और मैं ज्यादा सुनूं।"

"ऐसा क्यों भला ?"

"इसलिये कि तुम्हारे बोलते रहने से मुझे यों महसूस होता है जैसे कोई मधुर तान धीरे-धीरे मुझे लपेटती जा रही है और मैं मुग्ध सा बेसुध हुआ जा रहा हूं।"

आवाज लहजा, उच्चारण का तरीका, स्वर का प्रभाव। वही। वही। सब कुछ वही है। पर भी अहमदाबाद मे और कांकरिया..............।"

"मालूम होता है सर, आप अहमदाबाद से काफी वाकिफ हैं।"

"हां, मैंने एम० ए० वही से किया है।"

मि० पारिख ने देखा, कतार बांधे कई चित्र सामने खड़े हैं। मनीष कॉलेज के पोर्च मे से गुजर रहा है, मोना साथ है। मनीष कॉलेज की डिबेट में बोल रहा है, मोना सामने है। मनीष पढ़ रहा है, मेज पर मोना के तैयार किये हुए नोट्स हैं। मनीष कॉलेज जाने से पहले कपड़े निकालने के लिये वार्डरोब खोल रहा है, चन्दन की सन्दूकची मे मोना का चित्र है। परीक्षा के दौरान प्रश्नों के उत्तर देने के लिये मनीष पेन निकालता है, उस पर मोना का नाम है। अचानक घने, लम्बे बालों की छत्रछाया में सांस लेता एक कोहरा चन्दन की वही वार्डरोबी महक लिये उसे अपने चारों ओर दूर-दूर तक फैलता अनुभव हुआ।

"अहमदाबाद क्या इतना अच्छा शहर है सर ? कीर्ति तो जब देखिये अहमदाबाद अहमदाबाद करती रहती है।"देसाई ने सिलसिला टूटने से बचाया।

"अच्छा शहर है ?" जिस शहर ने उसे इतना जबर्दस्त नासूर दिया वह अच्छा शहर ? जो शहर मोना को मार सकता है, वह अच्छा शहर नहीं हो सकता। हरगिज नहीं हो सकता। एक टीस मनीष की सीमारेखाओं को पार करती हुई मि० पारिख के चेहरे को झुलसा गई।

मनीष को मर जाने दो पारिख। मर जाने दो। बड़ी मुश्किल से तो वह मरा है। तुम उसे फिर जिन्दा करने पर तुले हो।

"हां, अहमदाबाद वाकई अच्छा शहर है देसाई ? वैसे मिसेज देसाई, आप तो अहमदाबाद से आई ही हैं, कांकरिया मे अब कितना पानी है ?"

"सारा पानी सूख गया।" संक्षिप्त उत्तर। मधुर, मध्दम स्वर। मोना मोना। मोना॥

"क्या ? कांकरिया मे अब एक बूंद भी पानी नहीं रहा ?"

मनीष घायल सा घिसटता हुआ समुद्र के सामने बिछी रेत पर पसर गया। कांकरिया नाम। मोना। वांटिंग। हंसती गाती जिन्दगी और...और मौत। मोना

की आकस्मिक, अनपेक्षित मृत्यु से फालिजग्रस्त वह अपने संत्रस्त हाथों से रेत खोद खोदकर शंख निकालता रहा। स्मृतियां पलट पलटकर समय की जुगाली करती रहीं।

चन्दन की सन्दूकची। मोना का चित्र। मोना के पत्र। समुद्र किनारे, रेत में से निकाला हुआ एक खूबसूरत शंख। मृत मोना को अर्घ्य चढ़ाने की भावना से मनीष ने वह शंख चन्दन की सन्दूकची में रख दिया था और मोना का चित्र, यत्नपूर्वक संभालकर रखे गये उसके पत्र शंख के संसर्ग में दीमक की चपेट में आ गये थे।

"क्या बात है सर, आपकी तबीयत तो ठीक है ?" मि० पारिख को झकझोरकर मनीष भाग गया।

"हाँ.......ठीक है... ....ठीक है । दरअसल" वह थोड़ा रुककर शब्द तलाशता रहा, "बैठे-बैठे थोड़ी थकान आ गई है।"

"तो एक कप काफी पी लें सर. । उठो कीर्ति काफी बना दो।"

"नहीं-नहीं देसाई।" मि०पारिख ने जल्दी से कहा,"आप बैठिये मिसेज देसाई। काफी-वाफी रहने दीजिये।"

"एक कप ले लें सर, थकान तुरन्त दूर हो जायेगी।" देसाई ने आग्रह किया।

"नहीं देसाई, अभी इच्छा नहीं है।"

"अचानक मि० पारिख के मस्तिष्क मे एक विचार कुलबुलाया, आप लोगों का मैरिज एलबम होगा न, देसाई ?"

"जी हां" देसाई ने फुर्ती से उठकर आलमारी खोली। एलबम के पृष्ठ खुलते रहे, बन्द होते रहे। मनीष मोना को ढूंढता रहा, साधता रहा।

"एलबम कैसा लगा सर ?"

"अच्छा लगा। आप दोनो का एक पोज तो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।" मि० पारिख ने एलबम दुबारा हाथ मे लेकर फोटो पलटना चालू कर दिया।

"यह रहा," मि० पारिख ने एकटक उस फोटो को देखते हुए कहा, "वैसे देसाई, तुम्हारे पास इस पोज की स्पेयर कापीज हैं क्या ?"

पेपर में से एक फोटो अलग कराना बहुत आसान काम है। कीर्ति का फोटो। मोना का फोटो। यादों को सहारा मिलना चाहिये। यादों को सहारा मिल जायेगा।

"स्पेयर कापीज हैं तो नहीं, मगर बनवाई जा सकती हैं। यह बात कैसे पूछ रहे हैं सर ? मि० पारिख जोर से हँसे 'अरे भाई देसाई, ऐसे अच्छे फोटो की एक-एक कापी बतौर याददाश्त अपने दोस्तों को भी तो देनी चाहिये तुम्हें।"

देसाई ने आश्चर्यमय दृष्टि से मि० पारिख को देखा। फिर एलबम में से यह चित्र निकालकर उसने मि० पारिख की ओर बढ़ाते हुए कहा, "यह मेरी खुश-किस्मती होगी सर।"

कुछ क्षण पूर्व अनायास कुलबुलाया विचार सफलता की गंध पाकर उछल पड़ा। इस पुलक को कुशलतापूर्वक दबाते हुए मि० पारिख ने जवाब दिया नहीं देसाई, नहीं। मैं तो यों ही मजाक कर रहा था। एलबम में से भी कहीं फोटो निकाला जाता है।"

"नहीं सर, इस फोटो को तो अब आपको रखना ही होगा। इस बहाने मुझे और कीर्ति को कभी कभी आप याद तो कर लिया करेंगे।"

मि० पारिख मनीष। मि० पारिख, मनीष। मोना। कीर्ति, मोना। घुले मिले नाम, घुली मिली तस्वीरें। वह तस्वीर मोना की कहां होगी ? जैसा कि देसाई कहता है, तस्वीर देखकर याद तो कीर्ति आयेगी। मोना तो कीर्ति की परछाई भर लगेगी। मनीष को मोना की तस्वीर चाहिये कीर्ति की नहीं। मोना, मोना है। कीर्ति उसका विकल्प नहीं बन सकती।

मि० पारिख को लगा, इस प्रसंग को चलाकर उन्होंने एक बहुत बड़ा अपराध कर दिया है। मनीष के साथ, मोना के साथ और इस अपराध के बोझ से उनकी कमर झुकती चली जा रही है।

□

बन्द आसमान का आखरी दरवाजा

छुट्टी का दिन उससे काटे नहीं कटता। अलसाते हुए सुबह दस बजे उठना। कमरा साफ करना। कपड़े धोना। स्नान करके नाश्ता करना। ये सभी काम बहुत धीरे-धीरे आराम से करने के बाद भी आधा दिन बाकी रह जाता है। यह आधा दिन गर्मियों की सनसनाती तनहा दोपहरी की तरह उसे बेहद डरावना महसूस होता है।

छुट्टी हुआ ही न करे तो कितना अच्छा हो। कुछ देर दफ्तर की तैयारी में, कुछ देर दफ्तर के काम में, कुछ देर गप-शप में, कुछ देर खाने-पीने में, कुछ देर घूमने-घामने में, दिन रेशा-रेशा फिसल जाये। जून के लम्बे उबाऊ दिन, दिसम्बर के छोटे सुहावने दिनों में बदल जायें। यह तमन्ना पूरी हो जाये तो मजा आ जाये, बस।

मगर सब लोग उस जैसे थोड़े ही हैं। घर-गृहस्थी के काम, छोटी-मोटी जिम्मेदारियाँ नाते रिश्तेदारों से भेंट मुलाकात, सौदे सुलफ की खरीददारी, पत्नी और बच्चों का मनोरंजन, उन्हें घुमाना-फिराना या सिनेमा दिखाना। ऐसे और इस तरह के अन्य काम मुगताने के लिये लोग छुट्टी के दिन का इन्तजार करते रहते हैं। जब साक्षात् सृष्टा को छ: दिन काम करने के बाद सातवें दिन छुट्टी की जरूरत महसूस हो सकती है तो पृथ्वीवासी अपवाद कैसे बनें? छुट्टी न हो तो दुनियां का चैन से जीना हराम हो जाये। उस जैसे छड़ों और कवारों का क्या है? इस तरह या उस तरह जी ही लेंगे।

सबसे बड़ी परेशानी की बात यह है कि उसे नाटक देखने और घूमने-फिरने के अलावा कोई शोक नहीं है। लेकिन नाटक कस्बे में छठे-छमाही प्रदर्शित होते हैं और घूमने फिरने की सामयिक व आर्थिक सन्दर्भों में कुछ निश्चित सीमायें होती हैं। कुल मिलाकर बड़ी मुश्किल है।

हां, मामा जी यहां हैं। उनसे मिलकर, बातें करके थोड़ा वक्त गुजर जाता है। मगर उनके साथ भी सिर्फ वक्त गुजरने वाली बात ही हो पाती है, इससे अधिक कुछ नहीं होता। वे ज्यादा पढ़े लिखे हैं नहीं। रोजी-रोटी पैदा करने के पिछले कई वर्षों से कठिन संघर्ष कर रहे हैं। पांच लड़कियों और एक लड़के के

हैं। लड़का सबसे बड़ा है और अभी बारह साल का है। इस आशा से कि जोड़ा हो जाय वे पांच लड़कियों को निमन्त्रित कर बैठे हैं। अब उनका और अपना पेट भरना समस्या बन गया है। छोटे-बड़े कई काम करके उन्होंने किस्मत आजमाई है, परन्तु स्थाई जुगाड नही कर सके हैं। इस अनवरत संघर्ष ने उनके शरीर के साथ-साथ उनके कोमल तत्वों को भी जैसे थका दिया है। इसलिये पन्द्रह बीस मिनट, आध घन्टे के बाद ही बातचीत बेहद सतही और उबाऊ किस्म की हो जाती है। कुछ भी हो, समय तो गुजारना ही होता है। इसलिये और कोई-रास्ता जब बिल्कुल नजर नही आता तो वह उनके पास चला जाता है।

सात साल पहले बी.ए. करने के तुरन्त बाद मिले नियुक्ति पत्र में इस कस्बे का नाम देखकर वह स्वयं और घर वाले बेहद खुश हुए थे। मामाजी यहीं थे, पोश्त की डोडी के एकमात्र अधिकृत विक्रेता। उनका सरकारी लाइसेन्स सोने के अंडे देने वाली मुर्गी की तरह धन और एश्वर्य की खान का काम करता था उनके लिये। नशा करने वालों की गरज पोश्त की डोडी खरीदने के लिये उनसे मामा जी के चक्कर कटवाती थी। मामा जी स्वय भी पोश्त की डोडी के नशे मे डूबे आधा दिन घर पर और आधा दिन दुकान पर आराम से गद्दे पर लेटे रहते थे। मामा भांजे की अच्छी-खासी पटती थी। उनके साथ रहना, घर की तरह खाना-पीना और मजे से बैंक की नौकरी करना। उसने नौकरी चालू कर दी थी।

बाद में मोटी और आसान कमाई वाला लाइसेन्स मामा जी के हाथ से निकल गया था। कलक्टर के साले को वह लाइसेन्स दिया गया था और मामा जी पर हेराफेरी के कुछ आरोप लगाकर मुकदमा लगा दिया गया था। आराम परस्ती और मुकदमेबाजी एक साल मे ही उनका घर खाली कर गई। घायल परिन्दे की तरह मामा जी बेचैन रहने लगे। घर की जरूरतों की बात पहले तो वे अनसुनी कर देते और फिर बार-बार सामने आने पर झुंझलाने लगते। उनके सिर से अपना बोझ हलका करने के लिये उसने अपनी व्यवस्था अलग की थी। कमरा उसी इलाके में उनके घर के पास मे ही ले लिया था। खाना होटल पर खाने लगा था।

वैसे अलग व्यवस्था करने से पहले उसने अपने खर्चे के एवज सौ सवा सौ रुपये का भुगतान करने का प्रस्ताव मामा जी के सामने रखा था। मगर इस प्रस्ताव से बुरी तरह आहत मामा जी के धुंधिया उठे चेहरे की खामोशी चोट ने उसे अपराधी बना दिया था। इसके बाद अलग रहने के अलावा उसे कोई चारा नजर नही आया था।

इन पांच छः वर्षो मे आवश्यकताओं ने मामी जी से क्या नही कराया है? अपने बच्चों को रूखी सूखी रोटी मयस्सर कराने के लिये उन्होंने हर सम्भव प्रयत्न

किया है। पोश्त की डोडी के ग्रादी शरीर में शारीरिक श्रम करने का सामर्थ्य नहीं है। मगर मामूली अक्षर ज्ञात ग्रौर अर्थाभाव उनकी ऐसी विवशतायें बन गई कि बीमार पड़ पड़कर भी उन्हे छोटी मोटी नौकरियां करनी पड़ी। वहां से निकाले जाने पर ग्रौर कोई सहारा न देखकर फुटपाथ पर गोली बिस्किट तक बेचा है उन्होने। शायद इसलिये भाजे का भुगतान वाला प्रस्ताव सुनकर ग्राहत होने वाले मामा की सुग्राहिता बहुत तेजी से भरती जा रही है।

लगभग एक वर्ष हुग्रा होगा इस बात को कि मामा जी को पैसा लगाने वाला एक ग्रासामी मिल गया है। ग्रासामी मिल गया है की बजाय संभवतः यह कहना ज्यादा ठीक रहेगा कि उन्होंने पैसा लगाने वाला एक ग्रासामी ढूंढ निकाला है। उसीकी लागत से उन्होने कोयले की चूरी की नलकियाँ बनाने की मशीन लगाली है। साथ में मिट्टी के तेल का भी उन्होने लाइसेन्स लिया है। बता रहे थे, इस लाइसेन्स को हथियाने के लिये उन्हें एक हजार रुपया खर्च करना पड़ा है। यह एक हजार भी उसी सेठ ने खर्च किया है। कारोबार उसी के नाम से हो रहा है। पैसा सारा उसका है, मेहनत सारी उनकी है। ग्राधी ग्राधी साझेदारी है। दोनों ग्रापसी समझ के ग्राधार पर काम कर रहे हैं। लिखा पढ़ी या एग्रीमेंट, ग्रादि का कोई झंझट दोनों में से किसी ने भी नहीं किया है।

यह काम चालू करने के बाद मामा जी में काफी स्फूर्ति का संचार हुग्रा है। पहले की तरह ग्रब वे धुंए की लकीर छोड़ती ताजा बुझी मोमबत्ती जैसे नहीं लगते। उत्साह से भरे होते हैं। सुखद भविष्य की ग्रनेक ग्राशायें ग्राकांक्षाएँ साफ-तौर पर उनकी ग्राँखों मे पढ़ी जा सकती हैं।

यही उत्साह है या कहा जाय सम्भावनाग्रों का चिराग है जो मामा जी को उनकी शारीरिक कमजोरी के बावजूद दिन भर जी तोड़ मेहनत करने की प्रेरणा देता है। सुबह सात बजे वे ग्रपने व्यावसायिक जीवन की शुरूग्रात करते हैं तगार बनाने से। मात्र एक मजदूर उनके साथ होता है। चिकनी मिट्टी ग्रौर कोयले की चूरी में पानी मिलाकर उसकी लुगदी बनाने के लिये, वही मसनद के सहारे ग्रपना दिन गुजारने वाले मामा जी फावड़ा उठाए नजर ग्राते हैं। चिलचिलाती धूप ग्रौर सिहराती ठंड में उनको तगार मे नगे पांव घुसकर फावड़े से लुगदी बनाते देखकर ग्रनायास विश्वास नही हो पाता कि इतना श्रम करके भी यह ग्रादमी सलामत है।

तगार तैयार करने के बाद मशीन चालू होती है। मामा जी मशीन पर बैठते हैं। मजदूर उनको लुगदी की परात थमाता रहता है ग्रौर वे नलकियाँ निकाल निकाल कर परात उसे लौटाते जाते हैं। तथाकथित कारखाने के बरामदे मे व छत पर सूखने के लिये नलकियां बिछाने के बाद जब बाहर फुटपाथ पर कतार लगने

लगती है तो भंगी से लेकर सामने वाले मकान के टटपूंजिये किरायेदार तक धमकियाँ देने आ पहुंचते है। विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर रोजी की दुहाई देकर वे उन्हें लौटाते है और जब चाहे मिट्टी का तेल बिना राशन कार्ड लें जाने की सुविधा उनकी झोली मे डाल देते है अहसान उतारने के नाम पर। ले-देकर जब सूखी नलकियाँ उठाने का अवसर आता है तो पता लगता है कुछ शरारती बच्चों ने फुटपाथ पर सूख रही नलकियों को रौंदा है और इसलिये 10 से 20 प्रतिशत नलकियाँ दुबारा चूरी बन गई हैं।

सूखी नलकियाँ बोरों में भरकर वे तोलते हैं। बीस-बीस किलो के बोरे तैयार करके, ठेले पर लादकर, अपने एकमात्र सहयोगी उसी मजदूर के साथ वे निकल पड़ते हैं गली-मौहल्लों में नलकियों की बिक्री के लिये। आठ दस मील का चक्कर लगाकर लौटते लौटते उन्हें नौ बज जाते हैं। अधमरा शरीर लिये, लड़खड़ाते हुए वे लौटते हैं तो दिन भर का हिसाब किताब उनकी बाट जोह रहा होता है। साढे दस-ग्यारह बजे घर लौटते समय थकावट से चूर बदन और बोझ से दबा हुआ मस्तिष्क रह जाता है उनके पास घसीटने के लिये।

मजदूरी के आठ रुपये चुकाने के बाद उनके पास लगभग तीस रुपये बच जाते हैं। छः रुपये प्रतिदिन के अन्य खर्च काटकर बारह उनके और बारह सेठ के। बारह रुपये के बदले उन्होंने दिया सुबह सात बजे से रात ग्यारह बजे तक पसीना और सेठ ने दिया रुपया जिससे कारखाना लगा और मामा जी को पसीना फरोख्त कर सकने का अवसर मिला।

यह बारह रुपये की कमाई जो आज उन्हें हो रही है, उनकी एक वर्ष की अनवरत धैर्यशीलता और मेहनत का उत्पादन है। मामा जी आशान्वित हैं और कुछ अंशों मे आश्वस्त भी कि रुपयों की संख्या बारह से आगे बढ़ेगी।

उस दिन भी छुट्टी का दिन था। दूसरे पहर की गुनगुनी धूप पंख खोलकर जमीन पर उतर आई थी। लेकिन अकेलापन धूप के सुख को हजम होने नहीं दे रहा था। फिर भी एक घन्टे तक वह धूप मे लेटा रहा। इसके बाद जब ऊब बेहद बढ़ गई तो अनमना सा वह उठा। पांवो मे चप्पल डालकर कुर्ते पाजामे में ही घर से बाहर निकल आया। कदम अनायास ही मामा जी के कारखाने की ओर बढ़ गये। उनसे मिले दो सप्ताह हो रहे थे। हो सकता है वे बुरा मान गये हों। इतना करीब रहकर भी पन्द्रह दिन मुलाकात तक न करना जायज नहीं है, यह जानते हुए भी वह इस अवधि में उनकी ओर नहीं गया था।

वैसे पन्द्रह दिन तक मामा जी से न मिलने का कोई विशेष कारण

नहीं था। सिवा इसके कि रुपये में से पचास पैसे पाने के लिये अपने आपको सम्पूर्णतः झोंकते हुए मामा जी की दशा देखकर उसे तकलीफ होती थी। सेठ ने दस बारह हजार रुपये लगाकर मामा जी पर अहसान किया। अपने नाम और स्वामित्व के अन्तर्गत एक सम्भावनाओं से भरा काम चालू किया। बारह रुपये रोजाना के हिसाब से साढ़े तीन चार सौ रुपये महीना लाभ लिया और मामा जी ने अपने आपको लगा दिया बारह रुपये प्रतिदिन के लिये।

सेठ ने अगर इतना रुपया ब्याज पर दिया होता तो भी उसे मुश्किल से डेढ़ सौ रुपया प्रतिमाह मिल पाता। यहां सब कुछ सुरक्षित है, अपने हाथ में है, लाभ बढ़ने की संभावनायें हैं और सिरदर्द पैसा भर भी नहीं है।

कारखाने जाने पर मामा जी ठीक तरह से बातचीत चाहे न कर पाते हों, या कहा जाय, ठीक तरह से बातचीत कर पाने जितना समय चाहे न निकाल पाते हों मगर भांजे की भरहय में कोई कमी नहीं छोड़ते। चाय पीते हुए उसके दिमाग में बस शोषण घूम रहा होता है। मामा जी की मेहनत का शोषण। क्योंकि मामा जी इस कमाई को भी अपनी उपलब्धि मानते थे इसलिये वह अपनी अनुभूति को शब्द नहीं देता था। यों देखा जाय, तो वे गलत भी नहीं थे। पानी ट भले ही दो हों, मुद्दत से सुश्क गले को बहरहाल तर तो करते ही हैं।

वह कारखाने पहुँचा तो मामा जी दोपहर का भोजन कर रहे थे। भोजन क्या कर रहे थे, रोटी को मुँह में ठूंस रहे थे। कौर कम से कम से समय में पेट के हवाले हो जाता था। आंखें बाहर सूख रही नलकियों पर थीं और मुँह में डाला ग्रास निगलते-निगलते वे मजदूर को बोरियां इकट्ठी करने का निर्देश दे रहे थे। हाथ, पैर, कपड़े, मुँह, बाल सब कुछ काला और गर्द से भरा हुआ था। मगर उन्हें किसी बात की परवाह नहीं थी। हाथ जैसे थे वैसे ही उनके मुँह में कौर पहुंचा रहे थे। खाने के साथ, वातावरण में व्याप्त कोयले की चूरी के कण भी उनके पेट में पहुंच रहे थे। उसने मामा जी को पहले भी देखा था परन्तु उनके स्वभाव और व्यवहार में रम गये खुरदरेपन की यह विचित्र अवस्था देखकर उसे बेहद आश्चर्य हुआ।

उसे देखकर मामा जी ने तपाक से स्वागत किया, "आ, वीरे आ। तू तो हमें बिल्कुल भुला ही बैठा है।"

"नहीं मामा जी, बस यों ही कुछ समय नहीं मिल रहा था इसलिये आ नहीं पाया। लेकिन आपने भी तो इनायत करने की तकलीफ नहीं की।"

"हम तो वीरे, इस गोरखधन्धे में ऐसे फंस गये हैं कि सारा दिन दो रुपये को सवा दो तक पहुंचाने की फिक्र में गुजर जाता है।"

मजदूर को उन्होंने चाय लाने भेज दिया। भोजन समाप्त करके मजदूर द्वारा एकत्र की हुई बोरियों में तैयार, सूखी हुई नलकियां भरते हुए उन्होंने कहा 'साढ़े तीन बज रहे हैं। अभी इन बोरियों को तोलना है। फिर बिक्री के लिये निकलना है। वक्त ऐसा सरपट भागता है कि भागते दौड़ते भी काम पूरा नही हो पाता।"

बात समाप्त करते-करते उनकी रफ्तार और तेज हो गई। नलकियाँ बोरी में भरने के कारण उठने वाली धूल का फेफड़ों पर बढ़ता दबाव न सह पाकर वह खांसने लगा। कैसे तेरह चौदह घन्टे गुजारते होंगे मामा जी यहाँ, वह सोचने लगा।

"वीरे, दो-तीन लोगों से बात चल रही है। एक बोरी पर पचास पैसे कमीशन लेकर शहर में माल निकाला करेंगे। अगर मामला तय हो गया तो साल भर में लखपति नही हो तो हजारपति जरूर हो जायेंगे।"

"फिर तो मामा जी आप अपना काम अलग से शुरू कर दीजियेगा। सारी मेहनत आप करते हैं। भाग-दौड़, चिन्ता फिक्र आप करते हैं। आधा पैसा किसी और के पास चला जाता है। सिर्फ इसलिये ही न, क्योंकि उसके पास पैसा है, आपके पास नहीं है।"

"नही वीरे, रिजक देने वाले से कभी धोखा नही करना चाहिये। तू समझता है मैं अब बेईमानी करना चाहूँ तो नही कर सकता? पर नहीं। बराबर की, इज्जत के साथ साझेदारी है। धंधे में बुरी भावना लाकर मैं उसका कुछ नही बिगाड़ूंगा। अपना ही बुरा करूंगा।,"

"आपका क्या बुरा हो सकता है? वह जो आपके साथ खुले आम चालाकी करी रहा है, बुरा तो उसका होना चाहिये।"

"धंधा करने से पहले सारी शर्तें उसने मेरे सामने रखी थी और मैंने मानी थी। उसने तो वीरे, विश्वास करके बहुत बड़ा अहसान किया है मेरे ऊपर। जरा सोचकर देख, उसने क्यों अपनी पूंजी लगाकर मेरे भरोसे छोड़दी?"

"पूंजी आपके भरोसे कहाँ छोडी है मामा जी? मशीने है, । आप उखाड़कर ले जाने से रहे। कोयले की चूरी है। आप चुराने से रहे। आपका हिसाब किताब वह नियमित रूप से देखता है। कारखाना, मशीनें, धंधा, लाइसेंस, सब कुछ उसके नाम से है। आप तो बेईमानी कर ही नही सकते। आप कभी ऐसी गुस्ताखी करेंगे तो वह आपको निकाल बाहर कर देगा। आप क्या बिगाड़ लेंगे उसका?"

"मैं बेईमानी करूंगा तभी तो यह नौबत आएगी न वीरे! ले, चाय पी।" मामा जी कृत्रिम हँसी हँसे और इस तरह अध्याय बन्द करने का संकेत देकर काम में मशगूल होने की कोशिश करने लगे। मैं चाय सिप करते हुए उनके दर्शन में से मीन-मेख निकालकर कुढ़ता रहा।

एक सप्ताह व्यतीत हो गया। रविवार, छुट्टी का दिन। वही ऊब का नागवार गुजरता सिलसिला। वह सामने शतरंज बिछाकर अपने आप से खेलते हुए दोपहर काटने की कोशिश कर रहा था कि मामा जी आ गये। वह चौंका। मामा जी यहाँ और इस समय? कई आशंकाएं उसके स्नायुओं में से गुजर गईं। मूक आशंकायें, कि जिनके पास पांव रखने को जमीन तक नही थी रेत गरम बबूलों की तरह गोलाकार घूमती ऊपर उठने लगी।

"आइये मामा जी, बैठिये।" अपने आपको रोकते-रोकते भी वह बोल गया। "आज, इस समय कैसे फुर्सत मिल गई?"

वे मायूसी सी उदास हँसी हँसकर चुपके से चारपाई पर बैठ गये।

"घर पर सब लोग ठीक है?" कुछ पूछने के लिये उसने पूछा।

"हाँ, सब ठीक ही हैं।" उन्होंने तटस्थता और निरासक्ति से कहा।

"आपकी तबीयत तो ठीक है न? शरीर बड़ा सुस्त लग रहा है।"

"मेरी तबीयत?" उनकी आँखों में जाला उतर आया, "बीरे, अब तक तो ठीक है मगर आगे ठीक नहीं रहेगी।"

"ऐसी निराशाजनक बातें क्यों करते हैं?"

वे कुछ नहीं बोले। बार-बार थूक निगलती उनकी गले की उभरी हड्डी कौंधने लगी। भंगिमा पर गीलापन छा गया। आँखो मे उतर आया जाला धुंध मे परिणत हो गया। उनकी यह अवस्था उससे देखी नही गई। क्या हुआ है, इसका अनुमान वह लगा नही पा रहा था। मामा जी चुप बने हुए थे। कुछ पूछ पाने का साहस भी वह अपने आप मे पैदा नही कर पा रहा था। लगता था उसके किसी भी संजीदा से सवाल के जवाब मे वे छनक जायेंगे।

वह अपनी जगह से उठकर चारपाई पर उनके पास आ बैठा, "साफ-साफ बताइये मामाजी, क्या बात हुई है?"

उन्होंने सीधा मेरी ओर देखा। फिर ठंडी आह भरकर सिर झुकाते हुए कहा "सेठ ने कारोबार से मुझे अलग कर दिया है।" सहसा वह क्रोधित हो उठा, "क्यों?"

"क्योंकि कमीशन पर माल बेचने वाले दो-तीन लोग तय हो गये थे और नक्काशियां बनाने का काम कोई भी मिस्त्री तीन सौ रुपया महीना लेकर कर सकता है।"

"इसलिये उसने आपको अलग कर दिया और आपने साल भर मेहनत करके इस धंधे को चालू किया, जमाया, माख बनाई, वह ?"

मामाजी कुछ क्षण मौन रहे। वह आँखों में आग भरकर उनकी तरफ देखता रहा। फिर उन्होंने स्वयं ही मौन तोड़ा 'तू छोटा जरूर है वीरे! मगर बड़ा समझदार है। याद है, पिछले हफ्ते तेरी मेरी क्या बात हुई थी ? आज सोच रहा हूं, मैं बेईमान क्यों नहीं हुआ।"

उसने अपनत्व से भरा हाथ मामाजी के कंधे पर रखा। मामाजी ने डबडबायी आँखें उसकी ओर घुमाई। वहां बाढ़ के बाद की गंदगी नहीं थी। उनके मूल दर्शन के अनुरूप एक स्वच्छता थी। मन ही मन उस स्वच्छता से प्रभावित होते हुए उसने सोचा, "मामा, तुम बेईमान होकर भी उस तरह के लोगों का कुछ बिगाड नहीं सकते। वे इतने चालाक हैं कि पक्षी उड़ना सीखे इससे पहले ही उसके पर काट देते हैं। एक साल तो काम जमाने में ही लग जाता है। बेईमानी की संभावनायें इसके बाद पैदा होती हैं। अच्छा हुआ तुमने बेईमानी नहीं की वरना बेईमान कहलाकर भी कर कुछ नहीं पाते। इस साजिश का शिकार हर हाल और हर सूरत में तुम्हें होना ही था। सो तुम हो गये। एक खानदानी शोषक एक पुश्तैनी शोषित के साथ ऐसा ही सलूक करता है। तुम उससे कैसे बच सकते थे ? यह रवैया नहीं नियम है मामा, नियम। आसमान के किनारे धरती पर झुककर अगर एक ताबूत का निर्माण करदें तो मामा, उस ताबूत के एक मात्र खुले दरवाजे की नीलामी ऐसे ही लोगों के नाम उठती है। हम जैसे लोगों के हिस्से तो उस दरवाजे को टुकर-टुकर ताकने भर का काम आता है, बस।"

उसका हाथ मामा के कंधे पर पुख्ता हो गया। इसके अलावा वह और कर भी क्या सकता था उनके लिये ?



डूबने के बाद

चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। ड़क के समानान्तर लगभग सौ कदम दूर बहती हुई नदी के पानी की मद्धम-द्धम आवाज कानों तक पहुँच रही थी। प्रकाश की किरणों की भांति ही दूर-दूर क किसी आदमी का नाम निशान न था।

"बताओ न।" एक लचकती आवाज।

"मैंने कहा न बाबा, सब झूठ है। क्यों मेरे पीछे पड़ी हो?" बनावटी खीम रा स्वर।

"मैं किसी से नहीं कहूंगी, सच्ची। अब बता भी दो।" मचलती, पुचकारती आवाज।

"तो क्या मैं झूंठमूट ही कोई किस्सा गढ़ दूं?" टालने का प्रयत्न करता स्वर।

"हां, गढ़ दो किस्सा। किस्सा ही सुनाओ।" आवाज में आग्रह और जिद् का सम्मिश्रण।

"अच्छा चलो पूछो, क्या पूछती हो?" आत्म-समर्पण का लहजा।

अब हुई न कोई बात। सबसे पहले तो यह बताओ कि उसका नाम क्या है?" आवाज में प्रसन्नता की चमक।

"कुमुद।" सपाट सा उत्तर।

"सरनेम?" सपाट उत्तर पर पर्तें जमाती आवाज।

"पाराशर।" फिर सपाट सा उत्तर।

"हूँ, तो कुमुद पाराशर है उसका नाम। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम्हारी और उसकी दोस्ती कैसे हुई? मेरा मतलब है, तुम दोनों की जान पहचान कैसे हुई?

"ठहरो, मैं तुम्हें सब कुछ बता दूंगा। मगर पहले तुम्हें मुझ से यह वायदा करना होगा कि तुम ये बातें किसी से नहीं कहोगी।"

"वायदा किया, किसी से नहीं कहूंगी।" विश्वास दिलाती आवाज।

"तो सुनो। मेरे एक दोस्त के पड़ोस में वह रहती है। अभी दसवीं में पढ़ती है। अपने दोस्त के घर आते-जाते ही मेरी उससे जान-पहचान और बातचीत हुई। वहीं मैंने उसे पहली बार एक पत्र दिया था। उस दोस्त के घर ही अब हम लोग मिलते हैं। कुमुद के घर वाले बहुत कठोर हैं। इसलिये दो चार बार ही बाहर जाने का मौका मिला है। एक पिक्चर अब तक साथ देखी है। मुझे अपनी तरफ से जो कुछ बताना था, मैं बता चुका। अब तुम्हें कुछ पूछना हो तो पूछलो। आज मौका है, फिर नहीं बताऊंगा, हां।" परिहास युक्त स्वर।

"परसों जो पत्र आया था, वह किसका था ?" एक जिज्ञासापूर्ण आवाज।

"उसीका था।"

"मैंने पहले ही कहा था न, कि तुम झूठ बोल रहे हो। तुम्हारा चेहरा खुद ही बोल रहा था कि हकीकत क्या है।" आवाज में चिड़ियाओं की चहक।

दस कदम आगे बिजली के खंभे पर टिका चालीस वाट का बल्ब तिमिर से संघर्षरत। वहीं से बांई ओर को सड़क मुड़ती थी। एक फर्लांग चलकर इस सड़क को बाजार की सड़क से मिल जाना था। वह सड़क भी हमें वापस घर की ओर ले सकती थी।

"बाजार की तरफ से होकर चलें ?" मैंने पूछा।

"ना बाबा ना, कोई देख ले तो ? यहां से वापस मुड़ जाते हैं।" उसने घबड़ाहट का प्रदर्शन करते हुए कहा।

हम दोनों वापस मुड़े। सड़क दूर-दूर तक अन्धकार में डूबी हुई थी। नदी की ओर से आते कल-कल की ध्वनी और सुहावनी, ठंडी हवा उसी तरह प्रवाहित हो रही थी।

"बस, और तो कुछ नहीं पूछना है न ?" मैंने यों ही पूछ लिया।

"हां एक बात और पूछनी है।" उसने शरारत से कहा।

"पूछो, यह भी पूछो," मैंने उत्तर दिया।

"मेरे बारे मे क्या ख्याल है तुम्हारा ?"

कालिमा के आधारदर्शी आवरण को मंद या सयत होते हुए भी मेरी कल्पना की आंखो ने उसके होठों पर जाल बुनती एक मुस्कराहट कोधते देखी। मैंने भी एक छलपूर्ण मुस्कराहट को निमन्त्रण देते हुए अपनी बात को उछाला, "तुम्हारे बारे

में भी भला किसी का कोई ख्याल हो सकता है ? तुम ख्याल बनने ही कब देती हो कभी अपने बारे में ? फिर भी इतना तो कह ही सकता हूँ कि तुम भी किसी से कम नहीं हो ।"

"क्या मतलब ?"

"तो मतलब भी समझाना पड़ेगा ही ।"

"हाँ, समझाना तो पड़ेगा ही ।"

"वाह, बात बनाना तो कोई तुमसे सीखे । सब कुछ खोद खोदकर पूछ लिया और जब अपनी बारी आई तो कहते हैं, हाँ, समझाना तो पड़ेगा ही । "अब तुम भी सीधी तरह अपनी दोस्ती की बात बतादो ।"

"बड़े बेशरम हो । ऐसी बातें लड़कियों से पूछी जाती हैं कहीं ?"

"चलो, हम बेशरम ही सही । मगर यह तो बताओ कि उस समय कहां गई थी वह बेशरमी जब तुम मुझ से ऐसी बातें पूछ रही थी ? क्यों कहलाती हो इतना ? अब बता भी दो ।"

"सच सच बताऊं ?

"हां, बताओ ।"

"बिल्कुल सच सच बताऊं ?"

हां, बिल्कुल सच-सच बताओ ।"

"तो मेरा कोई दोस्त नही है ।"

"असंभव । हो ही नहीं सकता ऐसा । तुम झूठ बोल रही हो । मगर इतना जान लेना कि घर तब तक न खुद जाऊंगा और न तुम्हें ही जाने दूंगा जब तक तुम बताओगी नही ।

"बताया न ? अब तुम विश्वास न करो तो मेरे पास क्या इलाज है उसका ?"

"विश्वास करूं कैसे ? बम्बई जैसा महानगर, तुम जैसी लड़की, फिर इस क्षेत्र मे इतनी रुचि । मैं ही क्या कोई भी तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं करेगा ।"

"जब कोई बात है ही नहीं तो क्या कोई झूठमूट का किस्सा गढ़ दूं ?"

"हां गढ़ दो किस्सा, किस्सा ही सुनाओ।"

"अच्छा चलो पूछो, क्या पूछते हो ?"

"तुम ही सारी बातें सुनादो।"

"लड़के का नाम विनोद है। हमारे घर के पड़ोस में उसका ननिहाल है। बैंक मे नौकरी करता है। साढ़े पांच फुट लम्बा, कद्दावर जवान है। ठीक तुम्हारी तरह हैण्डसम।"

कुछ ही दूरी पर दाहिनी ओर मुड़ती गली मे आगे जाकर घर था। फिजां रोमांटिक हो उठी थी। अंधेरा अधिक घना हो गया था। कोई भटका पक्षी शायद घर ढूंढने के प्रयत्न में बेचैन उड़ाने भर रहा था। वह कोलतार पुती सडक से उतरकर सड़क और गली के इस ओर छोर को मिलाते वाले कणों पर चलने को उद्यत हुई कि मैंने उसे रोक दिया।

"पहले अपनी बातचीत पूरी करो।"

"सब बता तो दिया और भी कुछ बाकी रहा क्या ?"

"हां, बाकी कैसे नही रहा ?"

"पूछो बाबा पूछो, तुम इस तरह पिंड थोड़े ही छोड़ोगे।"

"अच्छा छोड़ो केवल एक बात बताओ। मुझे विनोद से कब मिलाओगी। देखूं तो सही कैसी है तुम्हारी पसन्द ?"

"अरे उसको क्या देखना है। तुम से ज्यादा खूबसूरत थोड़े ही है। सन-सन हँसी की आवाज चूडियों की सप्रयास छोडी हुई झंकार की तरह गूंज गई। उस झंकार के साथ ही मेरे प्रश्न का उत्तर भी मिल गया। मैंने भी उसकी हँसी का साथ दिया। फिर हम लोग गली में मुड़ गये।

इस घटना के तीन दिन पूर्व सध्या को पेशवा पार्क मे घूमते हुए मैंने अपने नाम की पुकार सुनी थी। स्वर किसी लडकी का था। मेरी परिचित कोई लडकी वहां कौन हो सकती है ? आवाज किसी ओर के लिये होगी, ऐसा कुछ सोचकर मैंने सिर को यो हिलाया था जैसे नाक पर बैठी किसी मक्खी को उड़ा रहा होऊं। किन्तु आवाज फिर उभरी और विवश होकर मैंने उस दिशा में दृष्टिपात किया था। मुझे घोर आश्चर्य हुआ था यह देखकर कि बेल-बांटम पहिने हुए, बैंच पर बैठी हुई एक सर्वथा अपरिचित लड़की मुझे बुला रही है। उत्कठित सा मैं उधर गया था।

निकट जाकर मैंने पूछा था, "आपने मुझे बुलाया ?"

"जी हां, मैंने आपही को बुलाया था। कुमार आप ही का नाम है न ?"

"जी, नाम तो यही है मेरा। मगर.........."

और वह जोर से हँस पड़ी थी, "मगर आपने मुझे पहचाना नहीं, क्यों यही कहना चाहते थे न आप ?"

मैं उसे ध्यान से देखकर याद करने की कोशिश करता रहा कि मैंने उसे कहा देखा है। मगर स्मृति थी कि साथ ही नहीं दे रही थी।

"चलिये, मैं ही आपको याद दिलाये देती हूँ। आप सुमन के देवर के विवाह में सम्मिलित होने के लिये बम्बई से यहां आये हैं और मैं भी आप ही के शहर से इसी विवाह में सम्मिलित होने आई हूं। सुमन आपकी बहन है तो उसका देवर रिश्ते में मेरा भाई है। अब तो याद आया आपको ?"

यद्यपि मुझे कुछ भी याद नहीं आया था, फिर भी प्रत्यय में मैंने मुस्कराहट ओढ़ते हुए कहा था, "अरे हां, अब याद आया। आप तो बहुत बदल गई हैं पिछले कुछ वर्षों में।"

घर लौटकर मैंने उस दिन सबसे पहला काम सुमन से उस लड़की का नाम और तत्सम्बन्धित कुछ अन्य बातें पूछने का किया था। मुझे डर लगने लगा था कि वह शैतान की वाला मुझे फिर पकड़कर कुछ पूछताछ न करने लगे।

पेशवा पार्क में मीना से हुई मुलाकात के दूसरे दिन ही बम्बई से मेरे नाम मेरे एक मित्र का पत्र आया। वह पत्र संयोग से मीना के हाथ पड़ गया।

पहले तो उसने वह पत्र पढ़ा और फिर मेरे पास आ धमकी।

"तुम तो बड़े छिपे रुस्तम हो।"

"क्यों, क्या हो गया ?"

"पूछ तो ऐसे रहे हो जैसे कुछ पता ही न हो।"

"जब तक बताओगी नहीं, पता कैसे लगेगा ?"

उसने हाथ ऊंचा करके पत्र दिखाया और लगी प्रश्नों की बौछार करने। उसको विश्वास सा था कि वह पत्र मेरी किसी प्रेमिका ने मुझे छद्म नाम से लिखा है। आसपास उपस्थित अन्य लोगों की दुहाई देकर मैंने उस समय तो किसी तरह

उसे टाल दिया किन्तु वह अकेले में मुझे थामने की ताक में लगी रही और ऐसा अवसर उस समय सन्ध्या को उसने ढूंढ ही लिया।

विवाह के दो दिन बाद जब मैं बम्बई लौटने वाला था, वह भी मुझे छोड़ने के लिये स्टेशन पर आई। मैंने यों ही औपचारिकतावश उससे पूछ लिया, "आप वापस कब आ रही हैं?"

मेरे प्रश्न का उत्तर देने के स्थान पर उसने ही मुझ से पूछ लिया, "क्यों बम्बई में मुझ से मिलने का इरादा है क्या?" वह शरारत से हँसने लगी थी।

मैंने भी मूल प्रश्न को छोड़कर शरारती लहजे में ही कहा था, "आपकी इजाजत की देर है। बन्दा हर दर पर धूनी न रमाले तो कहियेगा।"

सारे ही प्रश्नोत्तर कहकहों में दफन हो गये थे और गाड़ी आ गई थी।

शनिवार का दिन था। विवाह से लौटे मुझे अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि दफ्तर में टेलीफोन आया, "कहिये कुमार साहब, क्या हालचाल हैं?"

"हाल-चाल तो ठीक हैं, मगर बताने का कष्ट करेंगी कि मैं किन से मुखातिब हूं।"

"बड़े भुलक्कड़ हैं आप कुमार साहब। एक सप्ताह में ही यदि आप बातें भूलने लगे तो हम जैसे कहां रहेंगे जाकर?"

मैं समझ गया, वह मीना है। कुछ संभलकर बनते हुए मैंने कहा, "यदि सबको अपनी, 'जीनियस' के राज हम इतनी जल्दी बताने लगे मीनाजी तो सच मानिये हमें कोई पूछे ही नहीं। खैर छोड़िये, यह बताइये कि आप कब आईं?"

इस आने जाने में क्या रखा है कुमार साहब, कुछ मिलने-जुलने की बात करिये। कल रविवार है। बोलिये क्या कार्यक्रम है कल का?"

और दूसरे दिन चार बजे गेट वे ऑफ इन्डिया पर हम लोग मिले। सान्ध्य-कालीन समुद्र की हांफती, फनिल लहरें। दूर खड़े जहाज और तैरती नौकाएं खिलौनों सी खूबसूरत लग रही थी। चने की पुड़िया मेरे हाथ में थी। वह धीरे-धीरे चने खाते हुए लगातार कुछ न कुछ बोल रही थी। हम ठीक समुद्र के किनारे बनी दीवार पर बैठे थे। अचानक उसने पुलक कर मेरी पीठ पर धोल जमाई।

"उधर देखो।"

मैंने चौंक कर उस दिशा में देखा जिधर वह अपनी अगुली से संकेत कर रही थी। एक हिप्पी लड़का और लड़की गेटवे ऑफ इन्डिया की स्तम्भनुमा दीवार से

सटकर खड़े नारियल पी रहे थे। नारियल में उन्होंने दो 'स्ट्रा' डाल रखे थे और साथ-2 ही सिप कर रहे थे।

मैंने मुस्कराकर उसकी ओर देखा।

"कुमुद के साथ कभी इस तरह पीया है नारियल ?"

"नही।"

"क्यों, शर्म आती है क्या ?"

"नहीं, शर्म की क्या बात है ?"

"तो फिर क्यों नही पीया ?"

"मौका ही नहीं मिला है कभी।"

"मौका तलाश करना। बड़ा मजा आता है। आओ, आज तुम्हारी रिहर्सल करा देती हूं।"

हाथ पकड़कर मुझे वह अपने साथ नारियल वाले के पास ले गई। दो नारियल खुलवाकर उसने एक नारियल में 'स्ट्रा' डाले। फिर नारियल मेरी ओर बढ़ाकर बोली "आओ, बोटिंग करते हैं। वहीं पीयेंगे।"

बोट की ओर जाते-जाते उसने चनों की एक और पुड़िया खरीदली। पुड़िया खोलकर हाथ मेरी ओर बढ़ाती हुई बोली, "लो खाओ।"

चने खाते हुए हम दोनों बोट में जा बैठे। बोट के सामने वाले कोने के साथ लगी बैंच पर बैठकर उसने चने की पुड़िया एक तरफ रखकर मुझे पास खींच लिया।

हिचकोले खाती नाव किनारा छोडकर आगे बढ़ी। थोड़े से बचे हुए चने कागज सहित समुद्र में उछालकर उसने नारियल मुंह की ओर बढ़ाते हुए कहा, "करो"

बोट में प्रायः बीस लोग थे। मुझे कुछ झिझक सी हुई। उसी झिझक भरे अन्दाज में मैंने पहले शेष लोगों को और फिर उसे देखा।

"क्यों बम्बई के नाम पर कालिख पोतने पर तुले हो ? आजाओ।"

मैंने एक 'स्ट्रा' को होठों में पकड़ लिया। उसने एक विजयी मुस्कान मेरी ओर फेंकी और मेरे नाक से नाक मिलाकर नारियल पीने लगी।

नारियल खाली कर के उसे समुद्र की तरफ फैंकती हुई वह बोली, "मजा आया ?"

यद्यपि बोट में बैठे अन्य लोगों का ध्यान हमारी ओर नहीं था फिर भी इतने लोगों के बीच बैठकर यह सब कुछ करने में मुझे संकोच हो रहा था। एक नारियल मेरे हाथ में अभी शेष था।

"मजा तो आया पर खास नहीं।"

"एक बार और पीते हैं। फिर पूरा मजा आ जायेगा।"

"नहीं, अब प्यास नहीं है।"

"इतनी जल्दी प्यास बुझ गई ?"

स्वर में शरारत भरकर उसने मेरी आँखों से अपनी आँखें मिलाईं, "छोड़ो भी, क्यों बहाने बनाते हो ? पिलाओ ना।" हाथ बढ़ाकर उसने मेरा नारियल वाला हाथ पकड़ा।

"अच्छा, अभी रुको। लौटती बार पीयेंगे।"

उसने कंधे उचकाते हुए कहा, "ठीक है, जैसा तुम चाहोगे करना ही पड़ेगा। खैर, तुम तब तक 'स्टोर' कर लो।" उसने अपना हाथ वापस खींचा।

मैंने सामने देखा। दूर से खिलौने सा प्रतीत होता जहाज अपने सम्पूर्ण आकार के साथ सामने था। उद्दामता के अभाव में लहरें समुद्र की कम किसी नदी की अधिक प्रतीत होती थीं। हवा के झकोरे मेरे बालों को बिखरा गये थे। मीना ने अपना दाहिना हाथ लहरों में छोड़ दिया था और बायां हाथ मेरे घुटने पर रखा था। मैंने उसकी तरफ देखा। वह बहुत खुश थी। हवा ने उसकी लटें उसके गालों पर छितरा दी थीं। मुझे वह किसी फिल्म की खूबसूरत नायिका सी लगी।

नाव वापस मुड़ गई थी। मैंने उसकी पीठ पर झुकते हुए कहा, "आओ, प्यास लग आई है।"

वह सीधी हुई। मेरी ठुड्डी से अंगुली छुआती हुई बोली, "रियेली ए स्मार्ट ब्वॉय। बड़ी जल्दी रीकवर "कर लेते हो।"

मैंने कोर्निश के अन्दाज में झुककर कहा, "थैंक्यू।" फिर हम दोनों ही जोर-जोर से हँसने लगे।

हमारी इस उन्मुक्त हुई हँसी ने नौका में बैठे सभी लोगों का ध्यान हमारी तरफ खींच लिया। अचेतन मस्तिष्क से कुछ पलों के लिये लुप्त हुई तृतीय पुरुष की परछाईं दुबारा फिर आई। मेरी हँसी के साथ जुड़ा उल्लास खो गया। वह भाप गई। लोगों की नजरों की परवाह न करते हुए उसने मुझे शोख नजरों से देखा।

"क्यों, अचानक क्या हो गया ?"

"कुछ नही ।"

"तुम तो सच, किसी नई-नवेली दुल्हन की तरह छोटी-छोटी बातों से भी सकुचा जाते हो ।"

अपनी झेंप मिटाने के लिये नारियल उसकी तरफ बढाते हुए मैंने कहा, "इतनी बातें बनाना विनोद से सीखी हो क्या ?"

"विनोद में और तुममे कोई अन्तर होगा, तभी तो वह मुझे कुछ सिखायेगा " वह खिलखिलाकर हँसने लगी थी। साथ ही उसने नारियल से मुंह लगा लिया था। 'स्ट्रा' वह पहले ही फेंक चुकी थी।

"नारियल भरा हुआ है। मुंह लगाओ।"

हमारे मस्तक और नाक टकराये। कुल मिलाकर एक-एक घूंट लेने के बाद ही नारियल में पानी की सतह नीचे गिर गई।

"नारियल का यह घूंट जरूर तुम्हें आबेहयात लगा होगा। क्यों ?"

मुझे सूझा नहीं कि उसकी इस बात का क्या जवाब दूं। कुछ हँसकर मैंने नारियल को होंठों से लगा लिया। दो तीन घूंट ही लिये होंगे कि मीना ने नारियल पकड़ लिया, "हूं, सिर्फ अपनी नहीं दूसरों की प्यास का भी ध्यान रखना चाहिये।"
मैंने चुपचाप नारियल उसके सुपुर्द कर दिया। दो घूंट पीकर उसने नारियल फिर मेरे मुंह की ओर बढ़ाया, मैं तुम्हारे साथ कभी बेइन्साफी नहीं करूंगी।

इस बार उसने सारा पानी मुझे पिलाया। नारियल को वह अपने हाथों में ही पकड़े रही। मुझे नारियल उसने छूने नहीं दिया। मैंने कोशिश भी की तो उसने कहा, "भई सारा पानी तुम्हें मिल रहा है। इतना सा हक भी मेरा नही बनता है क्या ?"

नाव किनारे लगने वाली थी। हमारी नाव के सारे लोग उतरने की तैयारी में थे। किनारे पर नाव मे सवार होने के इच्छुक कुछ लोग खड़े थे। मल्लाह द्वारा रस्सा बांध देने के बाद सब लोग नीचे उतरने लगे। मैं उठने लगा तो वह मुझे रोककर बोली, सुख के क्षणों को जितना लम्बा किया जा सके, करना चाहिये।

सबके उतर जाने के बाद हम खड़े हुए। पहले मै उतरा और फिर मेरे हाथ का सहारा लेकर वह उतरी। हम सीढियां चढ़कर ऊपर आये। हर ओर शाम की रंगीनी तैरने लगी थी। ताज को बाहो ने घेरा हुआ था। जोड़ें रंगीन परिधानो मे लिपटे फिजा को पी रहे थे।

"मेरे साथ बोर तो नहीं होना पड़ा न ?"

"ग्राप बोरियत की बात कह रही है। मैं सोच रहा हूं मीनाजी, कि ग्राप
हुस्न को भूलना मेरे लिये सम्भव हो सकता है क्या ?"

"चिन्ता क्यों करते हो ? ग्राइ एम ग्रालवेज एट योग्रर सर्विस। वैसे
बुरा न मानो तो ग्रभी मुझे जाना है।"

"इतनी जल्दी ?"

"कुछ काम है। फिर मिलेंगे।"

मैं उसको बस-स्टेण्ड तक छोड़कर फिर ग्रपने बस स्टाप की ग्रोर गय
हृदय प्रफुल्ल ग्रौर शरीर ताजा महसूस कर रहा था। हम भी कुछ हैं, की ग्रनुभू
ने मेरा सिर गर्व से कुछ ऊंचा उठा दिया था। बस, बस में बैठे लोग, कन्डक्ट
सड़क, सब कुछ मुझे बहुत-बहुत सुन्दर लग रहा था। मुझे लग रहा था, मैंने
माकूल हमसफर पा लिया है। जिन्दगी में ग्रब बहारें ही बहारें हैं। मैं खुश था
बेहद खुश था।

तीसरे दिन बुधवार को पौने पांच बजे दफ्तर में हर ग्रोर घर जाने
व्यग्र चेहरे ईमानदारी से काम करने का ग्रभिनय कर रहे थे। मैं भी ग्रपनी मेज
कागज समेटने, सहेजने में लगा था कि टेलीफोन की घन्टी बजी।

"ग्राप से कोई मिस मीना मिलना चाहती हैं ?" रिसेप्शनिष्ट
ग्रावाज थी।

"मैं वही ग्रा रहा हूं। उन्हे बैठा दें, प्लीज।"

मैंने शीघ्रता से ग्रपनी मेज व्यवस्थित की। दराज को ताला लगाया ग्रौ
सीट से उठ गया। रिसेप्शन पर पहुंचा तो देखा मीना सोफा चेयर में धंसी बेफि
से टांगें हिला रही है। मुझे देखते ही वह तड़क कर उठ खड़ी हुई।

"खैरियत है, तुम मिले तो सही। मैं तो डर रही थी कि दफ्तर
दीवारों का सिलसिला कभी खत्म होगा भी या नहीं।"

"क्यों, कोई दिक्कत हुई क्या ?"

"ग्रजी, ग्रापसे मिलने के लिये हम हर इम्तहान पास करने को तैयार हैं
इन मामूली दिक्कतों का तो जिक्र ही क्या करना है।"

मैं हँसा "सुनाग्रो, ग्रचानक कैसे ग्राना हुग्रा ?"

"क्यों, नहीं ग्राना चाहिये था क्या ?"

"आपकी आमद हमारी सर आँखों पर हुजूर।"

वह अपने मूल ढंग से खिलखिलाकर हँस दी। मैंने भी उसका साथ देने की कोशिश की।

"पहली बार दफ्तर को पवित्र किया है। बोलो, इस उपलक्ष्य में क्या चलेगा?"

"तुम जो कहोगे चला लेंगे। मगर यहाँ नहीं।" उसने कंटीली मुस्कराहट चुभोई।

"तो कहाँ?"

"सारी दुनियां का इतिहास यहाँ खड़े-खड़े ही पूछोगे क्या? चलो, यहाँ से तो निकलो।"

हम दोनों सीढ़ियाँ उतर कर पोर्च में होते हुए बाहर सड़क पर आ गये। मैंने रुक कर अंगुली से संकेत करते हुए उससे पूछा, "इधर या उधर?"

"डोन्ट बी सिली।" एक प्यारी अदा से डांटते हुए वह बाईं तरफ मुड़ गई। मैं चुपचाप उसके साथ हो गयी। सड़क पर से जाती हुई एक खाली टैक्सी को हाथ के इशारे से उसने रोका। हम लोग अन्दर बैठ गये।

"किधर जाने का है सेठ?"

"लिबर्टी।" उसने जवाब दिया।

टैक्सी ने रफ्तार पकड़ी तो उसने अपना पर्स खोला। दो टिकट निकाल कर मुझे देती हुई बोली, "कोई एतराज तो नहीं है न?"

"आपके साथ तो मुझे नर्क में जाने से भी एतराज नहीं होगा मीनाजी। यह तो फिर पिक्चर है।" वह रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्करा दी।

हम लिबर्टी के सामने टैक्सी से उतरे तो 5–25 हुये थे।

"तुम दफ्तर से निकले हो, भूख लगी होगी। मुझे भी तुम से तुम्हारा दफ्तर पवित्र करने का टैक्स लेना है। टाइम कम है। ईरानी रेस्टोरेन्ट में ही चले चलते हैं। क्यों?"

"ठीक है।" मैंने प्रत्युत्तर दिया और हम सड़क के उस ओर कोने पर स्थित ईरानी रेस्टोरेन्ट में चले गये। जल्दी-जल्दी खा पीकर हम हाथों में हाथ दिये सिनेमा हाल में घुसे। न्यूज रील समाप्त होने को थी।

रोमांटिक दृश्य स्क्रीन पर आने तक हमारे हाथ एक दूसरे से खेलते भर रहे। मगर ज्योंही रोमांटिक दृश्य स्क्रीन पर उभरा उसने जोर से मेरा हाथ दबा कर अपनी टांग मेरी टांग से सटा दी। धीरे-धीरे इस क्रम में गर्मजोशी आती चली गई।

मैंने धीरे से फुसफुसाकर कहा, "मेरी शक्ति की परीक्षा लेने का इरादा है क्या ?"

उसने अपना सिर कंधे पर रख कर कहा, "हाँ"।

"तो फिर एक हाथ से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। दूसरा भी काम में लो।"

"सीधा क्यों नहीं कहते कि मैं भी अरमान निकालना चाहता हूं।" उसने दबी आवाज में मुझे चैलेन्ज दिया।

"मैंने अरमान निकालने चालू किये तो चीं बोल जाओगी, मैडम।"

"अरे, जाने दो। अरमान बातों से नही ताकत से पूरे होते हैं। समझे ?"

तैश में आकर मैंने उसका हाथ जोर से दबा दिया। उसके मुंह से सिसकारी निकल गई। आसपास बैठे लोगों का ध्यान पहले ही हमारी ओर था। अब उनकी नजरें भी हम पर केन्द्रित हो गईं। उसकी सिसकारी की आवाज सुनकर आसपास बैठे लोगों की उपस्थिति के नाते मैं सचेत हो उठा। मैंने घबरा कर उसका हाथ छोड़ दिया।

"डरपोक।" उसने धीरे से कहा और दुबारा मेरा हाथ पकड़ लिया।

गर्मजोशी समाप्त हो चुकी थी। एक विचित्र सी शीतलता ने हाथों को शिथिल और उदासीन बना दिया था। मेरा इस तरह हाथ छोड़ देना निश्चय ही, उसे अच्छा नही लगा।

"हुई नही हूं अभी। मगर यही हाल रहा तो होना पड़ेगा।"

"आई एम रियली सौरी।"

"यू मस्ट बी।" उसने कटाक्ष करते हुए पूरी ताकत से मेरा हाथ दबा दिया।

मैं भी मुस्करा दिया।

इन्टरवल में हम लोग वहीं बैठे रहे।

"पिक्चर कौनसी ये या वो ?" उसने दाहिने हाथ की अंगुली को एक बार हम दोनों की ओर घुमाते हुए प्रश्न के उत्तर में प्रश्न पूछ लिया।

"सो सो।"

"और वो ?" मैंने अंगुली पर्दे की ओर घुमाई।

"उसे देख ही कौन कमबख्त रहा है ?"

पिक्चर फिर चालू हुई। उसने वहीं ऑरेन्ज मंगवा लिया। ऑरेन्ज पीकर एक ठण्डी सी सांस लेकर वह कुर्सी पर अधलेटी सी हो गई। अपना सिर उसने

मेरी बांह पर रख दिया और मेरा दूसरा हाथ अपनी गोद में रख लिया। चारों ओर से घूमती हुई नजरें महसूस करने के बावजूद मैं चुपचाप बैठा रहा।

अचानक पीछे से एक बुझी हुई दियासलाई उसके सिर पर आकर पड़ी। हम दोनो ने चौंक कर पीछे देखा। सब लोग पर्दे पर देखने में तल्लीन होने का नाटक कर रहे थे।

"आजकल मर्द भी कम ईर्ष्यालु नहीं होते।" वह आसपास के लोगों को सुनाकर जोर से बोली, अपना सिर उसने फिर उसी तरह मेरी बांह पर रख लिया। पिक्चर समाप्त होने से पहले एक दो बार और उसके सिर पर दियासलाई की तीलियां आकर पड़ीं। मगर उसने परवाह नहीं की। न वह चौंकी, न उसने पीछे मुड़कर ही देखा।

मुझे अपनी स्थिति पर लज्जा और क्रोध दोनों आ रहे थे। मगर मैं रिक्त बना रहा। उसका मन भी उखड़ा-उखड़ा सा लगा। मगर शायद एक जिद या मजबूरी के तहत वह उसी मुद्रा में बैठी रही।

पिक्चर समाप्त होने पर हम बाहर निकले। उसने टैक्सी वाले को इशारा किया। फिर मुझ से बोली, "मुझे घर पर ड्राप करते हुए निकल जाना।"

"जल्दी है क्या ? डिनर लेकर चले चलेंगे।"

"नहीं, अब नहीं। अच्छा खासा मूड था बिगाड़ कर रख दिया। इतने बड़े शहर मे रहते हैं मगर तमीज नहीं आई।"

मन मेरा भी उखड़ा-उखड़ा सा था। हम टैक्सी में बैठ गये। रास्ते में हम में कोई बातचीत नहीं हुई। उसको घर के बाहर गली के पास छोड़ते हुए मैंने पूछा, "अब कब मिलोगी ?"

"मैं टेलीफोन कर दूंगी।"

"ओ के।"

शनिवार को दिन के समय उसका टेलीफोन मिला। मेरा पहला प्रश्न था। "आपके मूड के अब क्या हाल-चाल हैं, मीना जी ?"

"वन्डरफुल। आपको अब तक याद है वह बात ?"

"क्यों, भूल जाना चाहिये था क्या ?"

"गहमागहमी के इस युग में याददाश्त का अच्छा होना भी दुःखदायी होता है, कुमार साहब।"

"चलिये, आप कहती हैं तो भुलाये देता हूं। अब सुनाइये, दर्शन कब हो रहे हैं आपके।"

"हमारे दर्शन करना चाहते हो ?"

"जी हाँ, मगर इजाजत मिल जाय।"

"श्रद्धा यदि इतनी उमड़ रही,है आपकी तो फिर कल सुबह हम आपके गरीबखाने पर आपको दर्शन देने जा रहे हैं। घर का विस्तृत पता हमें बता दीजिए और कोई ख्वाहिश ?" एक खुशनुमा, झनझनाती हुई खिलखिलाहट रिसीवर में से छनकर मुझे तरंगित कर गई।

मैंने घर का पता उसे समझाया फिर पूछा, "दर्शनों का वरदान कितने समय के लिए मिलेगा ?"

"जितने समय तक आप चाहें मिल जायेगा, कुमार सहाब ! इतने बेताब क्यों हो रहे हैं ? मगर सुनिये, अब और कुछ मत पूछियेगा। थोड़ा सा सस्पेन्स मुलाकात का मजा बढ़ा देता है।"

दूसरे दिन सुबह वह आई तो मैं उसे देखकर दंग रह गया। स्लीवलेस ब्लाउज, अजन्ता स्टाइल से बांधी हुई साड़ी, नेचुरल कलर की लिपस्टिक के स्पर्श से मोहक बन गये होंठ और यूडोकोलीन की भीनी-भीनी महक। जल्दी-जल्दी कपड़े बदल कर मैं उसके साथ बाहर आ गया।

"कयामत के बारे में सुनते थे तो सोचा करते थे, कैसी होती होगी वह ? आपकी बदौलत आज कयामत को भी देख लिया।"

"अजी, अभी देखा ही क्या है आपने ? हमारी बदौलत तो बहुत कुछ देखेंगे आप।"

कुछ फल और मिठाई खरीद कर हम लोग बोरिवली आये। मैं जब भी उससे पूछता, हम कहाँ जा रहे हैं, वह कुछ न कुछ कहकर टाल देती। बोरिवली पहुँच कर हम ज्योंही स्पेशल बस में बैठे मैंने उससे कहा, "आपने जो बात अब तक मुझे नहीं बतलाई आप चाहें तो मैं बता दूं।"

"काफी समझदार नजर आते हो। हमारे साथ रहोगे तो एक न एक दिन अन्तर्यामी हो जाओगे।"

मैं मुस्कराकर रह गया। वह मुझ से बुरी तरह सटकर बैठी थी। दो व्यक्तियों के बैठने योग्य स्थान पर अब भी इतनी जगह बाकी थी कि एक दुबला पतला व्यक्ति आसानी से बैठ सके। यों भी उसके शरीर से उठती शहद की स्वाभाविक गन्ध अपने आप में कम मादक नहीं होती थी मगर आज यूडोकोलीन की खुश्बू उसके शरीर की खुश्बू के सान्निध्य में कहीं अधिक घातक थी। मैंने अपना हाथ उसके कंधे पर रखा और गर्वपूर्ण दृष्टि से बस में चारों ओर देखा। बस में बैठे अधिकांश लोग पिकनिक की तैयारियों को ओढ़े हुए थे। फिर भी मुझे लगा कि सबकी दृष्टि से हमारे प्रति ईर्ष्या है। मुझे अपनी सुदेह यष्टि, अपनी गुण-सम्पदा

का यह सशक्त प्रमाण प्रतीत हो रहा है कि एक खूबसूरत जिस्म के साथ लिपटा सुगन्धियों का घेरा पूरा का पूरा आज मेरा था। बस नेशनल पार्क के निकट से गुजर रही थी।

"एक पहेली बूझूं।"

"सुनाओ, कौनसी पहेली है ?"

"दुनियां में सबसे तेज चाल किसकी है ?"

मैंने थोड़ा सोचकर कहा, "चन्द्रमा की यात्रा के लिये जाने वाले यान ही सबसे तेज चलते हैं। क्यों ठीक है न ?"

"मैंने मुफ्त में ही तुम्हें समझदार कह दिया। इतनी छोटी सी बात का सही जवाब तुम दे नहीं सकते। दुनियां को तुम से क्या उम्मीद रखनी चाहिए ?"

"दुनियां की बात छोड़ो। यह बताओ कि तुम मुझ से क्या उम्मीद रखती हो ?"

"अरे, हम तो तुम से कई सारी उम्मीदें लगाये बैठे हैं और हमें पता है कि हमारी की हुई उम्मीदें हमेशा पूरी होती हैं। मगर तुम इस तरह मेरी पहेली से नहीं बच सकते। जल्दी करो, जवाब दो।

"हार मानता हूं। तुम बताओ।"

"बोलो, बता दिया तो क्या दोगे ?"

"दूंगा क्या ? पहेली तुम्हारी है। जवाब तुम्हें आता ही होगा। फिर यह लेने-देने की बात कहां से पैदा हो गई ?"

"क्यों, यह तो व्यापार है। अभी तुम मुझे कुछ दो और जवाब ले लो। बाद में किसी और को जवाब दे देना और बदले में उससे कुछ ले लेना।"

"अच्छा बोलो, क्या लोगी ?"

"जो जी में आयेगा, लूंगी।"

"और अगर तुम्हारे जवाब से मैं सन्तुष्ट न हुआ तो ?"

"तो जो तुम्हारे जी में आये तुम मुझ से ले लेना।"

"चलो, मंजूर है। बताओ।"

"मन की चाल दुनियां में सबसे तेज है। सेटिस्फाइड ? मिलाओ हाथ।"

मैंने अपना हाथ उसके हाथ से मिलाते हुए कहा, "हां सेटिस्फाइड। अब बोलो, क्या लेना है ?"

"बता देंगे। जल्दी क्या है ? अभी तो तुम हमसे कई शर्तें हारने वाले हो। उसने हँसते हुए रहस्यपूर्ण ढंग से कहा।"

बस कान्हेरी केवल पर जाकर रुकी। मेरा हाथ पकड़े-पकड़े ही वह नीचे उतरी। फल और मिठाई मेरे दूसरे हाथ में थे।

"पहले चाय पीकर फिर ऊपर चलेंगे। क्या ख्याल है?"

"हम तो आपके आगे हारे हुए ही हैं हुजूर।"

"ठीक है तो फिर मैं आपका ख्याल नही पूछती। आओ, पहले चाय पीते हैं।"

चाय पीकर, बाँह में हाथ डाले हम ऊपर की ओर अग्रसर हुए। आसमान पर बादल थे। फिजा पीकर बहकने की तैयारियां कर रही थी। मेरी बांह से एक फूलों की डाली लिपटी हुई थी। यह सब क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? मैंने एक-आध बार थमकर सोचना चाहा। किन्तु सान्निध्य की मादकता मुझ पर इस कदर भारी थी कि प्रस्तुत क्षण को कस कर जी लेने से अधिक स्वाभाविक मुझे कुछ भी नहीं लग रहा था।

एक के बाद एक गुफा को हम अपनी सम्मिलित हँसी से गुंजाते चले गये। गुफा नम्बर अठ्ठावन।

"मैं तो थक गई।"

"थोड़ी देर बैठ कर आराम कर लेते हैं।"

मैं जमीन पर पांव फैलाकर बैठ गया। वह मेरी गोद में सिर रखकर लेट गई। सुगन्धियों का तैरता सागर। यौवन का आसमान छूता उद्दाम तूफान। गुफा नम्बर अठ्ठावन मेरी गोद में खुल आया जूड़ा, विस्तीर्ण वक्षस्थल को आन्दोलित करती सांसें। मैं सम्भलूं कि उसने अपनी बाहें मेरे गले में डाल दी, "ऐसी तन्हाई फिर नहीं मिलेगी।"

मैंने चौंककर उसके मुंह की तरफ देखा।

"यों अजनबियों की तरह क्या देख रहे हो? आओ न।" कुछ मेरे चेहरे को अपनी ओर खींच कर, कुछ अपना मुंह ऊपर उठा कर उसने होठों को मिला दिया।

"क्यो तड़पाते हो यार! आओ भी।"

मैं खुद को रोक नहीं सका। सामने ठाठें मारते यौवन का आमन्त्रण ठुकराने की सामर्थ्य मुझ में नहीं थी।

"उधर कोने मे आ जाओ।"

एक दूसरे से लिपटे हुए हम ज्वालाओं का आदान-प्रदान करते रहे थे। एक-दूसरे को छूते, चूमते, चूसते रहे थे और अन्त मे एक-दूसरे में डूब गये थे। पर्स से

कपड़ा निकाल कर उसने मेरा और अपना अंग साफ किया था। हम थोड़ी देर वहीं सुस्ताये थे।

फिर अपना मेकअप ठीक करते हुए उसने अपनी कंघी मुझे देकर कहा था, "बाल ठीक कर लो।"

गुफा में से बाहर निकल हम खुले में पहुंचे। मुझे लग रहा था मैं अपने स्थान पर स्थिर खड़ा हूं। ग्लोब के भिन्न-भिन्न देश प्रति क्षण मेरी नजरों के सामने से गुजर रहे हैं। गुफा नम्बर अट्ठावन अब भी मेरी दृष्टि में सजीव थी। वह सन्तुष्ट और शरारती नजरो से बार-बार मुझे देख रही थी। मैं उसकी दृष्टि का यथोचित जवाब दे नहीं पा रहा था।

"कुछ बोलो न ? इतने चुप-चुप से क्यो हो गये हो ?"

"क्या बोलूं ?"

"बहुत शर्माते हो। इससे पहले कितनी बार किया है ?"

जबान बन्द करने को सन्नद्ध हिजाब को मैंने बलपूर्वक दूर करने का प्रयत्न करते हुए कहा, "एक बार भी नहीं।"

"सफेद झूंठ बोल रहे हो न ?"

"नहीं, मैंने बिल्कुल सच कहा।"

"मैं मान नही सकती। तुम्हारा व्यवहार, तुम्हारा तरीका। नही, मैं मान नहीं सकती। कुमुद के साथ कभी कुछ नही किया ?"

"कुमुद नाम की कोई लड़की मेरी मित्र नहीं है। आपसे पिण्ड छुडाने के लिए उस दिन मैंने झूंठ बोल दिया था।"

"नानसेन्स। बनने की कोशिश मत करो। क्या तुम यह कहना चाहते हो कि बीसवीं सदी के सातवें शतक में हिन्दुस्तान के इतने बड़े शहर में रहने वाला एक पच्चीस साल का खूबसूरत नौजवान अभी अछूता है ? और किसी से मत कह देना। लोग हँसेंगे।"

मैं चुप खींच गया। उसकी बात काटने से कोई फायदा नही था। वह अपनी मान्यता से किंचित मात्र भी टस से मस होने को तैयार नहीं थी।

"चिन्ता मत करो। मैं किसी को नहीं बताऊंगी। अरे, लाइफ को इस उम्र में एन्ज्वाय नहीं करेंगे तो बताओ, कब करेंगे ? तुम थोड़ी देर पहले मुझ से एक शर्त हारे थे याद है न ?"

"हां, याद है।"

"तो उस शर्त के बदले तुम मुझे अपने जैसे किसी और फ्रेन्ड से इन्ट्रोड्यूस कराना। हम तो जब चाहेंगे एक दूसरे से मिल ही लेंगे। मोनोटोनस रहकर जिंदगी का मजा लोग पता नहीं कैसे ले पाते हैं। सच, हमसे तो यह नहीं होता।"

मैं समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या जवाब दूं। उसके प्रस्ताव ने मुझे झिंझोड़ दिया था।

"इतना क्या सोचते हो ? तुम्हारी तो मैं हूं ही। यों भी तुम मुझ से शर्त हारे हो। तुम्हें 'ना' कहने का अधिकार ही नहीं है।" उसने शरारत से मुस्कराते हुए अपनी बात पूरी की, "फिर भी चलो, हम तुम्हारे साथ बराबरी का व्यवहार करेंगे। हम भी अपनी किसी खूबसूरत सी गर्लफ्रेन्ड को तुम्हारे साथ इन्ट्रोड्यूस करा देंगे। अब तो ठीक है न ?"

उसके मोहपाश मे फंसकर मैं एक बार गलती कर बैठा था, इसलिये तुरन्त उसका विरोध मैं कर नही सका। मगर उसके साथ चलते हुए मैं बड़ी बेचैनी से उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगा जब अपने कमरे में बैठ कर उस क्षण को जी भर कर कोसना मेरे लिए सम्भव हो सकेगा, जिस क्षण मेरी उससे पहली मुलाकात हुई थी।

□

कर्त्तव्य बोध

रात्रि के पौने बारह बजे थे। हर कोने में सन्नाटा दौड़ा चला आ रहा था। पंखा तेज रफ्तार से दौड़ रहा था। गर्मी की अधिकता के कारण वह भी गर्म हवा फेंक रहा था। शरीर झुलसता जा रहा था। लगता था, दम अभी घुटा कि अभी घुटा। फिर भी कमरा बन्द करके वह पलंग पर बैठी हुई थी। कमरे से बाहर निकलना उसे निरापद नहीं लग रहा था। बार-बार एक भय उसे सिहरा जाता था। उसे लगता था, किसी भी क्षण बन्द दरवाजों को बिना खोले, बन्द खिड़कियों को बिना तोड़े कोई व्यक्ति कमरे में प्रकट हो जायेगा और......और......। इससे आगे कल्पना करते-करते वह इतना डर जाती कि कबूतर की तरह उसकी आँखें अपने आप ही बन्द हो जाती।

ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ेगा, यह विचार भी उसके मस्तिष्क मे नहीं आया था विवाह से पूर्व। शैशव के साथ घरौंदे बनाने और गुड़ियाओं के ब्याह रचाने से लेकर किशोरावस्था के भावुक स्वप्नों की मधुर पहली डोर को कसकर अपने चारों ओर लपेटने तक लाड़ प्यार निर्बाध रूप से उस पर बरसता रहा था।

सोलहवां साल पूरा करते-करते हायर सैकण्डरी उत्तीर्ण की थी। तब तक उसके अंग भरकर निखर आये थे। कटाक्ष स्थापित हो गये थे। बात-बात पर गुलाबीपन उसके चहरे पर उतरने लगा था और लावण्य उसका क्रीत दास बन बैठा था। एक आकर्षक सलोनापन हर समय उसके मुखमण्डल पर बिखरा होता। उसके स्वभाव की अलमस्ती अब संकोच के परिधान से सजने लगी थी।

उसको अच्छी तरह याद है दादाजी ने उसकी पढ़ाई बन्द करने की घोषणा कर दी थी। दादाजी की यह घोषणा उसको सहज स्वीकार्य नही लगी थी। हायर सैकण्डरी के प्रमाण-पत्र की इस प्रगतिशील युग में क्या कीमत है, वह जानती थी। पहले उसने बहस करके दादाजी को समझाने का प्रयत्न किया कि जमाना अब बहुत आगे बढ़ गया है। वे दिन गये जब लड़कियाँ घर की चारदीवारी को ही अपनी दुनियां मानती थी। अब पढ़ना तो क्या, लड़कियां नौकरी तक करती हैं, दफ्तरों मे। किन्तु दादाजी का रूढ़िवाद भी तर्क का कायल नही हुआ था।

उनकी घोषणा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो उसने जिद्द ठान ली। खाना-पीना बन्द कर दिया। मुंह फुलाकर चारपाई पर लेट गयी। रात को पिताजी ने आकर जब तक वायदा नहीं कर लिया कि उसे कालेज में प्रवेश दिला देंगे, तब तक उसने अपना अनशन जारी रखा। दादाजी को पिताजी ने क्या कहा, कैसे समझाया यह बात वही जानें। बाकी उसको कालेज में प्रवेश दिला दिया गया था।

यह प्रथम अवसर था जब उसे अपनी बात मनवाने के लिए कुछ करना पड़ा था। अन्यथा उसके हर काम को, उसकी हर इच्छा को प्रसन्नतापूर्वक पूरा किया जाता रहा था।

बेमन ही सही, दादाजी ने उसके आगे पढ़ने की बात तो मान ली, किन्तु आये दिन उन्होंने पिताजी के कान खाने चालू कर दिये कि लड़की सयानी हो गई है। उसके हाथ पीले करने की भी कुछ चिन्ता करो।

वह सुनती तो बेहद कुढ़ती। लेकिन संस्कारों की विचारों पर जमी मोटी पर्तें को भेदकर खुले आकाश के नीचे सांस लेने का साहस उसमें नहीं था। इसलिए इस विषय पर कोई सीधी बात करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। फिर हृदय की गहराइयों में करवट लेती शर्मीली जिज्ञासाएं भी उसकी कमजोरी थी। विवाह उसके लिए उत्सुकताओं से भरा एक समुद्र था। मन की दो विरोधी अवस्थाओं से ताल बैठाने का प्रयत्न करते हुए वह स्वयं को व्यस्त प्रदर्शित करती रही। कभी पढ़ाई में, कभी घर के काम में और कभी सिलाई के साथ।

उसके मौन के बावजूद पिताजी के प्रयत्नों के चलते-चलते दो वर्षों तक सम्बन्ध कहीं भी निश्चित नहीं हो सका था। इस जगह भाग्य ने उसका साथ दिया था। वह बी० ए० के अन्तिम वर्ष में आ गई थी। अन्तिम वर्ष तक पहुंचने के बाद पढ़ाई छुड़ाने का प्रश्न अपने आप घुट कर मर गया था।

फिर सगाई हो गयी थी। लड़का अपनी मां के साथ आकर उसे देख गया था। वह शर्माई सी मुंह नीचा किये गुड़िया सी निस्पन्द बैठी रही थी। यद्यपि सगाई और विवाह के मध्य व्यतीत हुए एक वर्ष में उसने अनेकों बार अपने शर्मीलेपन को कोसा था। किन्तु अपने भावी पति का रंग-रूप, चेहरा, मोहरा, कद-काठी कल्पना में भी उसके सम्मुख नहीं उभर सके थे। यदि उभरे थे तो ढेर सारे स्वप्न, अथाह योजनाएं और सुखी गृहस्थ जीवन की कामनाएं।

परीक्षा के तुरन्त बाद, शहनाइयों की स्वर लहरियों के बीच बारात आई थी। सहेलियों के साथ दूल्हे को देखने के लिए छत की ओर कदम बढ़ाते समय जिज्ञासा व नवीनता के मारे उसकी सांसें रुकने लगी थीं, धड़कनें दौड़ने

लगी थी। प्रसन्नता संचित वातावरण में छत पर पहुंच कर कलंगी लगे सेहरे में सजे अपने दूल्हे को देखकर उसके आस्तिक मन ने ईश्वर के सम्मुख सिर झुका दिया था। समूचा हृदय उसके सम्मुख कुछ अदा के साथ स्थिर हो गया था कि वह बेहद तरंगगत व सरस हो उठी थी। सम्भवतः यही कारण था कि वह विदा के समय दिखावे के लिए भी नहीं रो सकी थी।

मायके लौटने पर आशा ने उसकी चुटकी लेते हुए कहा था, "हमारी रेखा तो बस इन्तजार में ही थी कि जीजाजी आयें और इसे उठा ले जायें।"

वह जानती थी कि यदि प्रतिवाद करेगी तो उल्टा अधिक फंसेगी। इसलिए कोई जवाब न देकर सिर्फ मुस्करा दी थी।

विवाह से पूर्व राकेश अकेला ही एक कमरा और किचन लेकर शहर मे रहता था। सरकारी नौकरी थी। तीन-साढ़े तीन सौ रुपये वेतन था। मित्रों के साथ समय पंख लगाकर तेजी से उड़ता था और वह उस उड़ान का जी भरकर आनन्द लेता था।

मायके से लौटने से पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार वह राकेश के साथ आ गयी थी। सारा सामान उसने करीने से लगाया। रसोई अपने ढंग से ठीक की। राकेश भोजन होटल में करता था इसलिए किचन में स्टोव और चाय बनाने के सामान के अतिरिक्त कुछ नहीं था। उसने साथ लाये हुए बर्तन जमाये और रसोई घर के लिए आवश्यक सामग्री की सूची बनाकर राकेश को थमा दी।

सुबह जल्दी उठकर, सफाई करके पहले वह स्नान करती। गीता का पाठ करते-करते उसे सात बज जाते। प्रारम्भ मे दो, तीन दिन उसने राकेश को भी अपने साथ जल्दी उठाने की कोशिश की। किन्तु आठ बजे बिस्तर छोड़ने के अभ्यस्त राकेश को पांच बजे बिस्तर छुड़ाने में वह सफल नहीं हो सकी। सात बजे के लगभग दूध वाला आ जाता था। वह चाय तैयार करके राकेश को जगाती। उस समय उठने में भी यदि राकेश टालमटोल करता तो वह उसे जबरदस्ती उठाते हुए कहती, "इससे ज्यादा समझौता नहीं करूंगी। हां, अब उठो और चाय पीओ।"

राकेश अंगड़ाई लेता हुआ उठता। चाय पीता। उसे छेड़ता, चिढ़ाता, खिझाता, गुदगुदाता, प्यार करता और फिर निवृत्त होकर शेव बनाकर स्नान करता। तब तक वह भोजन तैयार कर लेती। दोनों साथ-साथ भोजन करते और इसके बाद राकेश दफ्तर चला जाता। वह दरवाजे पर खड़ी होकर तब तक उसे देखती रहती, जब तक वह आंखों से ओझल न हो जाता।

राकेश के दफ्तर जाने के बाद वह नितान्त अकेली होती और सामने होता

ा उकताहट भरा दिन । कुछ समय सोकर, कुछ समय पत्रिकाएं

रबड़ की तरह खिंचत किसी प्रकार वह दिन गुजारती । बाद में पड़ोसियों से परिचय

व उपन्यास पढ़कर ि स्या कुछ कम हो गयी थी । कभी वह पड़ोसियों के यहाँ चली

हो जाने पर यह सम में से कोई उसके पास आ जाती । पाँच बजते-बजते वह तैयार

जाती और कभी उन करके कपड़े बदल लेती । अंगीठी सुलगा कर चाय का पानी

होकर, हल्का प्रसाधन की प्रतीक्षा करने लगती । ज्योंही दरवाजे के बाहर उसे

रख देती और राकेश का आभास होता वह द्वार खोलकर एक मृदु मुस्कान के साथ

राकेश की पगध्वनि । इसके बाद दोनों मिलकर चाय पीते ।

उसका स्वागत करतीत करके, हल्का होकर राकेश पलंग पर लेटकर सुस्ताता और

वस्त्र परिवर्ति कर गपशप करती रहती । यहाँ तक सब कुछ सुखद और

वह उसके निकट बैठ तु इसके आगे ? इसके आगे ही तो वास्तविक समस्या थी,

लुभावना था । कि पेड़े थे ।

आशकाओं के तीव्र था बजते राकेश के दो-तीन मित्र घर पर आ धमकते थे और

सात बजते राकेश उसका कुछ भी तो नही होता । वह कपड़े पहन कर

फिर यों लगता जैसे नकल जाता । तब का गया हुआ राकेश कब घर लौटेगा, यह

उनके साथ घर से बताने की स्थिति मे नही होता था । गनीमत थी कि दफ्तर

बात राकेश स्वयं भी ने साथ सब्जी लेता आता था । वह सब्जी बनाकर उबासियाँ

से लौटते हुए वह उसकी प्रतीक्षा करती रहती कि कब वह आये और कब भोजन

लेती हुई भूखी बैठी गे सरकती जाती । दस, ग्यारह, बारह, साढे बारह कुछ भी

हो । घड़ी की सुई और राकेश के वापस लौटने पर कोई पाबन्दी नही थी ।

बज जाये । घड़ी पर उसने शिकायत की तो राकेश ने हँसकर टाल दिया । उसने

दो-तीन बार हल्केपन से बोला, "यार, शादी से पहले दो-दो बजे तक बैठे

जोर देकर कहा तो या सड़कों पर घूमते रहते थे । शादी के बाद अगर उठना

गप्पें मारते रहते थे ा तो सब हँसेंगे । इसलिए............ ।" वह मासूमियत से हँस

बैठना बन्द कर दू

दिया था । की प्रतीक्षा में तो मैं भूखी बैठी रहती हू ।"

"मगर आप प्रतीक्षा क्यों करती हो ? भोजन करके, मेरे लिए पकाकर सो

"तुम मेरी ाऊंगा, खा लूंगा ।"

जाया करो । जब आ गयी थी । इस कठिनाई का हल उसे सूझ नही रहा था ।

झगड़ा करने से कटुता ही बढ़ेगी, लाभ कुछ नही होगा । ऐसा

वह चुप रह को नियन्त्रित कर लिया ।

अधिक कहा सुनी या

सोचकर उसने स्वयं व्याप्त मौन । हांफती रात । अकेले मे सम्बद्ध दुविचार । उसे

वातावरण

एक-एक क्षण एक-एक युग की भांति व्यग्रता में कट रहा था। अपनी इस व्यथा को किसी से कह भी तो नहीं सकती है वह। राकेश का व्यवहार, उसका आचरण सब कुछ तो अच्छा है। आज की दुनियां में रहते हुए भी सिगरेट नहीं पीता है वह। यह कोई ऐसी बात भी नहीं है कि घर घर लिखी जाये। किसी से कहे भी तो क्या उसी की कमी नहीं निकाली जायेगी कि वह राकेश को सम्भाल नहीं पा रही है ?

कुछ न कुछ अवश्य करना होगा और स्वयं, बिना किसी की सहायता के करना होगा। चुप रहने से काम नहीं चलेगा। अपने आप यदि सब कुछ ठीक हुआ भी तो, इसमें बहुत समय लगेगा। इस उमस भरे, बन्द और गर्म कमरे से डरती हुई रात के बारह-बारह बजे तक भूखी कब तक प्रतीक्षा करेगी वह ?

अन्त में खूब सोच विचार कर उसने एक उपाय ढूंढ निकाला।

रात देर गये जब राकेश लौटता था, काफी थका हुआ होता था। सब्जी तैयार होती ही थी। वह उठकर जल्दी से रोटी सेंक देती थी। परिणाम यह होता था कि राकेश के लौटने के आधे घन्टे के अन्दर-अन्दर वे दोनों भोजन से निवृत्त होकर बिस्तर पर लेट चुके होते थे।

दूसरे दिन रात को जब राकेश लौटा, वह रोशनी बुझाकर बिस्तर पर लेटी जाग रही थी। डर और दुश्चिन्ताओं के कारण नींद उससे कोसों दूर थी। राकेश ने द्वार खटखटाया। वह ज्यों की त्यों लेटी रही। दूसरी बार राकेश ने उसे आवाज लगाने के साथ-साथ द्वार खटखटाया। इस बार भी वह नहीं उठी। इसी तरह तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी बार यह क्रम दोहराते-दोहराते चार-पांच मिनट व्यतीत हो गये, खटखटाहट बहुत तेज हो गयी, स्वर की ऊंचाई बढ़ गई तो वह बिस्तर से उठी। आंखें मलते हुए उसने दरवाजा खोला।

"आपको अधिक देर तो प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी न ? आज पता नहीं कैसे नींद आ गयी।"

"कम से कम तीस आवाजें लगायी होंगी। ऐसा भी क्या सोना ?"

"जागने की कोशिश तो बहुत की लेकिन आंख लग गई।" फिर किंचित मुस्कराकर बोली, "आप तो वैसे भी कहते हैं न कि सो जाया करो, जागने की क्या जरूरत है।"

"यह कहता हूं, इसका अर्थ यह तो नहीं है कि घोड़े बेचकर सोया जाये। खैर, अब जल्दी करो। खाना लगाओ।"

"आप हाथ मुंह धोकर आइये। अभी तैयार कर देती हूं।"

राकेश ने हाथ मुंह धोये और तौलिये से मुंह पोंछता हुआ रसोई घर में प्रवेश करता हुआ बोला, 'लाओ, अब फटाफट खाना लगाओ।" किन्तु तभी रेखा की ओर देख कर ठगा सा अपने स्थान पर खड़ा रह गया। वह अभी आलू काट रही थी।

"क्या बात है, आज सब्जी अभी तक नहीं बनी ?"

"आपके आने तक सब्जी ठण्डी हो जाती है। ठण्डी सब्जी को कितना भी गर्म कर लो, खाना खाने में वह आनन्द नहीं आता। आगे से आपको गर्म-गर्म बना कर खिलाया करूंगी।" शांति और निश्चिन्ततापूर्वक उसने जवाब दिया।

सख्त भूख और थकावट के बावजूद राकेश के होठों पर एक मुस्कराहट तैर गयी, "लड़ाई करने का इरादा है ?"

प्रत्युत्तर में उसने कुछ नहीं कहा। किंचित मुस्कराहट के साथ काम में लग गई। "आप खड़े क्यों हैं, बैठिये न?" राकेश के लिए चटाई बिछाते हुए उसने वाणी में प्रेम घोलकर कहा।

राकेश के बैठ जाने के बाद आलू काटकर, उन्हें धोकर उसने अंगीठी सुलगाना चालू किया। सारा रसोई घर धुंए से भर गया। वह मनोयोग पूर्वक सिगड़ी पर पंखे से हवा करती रही।

राकेश से धुंए में बैठा नहीं गया। उसने उठते हुए रेखा से कहा, "मैं कमरे में बैठा हूं। खाना बनाकर बुला लेना।"

अंगीठी सुलगा कर आलू चढ़ाकर आधे घण्टे बाद वह राकेश के पास आ गई। राकेश बिस्तर पर तकिये के सहारे अधलेटा सा होकर जागने का प्रयत्न कर रहा था किन्तु बार-बार प्रयास के बाद भी झपक आती थी।

"अब किचन में धुआं नहीं है। आप वहीं चलकर बैठिये न, मुझे अकेले में डर लगता है।"

राकेश को बांह में पकड़ कर उसने बिस्तर से उठाया और वापस रसोई घर में ले आयी। उसके निकट बैठकर वह उससे इधर-उधर की बातें करती रही। कुछ देर तक तो राकेश भी बातें करता रहा किन्तु अधिक देर तक उससे बैठा नहीं रहा गया।

"मुझे तो बहुत नींद आ रही है भई रेखा ! अब बैठा नहीं रहा जाता तुम खाना बनाकर आवाज लगा देना। तब तक मैं सोता हूं।"

उसने राकेश को रोकने की चेष्टा नहीं की। उसके जाने के बाद धीरे-धीरे खाना तैयार किया। जब आखिरी रोटी सेंककर वह उठी तो उसने देखा, घड़ी रात

के दो बजा रही है। कमरे मे आकर उसने राकेश को गहरी नींद मे सोता हुआ पाया। उसने चिल्ला कर उसे जगाया, "उठिये, भोजन कर लीजिए।"

"भई सोने दो। बड़ी नींद आ रही है।"

"उठिये न ? भूखे ही सोयेंगे क्या ?

"अब भूख नहीं है। सुबह खा लेंगे।"

"भूख नहीं थी तो पहले क्यों नहीं बताया ? अब तो खाना बिल्कुल तैयार है। मैं आपको इस तरह भूखा नहीं सोने दूंगी।" उसने जबरदस्ती करते हुए खींचा।

"सच में अब बिल्कुल भूख नही है।" राकेश ने टालने का अन्तिम प्रयास किया।

"मैंने कहा न इस तरह नहीं चलेगा। आप उठकर भोजन करिये फिर आराम से सो जाइयेगा, कौन मना करता है।" राकेश को खींच कर उसने बैठा दिया।

राकेश बेमन से उठकर उसके साथ रसोई घर मे गया। थाली मे खाना डालकर वह भी उसके साथ बैठ गई। भोजन समाप्त करने के बाद राकेश की ओर कटाक्ष करते हुए बोली, "खुद तो जनाब भूखे सो ही रहे थे। साथ में मुझे भी भूखा सुला रहे थे।

"तुम खाना खिलाना ही नही चाहती थी।"

"वाह, खिलाना न चाहती तो आपको जबरदस्ती उठा कर क्यों लाती ?"

"वह तो मैं आ गया, इसलिए तुम ले आयी। मगर यह सच है कि तुम्हारी खाना खिलाने की इच्छा नही थी। अगर होती तो हमेशा की तरह खाना बनाकर रखती नहीं तुम ?"

"मैंने तो फिर भी आपका ख्याल रखा है। आपको गर्म खाना खिलाया है। इतनी रात गये तक जागकर खाना बनाया है। आप बताइये, आप मेरा ख्याल रखते हैं इस तरह कभी ?"

राकेश एकटक उसकी ओर देखता रहा।

"मैं बारह-बारह बजे तक भूखी बैठी आपकी राह देखती रहती हूं। आपको कभी मेरी तकलीफ का ध्यान आया ? यहां अगर आप ही मेरी चिन्ता नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? बात समाप्त करते-करते उसकी आँखें भर आयी।"

राकेश उठा। उसके निकट आया। कुछ देर वह स्नेह लिप्त दृष्टि से उसे निहारता रहा और फिर एकाएक उसने झुककर आँसुओं को चूम लिया।

दूसरे दिन संध्या को सदैव की भाँति राकेश के मित्र आये। उनके साथ जाने की बजाय राकेश उन्हें कह रहा था। "यह कहने में मुझे अब कोई संकोच नहीं है के मेरा विवाह हो गया है, इसलिए पहले की तरह आधी-आधी रात तक बाहर रहना अब मेरे लिए सम्भव नहीं है।"

रेखा को इससे आगे कुछ भी सुनाई नहीं दिया। उसे लगा, उसके कदम बहुत हल्के हो गये हैं और जिन्दगी के लम्बे, जटिल रास्ते बहुत छोटे हो गये हैं, बहुत सरल हो गये हैं।

□

टुकड़े-टुकड़े आदमी

बिल आते जा रहे थे। हिसाब फैलाकर रोशनलाल जी रुपये लेते जा रहे थे। वनस्पति के वितरण का काम सुचारु ढंग से चल रहा था।

नगर के लगभग सात सौ खुदरा व्यापारियों में वनस्पति के उचित वितरण की दृष्टि से व्यापार संघ ने यह काम अपने हाथों में लिया था। पन्द्रह सदस्यों की कार्यकारिणी इस काम के लिए पूरी तरह उत्तरदायी थी। खुदरा व्यापारी को स्वयं या अपने क्षेत्र की कार्य-कारिणी सदस्य के हाथों रुपये भेजकर वनस्पति के टिन संघ के कार्यालय से अपने खर्चे पर उठाने होते थे। इस व्यवस्था को वेतन भोगियों के हाथों में न सौंप कर कार्य-कारिणी के सदस्यों ने क्रम से स्वयं करने का निश्चय किया था। आज रोशनलाल जी रुपयों की वसूली पर थे।

"जैरामजी की सेठजी!"

"जैरामजी की मोहनलाल, आओ। कितने का बिल बना?"

"पांच हजार सात रुपये पचास पैसे।"

"भाई की बड़ी सेवा हो रही है, आजकल।" रोशनलाल जी ने मुस्कराकर बिल लेते हुए कहा।

"क्या करें सेठजी, लोग जिम्मेदारी सौंपते हैं तो पूरी करनी ही पड़ती है।"

"हां भाई क्यों नहीं करोगे सेवा। आखिर कार्यकारिणी के सदस्य हो। लाओ रुपये दो।" उन्होंने हाथ फैलाते हुए कहा था।

"लीजिये सेठजी। इसमें हजार रुपये ज्यादा होंगे। गिनकर बाकी वापस कर दीजियेगा।"

रोशनलाल जी नोट गिनने लगे। मोहनलाल इस बीच अन्य व्यापारियों से बातचीत करने लगा।

गिनती पूरी करके रोशनलाल जी ने उसे आवाज दी, "अरे मोहनलाल क्या बात है? आज अंटी फट गई है क्या?"

"क्यों सेठजी क्या हो गया?"

"तुम एक हजार बता रहे थे और यहाँ दो हजार रुपये ज्यादा हैं।"

"दो हजार रुपये ज्यादा हैं ? मोहनलाल ने कुछ सोचते हुए कहा, हां, याद आया। दो हजार ही होंगे सेठजी।"

"दो हजार हैं तो लो, सम्भालो अपने रुपये।"

निकट खड़े व्यापारियों में से किसी ने कहा, "रोशनलाल जी, एक बार और गिनकर पक्का कर लीजिये।"

रोशनलाल जी विश्वासपूर्ण स्वर मे बोले, "सेठजी, व्यापारी चाहे जितना होशियार हो सकता है, मगर दूसरे व्यापारी से कभी धोखा नही करता।"

"फिर भी।"

"नही जी, कतई जरूरत नही है।" वे दूसरे व्यापारी की ओर मुखातिब हुए। "हां सेठजी, आपका क्या है ?"

"रोशनलाल जी, जरा जल्दी मे हूं। ये सत्रह सौ रुपये गिनना। टिन मैं उठवा जाता हू। बिल पीछे-पीछे आता होगा।"

"हिसाब तो लगवा लिया है न ?"

"सब कुछ हो गया है। बस बिल बनाना बाकी है।"

रोशनलाल जी ने रुपये गिनकर तिजोरी में रखे........"जाओ, टिन उठवा लो, सेठजी।"

चार घण्टे काम करने के बाद, वितरण बन्द होने पर रोशनलाल जी ने बिलो का जोड़ भी लगाकर रोकड़ सम्भाली। अन्य सहयोगी उनके साथ थे।

रोकड एक बार गिन ली गई। दूसरी बार फिर गिनली गई। बिलों के जोड़ भी दो वार लगा लिये गये। इसके बाद रोशनलाल जी का साहम जवाब देने लगा। रोकड़ में हजार रुपये कम पड़ रहे थे।

संघ का अध्यक्ष एक तरफ बैठा कुछ कागज पत्र देख रहा था। उसे बुलाकर सारी स्थिति बताई गई तो वह निश्चितता से बोला, "हिसाब मिलाने मे गलती हो गई होगी। लाओ, मैं देख लेता हूं।"

एक बार फिर जांच हुई। मगर एक हजार का फर्क पूर्ववत् बना ही रहा। उपस्थित सब लोग चिन्तातुर थे। बात वास्तव में गम्भीर थी। रोशनलाल जी जैसे विश्वस्त और ईमानदार आदमी पर सन्देह करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। सबसे बड़ी बात यह कि वे पिछले चार घण्टो से अपनी जगह से उठे तक नही थे।

ऐसे व्यक्तियों का बिल देखकर सूची तैयार की गई जिनके साथ एक हजार से ज्यादा का लेन-देन हुआ था। सूची मे ग्यारह नाम थे और ये सभी नाम कार्यकारिणी के सदस्यों के थे।

रोशनलाल जी अपनी घबड़ाहट पर काबू पाकर एक बार फिर लेन-देन पर विचार करने लगे। उनकी स्मृति मे एक नाम [illegible] मोहनलाल का था।

अध्यक्ष को मोहनलाल के पास भेजा गया। दो हजार और एक हजार वाला मुद्दा उठाया गया। प्रत्युत्तर में मोहनलाल ने जेब में रखी कच्चे हिसाब की पर्ची निकाल कर एक बार स्वयं देखी और फिर अध्यक्ष को दे दी। हिसाब मे दो हजार रुपये की बढ़त स्पष्ट थी। कहने की कोई गुंजाइश नही थी।

कार्यकारिणी के शेष दस सदस्यों से भी व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क साधा गया। किन्तु आश्चर्य के अतिरिक्त कहीं से कुछ भी हाथ नही लगा। थक हार कर रात को आठ बजे कार्यकारिणी की बैठक बुलाई गई।

बैठक चालू हुई। अध्यक्ष ने चिन्ता प्रकट करते हुए भूमिका के रूप में छोटा सा भाषण दिया और सदस्यों से समस्या के निदान की दृष्टि से सुझाव मांगे।

एक सदस्य ने विचार रखा, "इसमें रोशनलाल जी की कोई गलती नहीं है। वे शहर के मान्य प्राप्त प्रतिष्ठित व्यापारियों में से हैं। उनकी ईमानदारी पर शक करने का कोई कारण नहीं है। इसलिये मेरा सुझाव है कि इस कमी की भरपाई संघ को अपने कोष से करनी चाहिए।"

तुरन्त दूसरा सदस्य उठा खड़ा हुआ, "यहाँ सवाल रोशनलाल जी का, मेरा या आपका नहीं है। सवाल एक हजार रुपये का है। हम लोग वितरण का काम नम्बर से करते हैं। आज रोशनलाल जी का नम्बर था, कल मेरा होगा कल को अगर फिर ऐसी वारदात हो जाती है तो हम क्या करेंगे? कमी के लिए अगर संघ ही उत्तरदायी है तो गड़बड़ जानबूझ कर भी की जा सकती है। रुपयों का भुगतान करने का अर्थ किसी की ईमानदारी पर अंगुली उठाना नहीं है। संघ को किसी भी स्थिति में इस कमी की पूर्ति नही करनी चाहिए।"

सभी सदस्यो की दृष्टि एक बारगी रोशनलाल जी की तरफ घूम गई। रोशनलाल जी ने अपना झुका हुआ सिर धीरे-धीरे ऊपर उठाया, "बस तो कार्यकारिणी जो फैसला करेगी, मैं उसे मानूंगा। मगर एक बात मैं जरूर कहूंगा। संघ की वितरण व्यवस्था से मुझे कोई निजी लाभ नही होता है। रुपयों की कमी का जिम्मेदार अगर मुझे ठहराया जाता है तो कम से कम मैं तो भविष्य में संघ की ओर से कोई लेन देन नही करूंगा।"

सदस्यों में भुगतान करने और न करने वाली बात पर मतैक्य नही था। तभी एक सदस्य ने मतदान का सुझाव रखा।

अध्यक्ष अब तक चुपचाप बैठा सुन रहा था। मतदान वाली बात सुनते ही वह उठ खड़ा हुआ, "साथियो, हम शायद यह भूल रहे हैं कि एक हजार से ज्यादा

का लेन-देन करने वाला बाहर का कोई आदमी नहीं है। इसका सीधा मतलब यह होता है कि चोर यहीं है। आपस में इस तरह की धोखा-धड़ी की भावना को मतदान कराके या रोशनलाल जी से रुपये वसूल करके हम बढ़ायेंगे ही, घटायेंगे नहीं। इससे अच्छा तो यह होगा कि हम संघ की ओर से होने वाली इस वितरण व्यवस्था को ही बन्द कर दें। अच्छा काम करने से अगर बुराई मिलती है तो क्या जरूरत है उस काम को करते रहने की ?"

अध्यक्ष ने सबके चेहरों की तरफ देखा। वहां एक सवालिया निशान था, "हम चोर को एक अवसर और दे सकते हैं। कल इसी समय हम लोग फिर एकत्रित होंगे। सब लोग एक-एक करके अन्दर वाले कमरे में जायेंगे। हम लोगों में अगर थोड़ी सी भी गैरत बाकी है तो रुपये वहां मिल जाने चाहिए। वरना मैं स्वयं तो संघ की अध्यक्षता से अलग हो ही जाऊंगा, संघ की ओर से चल रही वितरण व्यवस्था भी बन्द हो जायेगी।"

दूसरे दिन फिर बैठक हुई। अध्यक्ष ने सदस्यों की ईमानदारी को एक बार फिर ललकारा और इसके बाद पूर्व निश्चित योजना पर अमल चालू हो गया।

लोग एक-एक करके कमरे में जाते रहे, लौटते रहे। रोशनलाल जी भी अपनी बारी से अन्दर गये। ज्योंही उन्होने कमरे में कदम रखा वे सन्न रह गये। मेज पर एक लिफाफा रखा था। दूर से ही लिफाफे में रखे सौ-सौ के नोट झलक मार रहे थे।

कमरे में आने से पहले रोशनलाल जी को इस दृश्य की बिलकुल भी उम्मीद नहीं थी। अब नोट सामने पाकर वे हतप्रद से खड़े रह गये। जल्दी ही उन्होने स्वयं को सम्भाला। उनका मस्तिष्क तेजी से दौड़ने लगा।

अध्यक्ष की कल की बात के अनुसार उन्हें एक हजार का भुगतान करने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए। क्यों न वे स्वयं इस एक हजार को हथिया लें? रखने वाला कह नहीं सकता कि उसने नोट रख दिये थे। अगर भरपाई करने की नौबत आई तो वे यही हजार रुपया दे देंगे। लोगों की सहानुभूति मुफ्त में मिल जायेगी।

धड़कते हृदय से उन्होने दरवाजे पर घूमते पर्दे की ओर देखा और फिर तेजी से आगे बढ़कर नोटो वाला लिफाफा धोती की अटी मे लगा लिया।

□

विभाजन-रेखा

गठीला हृष्ट-पुष्ट शरीर, उभरी दृढ़ मांसपेशियां, साठ इंची सीना कदम बढ़ाता तो जमीन के पत्थर नीचे धंसने की चेष्टा करते प्रतीत होते। बोलता तो लगता किसी पहाड़ी से पत्थर काटकर लुढ़का दिये गये है। कसावट की यह स्थिति कि बांह में पिन चुभती नही मुडकर टेढी हो जाती। यह था नीरो, जिसे पहली बार देखकर फिल्मों के "आइरन मैन" का चित्र सहसा मेरे सामने वास्तविकता का परिचायक सा आ खड़ा हुआ था।

चीनीयों की तरह झूलती मूंछे, असमिया चेहरा पहली नजर में उसे चीनी परिभाषित करते थे। उसका कद भी चीन के साधारण पुरुष का प्रतिनिधित्व करता था। कैम्पस में सब लोग उसे "चीनी बाबा" कहते, मगर कभी चिढ़ता नही था किसी से। शक्ति सम्पन्न होते हुए भी उसका व्यवहार उच्छृंखलता-विहीन था। अपने आप में मस्त, रात के दो-दो बजे तक इलेक्ट्रिक गिटार बजाना या रेडियो पर अंग्रेजी धुनें सुनना, यही उसकी पसन्द थी, हॉबी थी, मनोरंजन था और जिन्दगी थी। उसे कभी अगर गुस्सा आता था तो उस क्षण जब कोई उसे वाद्य से खेलते हुए या रेडियो पर बजती किसी "फास्ट ट्यून" पर सिर हिला हिलाकर झूमते समय "डिस्टर्ब" करता, उस क्षण उसकी आंखों मे देखने पर लगता ये उसकी आंखे नही हैं, किसी बिल्ली की आंखें हैं। इसके चेहरे को देखने पर लगता यह किसी इन्सान का नहीं, बिफरे शेर का चेहरा है। उसके गले से निकली आवाज को सुनकर लगता—यह आवाज इन्सान के गले से नहीं निकली, बादलों के गले से निकली है।

उसके कमरे में बड़े-बड़े "साउन्ड बाक्स" पडे रहते, जिन्हें वह स्वयं मेहनत कर के तैयार करता था। कभी-कभी रात को किसी "साउन्ड बाक्स" को "पावर स्विच" से कनेक्ट कर के वह इलेक्ट्रिक गिटार पर धुनें बजाता और उसे "फुलपिच" पर छोड देता। हॉस्टल के सब लड़के जानते थे कि इस समय नीरो को कुछ कहना मधुमक्खियों के छत्ते को छेड़ने से कम नही है। इसलिए ऐसे अवसरों पर उसके आसपास के कमरो में रहने वाले लड़के किसी और कमरे मे जाकर पढ़ाई करते, मगर उससे कोई कुछ भी न कहता।

जिस रात नीरो के कमरे का "साउण्ड-बाक्स" फुल पिच पर होता 8–10 पर लगने वाली पहली क्लास मे वह या तो होता नही था और यदि होता भी था

तो बिखरे बाल, हवाई चप्पल, कुर्ता-पेन्ट जिसे पहनकर देर रात तक गिटार बजाते बजाते वह लुढक गया होगा, रूखा सूखा चेहरा ये सब सिद्ध करते होते कि बिस्तर से उठकर कापी हाथ मे लेकर बस किसी तरह वह क्लास में पहुंच गया है।

हॉस्टल के मैस मे प्रायः दो सब्जियां बनती थी जिनमें से एक सब्जी हमेशा आलू की होती थी। इसी तरह कालेज के हर कार्यक्रम में अन्य लोगों के अतिरिक्त स्टेज पर अपने चार-पांच साथियों सहित नीरो जरूर होता। लड़कों ने एक कहावत सी बना ली थी, पोटेटो इज ए मस्ट फोर मैस एण्ड चीनी बाबा इज ए मस्ट फार स्टेज।

जितनी अच्छी इलेक्ट्रिक गिटार नीरो बजाता था, इतनी ही अच्छी मात्रा मे वह खाता था। मैस में ब्रेकफास्ट पर नम्बर आफ स्लाइस की टर्म्स में उसने कभी बात नही की। बैरा जानता था कि उसकी प्लेट में एक के ऊपर एक नौ इंच ऊंची स्लाइस की पर्ते होनी चाहिये। लंच या डिनर कभी भी रोटियो की सख्या में नही नपता था उसका। रोटियों का एक फुट ऊंचा ढेर पहली खेप में उसके सामने आना जरूरी होता था। लड़के नीरो को मैस की ओर जाता देखकर कम से कम आधे घन्टे के लिये रुक जाते थे। यदि मैस में कभी स्पेशल डिश खसाटा बनती थी तो वह अकेला ही पूरी डिश को साफ कर जाता। नीरो के पिता आसाम मे किसी चाय बागान के मालिक थे। हर माह एक तारीख को उसके पास तीन सौ रु० का मनीआर्डर आता, जिसे बांटने की शुरूआत वह पोस्टमैन को पांच रु० देकर करता। उसी शाम वह किन्हीं भी आठ, दस लडकों को अपने साथ लेकर गेलार्ड जाता और सबको खसाटा खिलाता। हॉस्टल और मैस के शुल्क का भुगतान करने के बाद दूसरे दिन उसकी जेब खुले पैसो की भी मोहताज होती।

उसका पुराना क्रम फिर प्रारम्भ हो जाता—छोटी-छोटी चीजें भी मांगकर काम चलाने का क्रम। वह हॉस्टल के किसी न किसी लड़के के पास हड़बडाता सा पहुचता और कहता, मिस्टर सौ, मिस्टर सौ, विल यू गिव मी वन रुपी ? आई विल गिव यू नेक्सट मन्थ।

एक दिन वह मेरे पास आकर पूछने लगा, मिस्टर नागदेव, आप का खाता कैंन्टीन वाले के पास खाता चलता है न ?

मैने कहा, हां चलता तो है, बोलो क्या बात है ?

बात तो कुछ नही, वो तो हम वैसे ही पूछता है। हमको तो बस एक रुपये की जरूरत है। जल्दी ही आपको लौटा देगा।

मैं कई बार उसकी जरूरत की खातिर रुपये चुकाता था। जानता था कि उसकी यह जल्दी कभी नही आयेगी। इसलिये मैंने मुस्कराकर कहा, इस समय तो मेरे पास कुछ भी नहीं है, चीनी बाबा।

बड़े भोलेपन से वह बोला, आपके पास कुछ भी नहीं है तो कोई बात नहीं।

चलेगा, फिर उठता हुआ बोला, आप माइन्ड तो नहीं करेगा अगर हम राजू के पास दो कोकाकोला पीकर आपका खाता में लिखा दें ?

हर शनिवार को दोपहर की बस से नीरो अपने साथ पांच साथियों को लेकर दिल्ली जाता, किसी न किसी होटल मे शनिवार व रविवार की रात म्यूजीकल प्रोग्राम देता। खूब खाता पीता, ऐश करता और बचे हुये पैसो से रम, स्कॉच व्हिस्की या किसी और ब्रांडी की बोतल के साथ रात गुजरती। पीने की दृष्टि से उसमें दो विशेष बातें थी, एक तो वह पीकर कभी डाउन नही होता था और दूसरी, वह घर से आये हुये पैसो से कभी नही पीता था। मैंने एक बार उससे पूछा 'चीनी बाबा, तुम सगीत की दुनियां मे जीने वाले आदमी हो। इलेक्ट्रिक गिटार को अपने इशारों पर नचाते हो। दिल्ली के बड़े-बड़े होटलो मे हर सप्ताह प्रोग्राम देने जाते हो। तुम्हें क्या जरूरत है एम. एस-सी. करने की, तुम म्यूजिक को अपना कैरियर क्यों नहीं बना लेते ?"

उसने जवाब दिया, कैरियर, मिस्टर नागदेव क्या आप समझते हैं हम एम. एस-सी. करने के वास्ते यहां पड़ा है ? म्यूजिक हमारा जान है, हमारा सांस है, म्यूजिक के बिना हम जी नही सकता। म्यूजिक नही तो हम नही, यो दुनियां हमको माफिक नहीं पड़ता बैठता है। इसलिये हम यहां पड़ा है, जहां कोई नही बस लड़का लोग है। थोड़ा सा लड़कियां हैं जरूर पर सारा बदन सफेद कपड़ा मे ढंके वो मिश्र की ममी से ज्यादा कुछ नही लगता। आई लाइक दिस प्लेस वैरी मच, गाता है, बजाता है, नाचता है। कोई कुछ कहना नहीं, कोई आके रोकता नही। बस, इसी-लिये हम यहा पड़ा है।

कैम्पस में हड़ताल हुई। एक सप्ताह बाद भी जब लड़के नही माने तो अधिकारियों ने कालेज और यूनिवर्सिटी बन्द करके हॉस्टल खाली करने के आदेश दे दिये। यूनियन के नेता घबराये हुये, नीरो के पास आये। कहने लगे, चीनी बाबा, प्लीज डू समथिंग।

तटस्थ भाव से उसने प्रश्न किया, आप लोग क्या चाहता है ?"

जनरल सेक्रेटरी ने कहा, लड़के अपने घरो को जाने की तैयारियाँ कर रहे हैं। सबसे पहले तो उन्हें रोकना जरूरी है।

ठीक है, तब लड़का यही रहेगा। हम देखता है कैसे कोई लड़का कैम्पस छोड़ता है। "फिर उसने एक लड़के से कहा, आ त्यागी है न, उसे बुलाओ।"

जब तक हड़ताल चली वह और त्यागी बस स्टैन्ड पर लाठी लिये सुबह से शाम तक खड़े रहते। रेलवे स्टेशन कम से कम 25 मील दूर पड़ता था। इसलिये बाहर जाने का एकमात्र साधन बस ही थी, लड़को ने कैम्पस छोड़ने की कोशिश

ही नही की और की भी तो नीरो द्वारा हर एक बस को रोक कर जांच करते समय वे पकड़े गये और वापस लौट गये। सारा कैम्पस सड़कों पर बिस्तर लगाये पड़ा रहा।

हड़ताल के दौरान सिर्फ एक ही झगड़ा हुआ और वह भी बस के ड्राइवर से। हॉस्टल खाली होने के चौथे दिन सुबह-सुबह नीरो और त्यागी बस स्टेन्ड पर लाठी लिये खड़े थे। आती हुई बस को नीरो ने हाथ देकर रोका, मगर ड्राइवर ने बस रोकी नहीं, इसके विपरीत बस की रफ्तार तीस से चालीस हो गई नीरो की भौंहें तन गयी। वहीं से एक स्कूटर निकल रहा था। उसे रोककर इस तरह से स्कूटर छीनकर नीरो ने स्कूटर को बस के पीछे छोड़ दिया। ड्राइवर को इस बात की कल्पना भी नही थी। अगले स्टाप पर जब बस रुकी तो नीरो ने ड्राइवर का गरेबान पकड़कर उसे नीचे खींच लिया। उस दिन नीरो ने ड्राइवर को इतना धुना कि देखने वालों ने तौबा कर ली। बाद में कन्डक्टर और ड्राइवर मिलकर थाने में गये। थानेदार ने नीरो का हुलिया सुनकर कैम्पस में चालीस की रफ्तार से गाड़ी दौडाने के आरोप में उल्टा उसका चालान कर दिया।

लोहे की छड़ को नीरो अपनी हथेली के कोने से एक ही वार में दो टुकड़े कर देता था। केराटा चाप का वह एक्सपर्ट माना जाता था, केराटा चाप के उसके अभ्यास का प्रभाव उसकी हथेलियों पर था। उसकी हथेली का कोना साधारण व्यक्ति की तरह गोलाई लिये हुये नही था। दीवार के मोडों पर चोट करते उसकी हथेलियों के कोने बिल्कुल चपटे हो गये थे।

नीरो की सनक का भी अजीब ही आलम था। कभी वह अपने कमरे की दीवारें सिगरेट की खाली डिब्बियो से सजाता और घटों बैठा, चेन स्मोकिंग करता रहता। कभी बहुत गहरे रंग के कागज वह दीवार पर चिपका देता और दरवाजे, खिड़कियां बन्द करके, डार्क रूम के से वातावरण मे बैठकर घंटों इलेक्ट्रिक गिटार बजाता। उसकी यह सनक मुझे इतिहास प्रसिद्ध रोम सम्राट् नीरो का चरित्र जीवन्त करती थी। कभी-कभी तो मुझे डर लगने लगता था कि कहीं यह भी अपनी इलेक्ट्रिक गिटार पर कुछ उल्टा सीधा न कर बैठे।

बहुत से लोग एक प्रिज्म मे घिरे रहकर नंगी आंख से प्रकाश की किरणों को सप्त रंगों मे देखने के आदी हो जाते है। लेकिन नीरो को देखकर कई बार मुझे लगता था कि यह आदमी केवल वर्तमान में जीना जानता है। भविष्य अपना विकराल मुंह फाड़े कदम व कदम आगे बढ़ते मगरमच्छ सा नही है इसकी दृष्टि में या शायद इसने भविष्य को लेकर कुछ सोचा नही है और अतीत की परछाईयो ने कभी इसे देखने की चेष्टा नही की। भावुकता की भावनायें, कैरियर में शब्द नीरो की डिक्शनरी मे हैं ही नही शायद।

दूसरे सेमेस्टर की बात है। डा. सुन्दरम पेपर बनाकर अपनी आलमारी मे

बन्द कर के तीन दिन के लिये कहीं बाहर गये थे। डा. सुन्दरम अंक देने मे जितने कठोर प्रोफेसर थे, उतना कठोर ही उनका अनुशासन और लड़को पर रोब भी था। कुछ लड़के नीरो के पास पहुंचे, "चीनी बाबा, डा. सुन्दरम छुट्टी पर गये हैं।"

"हां, गया है। फिर ?"

"पेपर बनाकर वे अपनी आलमारी मे रख गये है।"

"हां, रख गया है, फिर ?"

"चीनी बाबा, डा. सुन्दरम की मार्किग बड़ी स्ट्रिक्ट है न ?"

"हां, है, फिर ?"

"क्या उनकी आलमारी से पेपर बाहर नही आ सकता ?"

नीरो चुप बैठा रहा थोड़ी देर, फिर निर्णायक स्वर मे बोला, "आप सब लोग जाओ, हम देखेगा।"

हम लोगों के लिये बात सचमुच आश्चर्य की थी, मगर वह उसी शाम को पेपर ले आया। डा. सुन्दरम के कमरे के चपरासी को डरा धमकाकर नीरो आल-पारी का ताला मास्टर की से खोलकर, पेपर की नकल करके, उसे वापस आलमारी रख आया।

क्लास के कुछ लड़कों को यह बात पेपर हो जाने के बाद पता लगी। उनमे ..केसी ने कह दिया होगा कि वह डा. सुन्दरम को शिकायत करेगा। नीरो को यह बात पेपर हो जाने के बाद पता लगी तो उसकी प्रतिक्रिया थी, "सबको बोलना, ये अकेला नीरो का मामला नही है। अपन मस्त है। पर क्लास के किसी लड़का का कुछ बिगड़ा तो शिकायत करने वाला पानी से नहीं लाली से नहायेगा।"

उसकी आवाज में गुस्सा नही था। परिहास भी नही था। उसकी आवाज में क विशेप प्रकार का ठंडापन था जिसे अनुभव कर के सभी लड़के सिहर उठे थे। ाइनल परीक्षाओ के दौरान एक रात ऐसी घटना घटी, जिसने मेरे मस्तिष्क पटल पर प्रतिविम्बित नीरो को एक ऐसे रंग से सराबोर कर दिया जिसमें तटस्थता नही, गहरी भावुकता घुली थी। जिसमें, 'ईट, ड्रिक एण्ड बी मैरी' का सिद्धांत नहीं तो, 'लाइफ इज नथिंग बट ए होप आफ टीयर्स,' लिखा था, उदासियो की तूलिका से और जो चमक रहा था अतीत की वार्निश से।

मेरे और नीरो के कमरे के बीच केवल एक कमरे का फासला था। कमरे की तरह उससे बने मेरे सम्बन्ध भी, संकिन्ड लाइन में आते थे, किन्तु उस रात नीरो को इलेक्ट्रिक गिटार से उलझा देखकर मुझ से रहा नही गया। मैंने घड़ी देखी, एक बजने वाला था मैं उठा, कमरा खोलकर बाहर आया। प्राय: सभी

खिड़कियों से प्रकाश की किरणें बाहर आ रही थी पेपर से पहले वाली रात का माहौल हर ओर रेंग रहा था। मैं बढ़कर नीरो के कमरे के पास गया। कपटों को हाथ लगाया तो वे भी मेरी तरह चुपके से आगे सरक गये। मैं कुछ समय तक शान्त खड़ा रहा। नीरो गिटार में मस्त था और मेरे सामने बिल्ली की आँखें, बिफरे शेर का का चेहरा और बादलो के गले से निकली गड़गड़ाहट भटक रही थी। "नीरो ! मैंने धीरे से उसे पुकारा।" मगर उसने सुना नहीं। इलेक्ट्रिक गिटार उस पर हावी था।

"नीरो !" इस बार मेरी आवाज में कुछ जोर था।"

उसने गिटार बजाते-बजाते ही आँखें उठाकर मेरी ओर देखा और फिर सिर झुकाकर पूर्ववत् व्यस्त हो गया।

मैंने दो कदम आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रखा। उसके इलेक्ट्रिक गिटार पर दौड़ते हाथ स्थिर हो गये। एक गर्म मजर से उसने मुझे घूरा।

"नीरो, कल सुबह तुम्हें पेपर देना है।"

उसने कोई जवाब नही दिया। बस मुझे घूरता रहा।

"अब से सिर्फ छः घन्टे बाद परीक्षा है और आज तुमने कुछ भी नही पढ़ा है।" जवाब मे अब भी उसका मुंह नही खुला। अलबत्ता, हू सा करके उसने हाथों को गति दी।

मैंने तभी हाथ आगे बढ़ाया और गिटार पर रख दिया। गिटार विरोध मे बेसुरा चिल्लाया।

"नीरो, आज की रात मैं तुम्हें वक्त बरबाद करने नहीं दूंगा। उठो, पढ़ाई करो। मैं....... ....।"

और वाक्य समाप्त कर पाऊं इससे पहले ही मुझे लगा मेरे गाल पर लोहे का तपता टुकड़ा तड़ाक से आकर चिपक गया है, कमरा घूम रहा है, नीरो घूम रहा है। प्राण शक्ति का पूरा जोर लगाकर मैंने किसी प्रकार स्वयं को गिरने से रोका।

फिर उससे कुछ कहे बिना मैं अपने कमरे मे आकर चारपाई पर लेट गया।

मुझे अपना स्टैमिना चुक गया महसूस हो रहा था। क्रोध और विवशता आमने-सामने खड़े तर्क करते प्रतीत हो रहे थे।

दरवाजे पर आहट हुई। नीरो अन्दर आ रहा था। भय की आड़ी तिरछी लकीरें मेरे सम्मुख आकार ग्रहण करने लगीं। मैंने आँखें बन्द कर लीं।

छोटा सा मौन। फिर नीरो की पाताल से आती आवाज, "हम आपसे माफी मागने आया है।"

मैंने चौंककर आँखें खोल दी। बर्फ का एक बड़ा सा गोला रूई की तरह मन की सतह पर हल्के से आकर गिर गया। मैं उठ बैठा।

"प्राइ डिजर्व वीइंग हेटेड मि. नागदेव। हम न किसी से अच्छा बात सुन सकता है और न किसी से बुरा बात सुन सकता है। आदमी समझने का कैपेसिटी शायद हम में नहीं है। तुम हमको कितना अच्छा बात बोला था। मगर हम.... हम तुमको मारा, तुमको चांटा मारा... ...।" और न जाने कौनसी भावना के वशीभूत जिसे मैं पत्थर मानता था उस नीरो की आँखों से पानी बहने लगा।

चलती फिरती और बोलती तस्वीरें पहली बार देखकर आदमी जितना आश्चर्यान्वित हुआ होगा, मुझे उससे कम आश्चर्य नहीं हुआ। रात्रि के उस एकान्त प्रहर में उसकी आँखें जो आप बीती सुना रही थी, वह मेरे सामने निःशंक, निरंकुश नीरो का नहीं, भावुक नीरो का चित्र खड़ा कर गईं।

कोई तो बात होगी, जिसने नीरो को रुला दिया। निश्चय ही यह मेरे गाल पर बैठे अंगुलियों के निशानों को मिटाने के लिए फूटा स्रोत नहीं था, कुछ और था जो नीरो को याद आ गया। चांटा मारने से सम्बन्धित कोई घटना.......। किसी और गाल पर इसी तरह उभरे अंगुलियों के निशान.......। मुझे खुशी सी हुई सोचकर कि यह पत्थर वर्तमान में ही नहीं अतीत में भी जी सकता है।



हिलती परछाइयां

कुछ नाम ऐसे भी होते हैं जो हमें विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। किसी नाम विशेष से सम्बन्धित व्यक्ति इसलिए कई बार उसके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध मे जानकारी के अभाव मे भी हमें अच्छा लगता है। इसके विपरीत कई बार केवल नाम के आधार पर ही हमें किसी व्यक्ति से घृणा सी होने लगती है। वास्तव में होता यह है कि अतीत में कभी न कभी, किसी न किसी घटना के सन्दर्भ में उस नाम का हमारे मस्तिष्क पर एक विशेष प्रभाव पड़ जाता है। अवसर पाते ही वह प्रभाव जाने या अनजाने मुखरित हो उठता है। हमारे कालेज मे एक लड़की को विद्यार्थी उसकी अनुपस्थिति मे मेनका कहा करते थे। यह उपाधि निःसन्देह उसे उसके सौन्दर्य रूपी सरिता में आपाद मस्तक डूबे मस्तानों ने दी थी। उस लड़की का नाम था सुनीता। अन्य लोगों की बात तो मैं क्या कहूं, स्वयं मैं भी उसके सौन्दर्य से इतना अभिभूत था कि अपने विवाह के समय अपनी पत्नी का नाम सुनीता घोषित कराने के लिए मैंने पण्डित को पाच रुपये रिश्वत दी थी।

इन सब बातों के होते हुए भी एक नाम ऐसा है जिसके सम्बन्ध मे मैं कोई मत नहीं बना पाता हूं। यह निर्णय मुझसे होता ही नहीं है कि इस नाम के व्यक्ति को देखकर मैं उसके सम्बन्ध मे क्या धारणा बनाऊं। क्या सोचूं मैं उस लड़के के विषय मे जिसका नाम दयालसिंह हो ?

दयालसिंह उस दफ्तर में चपरासी है, जहां मैं हैड क्लर्क हूं। किसी के व्यक्तिगत जीवन मे हस्तक्षेप करना मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। इसलिए दयालसिंह के बारे मे मैं बस इतना ही जानता था कि वह हमारे दफ्तर मे चपरासी है।

इस स्थान पर मेरा स्थानान्तरण लगभग एक वर्ष पहले हुआ था। तब एकाएक ही एक घटना ने मेरा ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया। नगर में यूनियन का वार्षिक अधिवेशन था। बड़े पैमाने पर तैयारियां की गई थी। यूनियन के सब सदस्यों ने इक्कीस रुपये चन्दा दिया था। नगर के प्रतिष्ठित व्यापारियों से भी चन्दा लिया गया था। सभी प्रकार की व्यवस्थाएं हम लोग स्वयं ही कर रहे थे। तीन दिन तक अधिवेशन चला। तीसरे दिन सभी प्रतिनिधियो के जुदा होने के बाद यूनियन के स्थानीय सदस्यो की बैठक बुलाई गई।

बैठक में जनरल सेक्रेटरी ने व्यवस्था, आदि की प्रशंसा करते हुए सब लोगों को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया। अधिवेशन के सम्बन्ध में संक्षेप मे बताकर उन्होंने स्थानीय दफ्तर की कठिनाइयों के सम्बन्ध मे हमसे पूछा। कठिनाइयां बताने की बात हम लोगों के बीच उस पत्थर की तरह आकर पड़ी जो मधुमक्खियो के छत्ते पर पड़ कर उन्हें भड़का देता है।

"दफ्तर में पंखे कम हैं, अधिक पंखो की व्यवस्था होनी चाहिए।"

"वाटर कूलर खराब हो गया है, उसे ठीक कराया जाना चाहिए।"

"साहब का व्यवहार ठीक नहीं है, इस सम्बन्ध मे कोई कदम उठाया जाना चाहिए।"

इस प्रकार अनेक प्रश्न और कठिनाइयां मक्खियों की तरह हवा में मंडराने लगी। जनरल सैक्रेट्री सभी बातो का यथोचित उत्तर देते रहे।

तभी सबसे पीछे बैठा दयालसिंह झूमता हुआ उठा। लड़खड़ाती जबान से अपने आपको सम्भालने का प्रयत्न करता हुआ वह बोला, "साहब, अप्रैल का महीना खत्म होने वाला है और हमको अभी तक वर्दियां नही मिली हैं।"

जनरल सैक्रेट्री ने निकट बैठे स्थानीय सैक्रेट्री की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा।

सैक्रेट्री ने बताया, "चपरासियों का कहना है कि वर्दियो के लिए कपड़ा हम खुद पसन्द करेंगे और कोई कपड़ा एक मत से ये लोग चुन नहीं पा रहे हैं। इसलिए देर हो रही है। ये लोग आज ही तय करके कपड़ा बता दें, एक सप्ताह में वर्दियां बन जायेंगी।"

जनरल सैक्रेट्री कुछ कहे इससे पहले ही दयालसिंह गरजा, "कौन कहता है कि हमको कपड़ा पसन्द करना नही आता। कई दुकानें खरीद कर बेच दी हैं हमने"

कुछ लोगो ने उसे पकड़ कर बैठाने की कोशिश की। किन्तु वह बोलता ही रहा, "यूनियन के नाम पर सब अपना पेट भरने मे लगे हुए हैं। क्यों नही बनी हमारी वर्दियाँ आज तक, पूछो तो कहते हैं हफ्ते भर में बन जायेंगी।"

बड़ी मुश्किल से लोग पकड़ कर उसे दूर ले गये।

उस दिन पहली बार मुझे पता लगा कि दयालसिंह शराब पीता है। उसी दिन बातों ही बातों में यह पता भी लगा कि अपने पास पैसा होता है तो ठीक वरना किसी न किसी से वह उधार मांग लेता है। मगर पीता जरूर है। उस रात बहुत देर तक दयालसिंह के बारे मे सोचता रहा। जब मैं आठवी कक्षा में पढ़ता था, हमारे साथ एक लड़का पढ़ता था गुरबचन। लकड़ी की तरह सूखा हुआ तन। कोई हाथ लगा दे तो दूर जा गिरे। उसे हम लोग अगरबत्ती पहलवान कह कर चिढ़ाया करते थे। दयालसिंह के बारे मे सोचते हुए उस दिन मुझे गुरबचन याद आ गया। दयालसिंह, नाम का सिंह दुबला पतला शरीर। शराब पीकर झूमता हुआ जब वह बहक रहा था, कैसी वितृष्णा सी हो आयी थी मुझे। कहते हैं पहले आदमी शराब को पीता है और फिर एक समय ऐसा आता है जब शराब आदमी को पीने लगती है। दयालसिंह को भी अब शराब पी रही है, वह शराब को नही पी रहा है। यह सोचकर उस पर दया भी आयी। उसके विगत जीवन से सहानुभूति सी होने लगी मुझे। उस रात दयालसिंह के बारे मे सोचते-सोचते घृणा और सहानुभूति की रस्सियों पर झूलते हुए न जाने कब मुझे नीद आ गयी।

इस घटना के बाद एक दिन दफ्तर के कैशियर के सौ रुपये हिसाब मे घट गये। जिन लोगों से उस दिन लेन-देन हुआ था उन सबके नाम याद कराके, हम लोगो ने सम्बद्ध लोगो से सम्पर्क किया। सौभाग्य से उन रुपयों का पता लग गया और सम्बन्धित व्यक्ति ने सभी रुपए लौटा भी दिए।

दयालसिंह इस दौड़ धूप में सबसे आगे रहा था। रुपए मिलते ही वह कैशियर से इनाम माँगने लगा। कैशियर यद्यपि सौ रुपए मिल जाने के कारण बहुत खुश था, फिर भी वह इनाम की बात टाल गया। इनाम के नाम पर काम बनता न देख उसने कैशियर से पांच रुपए उधार माँग लिए। मगर कैशियर संभवतः भुक्तभोगी था। उसने, 'मेरे पास पैसे हैं ही नहीं' कह कर उसको फिर टाल दिया। मैं कैशियर के साथ ही खड़ा चुपचाप यह दृश्य देख रहा था। कैशियर की ओर से निराश होकर दयालसिंह ने मुझे कहा, "बड़े बाबू, कैशियर साहब तो कहते हैं कि मेरे पास पैसे है ही नही। आप ही मुझे पांच रुपए दे दीजिए न ! बड़ी जरूरत में हूं। तीन चार दिन में लौटा दूंगा।"

मुझ से जवाब देते नही बना। मैंने जेब में हाथ डालकर पांच रुपए निकाले और उसे देते हुए कहा, "देखो दयालसिंह, तीन चार दिन मे लौटाने की बात भूलना मत।"

रुपए लेकर वह चला गया तो कैशियर ने मुझसे कहा, "बड़े बाबू, आपके पांच रुपए तो शराब में बह गए। वापस मिलने की उम्मीद अब छोड़ दो।"

मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने कैशियर से कहा, "ऐसा कैसे हो सकता है? इतनी देर पीछे पड़कर उसने पांच रुपए लिए हैं। वह भी इस वायदे के साथ कि तीन चार दिन बाद लौटा देगा। कुछ जरूरी काम होगा। इतनी मिन्नत करके लिया हुआ पैसा आदमी शराब पीने में कैसे खर्च कर सकता है?"

मुस्कराकर कैशियर ने जवाब दिया, "बड़े बाबू, विश्वास न होता हो तो घर जाते हुए शराब के ठेके की तरफ से निकल जाना। आंखों से देखकर तो विश्वास करोगे?"

कैशियर की बात की सत्यता परखने के लिए मैं घर जाते समय शराब के ठेके के सामने से होकर निकला। सचमुच ही दयालसिंह शराब पी रहा था। इसके बाद कई दिनों तक एक प्रकार की अपराध भावना मुझे सालती रही। अगर मैं उसे पांच रुपए नहीं देता तो शायद उस दिन वह शराब नहीं पीता, यह बात रह रहकर मुझे कचोटती रही। मुझे अपने पांच रुपए तनख्वाह के दिन कैशियर की कृपा से मिले। दयालसिंह को पांच रुपए काट कर तनख्वाह दी थी उसने।

इसके बाद हर दूसरे-तीसरे महीने दयालसिंह मेरे पास आता। मैं हर बार निश्चय करता कि अगली बार उसे कुछ नहीं दूंगा, चाहे वह कितना भी क्यों न गिड़गिड़ाए। इसके बावजूद हर बार वह मुझसे कुछ न कुछ लेकर ही टलता। मैं उसे खूब डांटता-फटकारता, उसके रुपए मांगने के कारणों को बहाना सिद्ध करता। वह भी हर बार मेरे सामने शराब न पीने का प्रण करता और सौगन्ध खाकर विश्वास दिलाता कि उसे रुपयों की सख्त जरूरत है कि इतनी सख्त जरूरत होते हुए भी वह इन रुपयों की शराब कैसे पी सकता है। फिर भी वह सदैव मुझसे रुपए उधार लेकर शराब ही पीता रहा। हर बार वेतन मिलने वाले दिन कैशियर के सहयोग से मैं उससे अपने रुपये वसूल करता।

एक दिन वह मेरे पास आकर कहने लगा, "बहिन को ससुराल भेजना है। बड़े बाबू, आपने मुझ पर कई अहसान किये हैं। एक बार और अहसान कर दीजिए सिर्फ तीस रुपये चाहिएं। मेरे कुछ रुपये एक दो दिन में आने वाले हैं। मिलते ही लौटा दूंगा।"

इस बार मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। मैंने उसे स्पष्ट रूप से मना कर दिया कि मैं पैसे नहीं दूंगा। वह बहुत देर तक गिड़गिड़ाता रहा और मैं उसे बहाने-

बाजी पर भाषण सुनाता रहा। जब किसी तरह भी मैंने उसकी बात नहीं मानी तो वह बोला, "बड़े बाबू, अगर मैं अपनी बहिन के मुंह से आपको कहलवा दूं तब तो आप मेरी बात पर विश्वास करेंगे।"

मुझे विश्वास था कि यह बहाना बना रहा है। उसको झूठा सिद्ध करने के लिए मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। वह तुरन्त चला गया। संयोगवश उसके जाते ही मेरी तबीयत खराब हो गई और मैं छुट्टी लेकर घर चला आया। मुझे घर पहुंचे आधा घंटा भी नहीं हुआ होगा कि दयालसिंह अपनी बहिन के साथ वहां आ धमका। मैंने उसकी बहिन से दो-चार बातें पूछकर उसे तीस रुपये दे दिए।

दूसरे दिन दफ्तर में पता चला कि पिछली शाम को दयालसिंह ने बेहद शराब पी थी। यह भी पता चला कि वह किसी अन्य महिला को पढ़ाकर मेरे पास लाया था। मुझे उस दिन बहुत क्रोध आया। दयालसिंह को बुलाकर मैंने अपनी भड़ास निकाली। वह मेरी हर बात के जवाब में कुछ न कुछ कहता रहा। हर प्रकार से मुझे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता रहा। परन्तु इस घटना के बाद मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो जाय मैं दयालसिंह को एक पैसा भी नहीं दूंगा। मेरा पैसा इसलिए नहीं है कि वह मुझे बेवकूफ बनाए, शराब पीए और गालियां दे। उसके बाद एक-दो बार फिर वह मेरे पास आया, किन्तु मैंने उसके हर प्रयत्न के बावजूद उसे कुछ नहीं दिया, उसे यथासम्भव तिरस्कृत करके ही वापस भेजा।

एक रविवार को सायंकाल घूमने के लिए तैयार होकर मैं निकलने ही वाला था कि घर पर दयालसिंह आया। उसकी कृतियों के बीज अब तक मेरे अन्तर की गहराइयों में फल-फूलकर घृणा में परिणत हो चुके थे। उसे देखते ही मुझे ऐसा लगा जैसे वातावरण में गन्दगी फैल गयी हो। मैंने रुखाई से उससे आने का कारण पूछा। उसके होंठो पर नया बहाना था। वह कहने लगा, "मेरा बच्चा छत से गिर गया है, बड़े बाबू। डॉक्टर ने उसके लिए सुई लाने को कहा है। मुझे बीस रुपये चाहिए।"

अपनी आंखों में आसू लाते हुए वह आगे बोला, "आज तक हर बार मैंने आपसे झूठ बोला है, आपको धोखा दिया है। हर बार किसी न किसी बहाने से आपसे पैसे लेकर मैंने शराब पी है। किन्तु इस बार मुझ पर विश्वास करिए। मेरे बच्चे को बचा लीजिए।"

इस पर भी जब मैं उसके अभिनय से नहीं पिघला तो उसने जेब से डॉक्टर की पर्ची निकाल कर मुझे दिखानी चाही। मुझे तुरन्त पिछली घटना याद हो आई।

जब वह किसी अन्य महिला को अपनी बहिन बताकर मुझसे 30/– रुपये ले गया था। मैं क्रोधित हो उठा।

"तुम एक नम्बर के मक्कार हो। पिछली बार जब तुम इतना बड़ा नाटक रच सकते थे तो यह पर्ची तो तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं है।"

यह कहकर मैंने बिना पर्ची देखे ही उसका हाथ झटक दिया। वह गिड़गिड़ाता रहा। किन्तु मैं इस बार दृढ़ था। मैं जूते पहन कर बाहर आने लगा तो उसने मेरे पांव पकड़ लिए 'मैं, इस बार झूठ नहीं बोल रहा हूं बड़े बाबू, आप मुझ पर विश्वास कीजिए। आपके बीस रुपये मैं जरूर लौटा दूंगा। बीस रुपये मेरे बच्चे की जान से ज्यादा कीमती नहीं हैं। मैं आपके पांव पड़ता हूं बड़े बाबू, मुझ पर दया कीजिए।"

उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

मगर मेरा मस्तिष्क उसकी बातों पर विश्वास करने को बिल्कुल भी तैयार नहीं था। मैं तेज कदमों से घर से बाहर निकल गया।

दूसरे दिन दफ्तर पहुंचते ही सुना "दयालसिंह का बच्चा कल छत से गिर गया था। डॉक्टर ने इन्जेक्शन लिखा था। दयालसिंह इन्जेक्शन लेकर पहुंचा नहीं और बच्चे की मृत्यु हो गई।"

मैं स्तम्भ सा खड़ा रह गया। मुझे लगा मैं फैलता जा रहा हूं। शरीर दानव रूप धारण कर रहा है। अपने भारी भरकम पांवों को उठाता, विकराल पंजों को फैलाये मैं आगे बढ़ रहा हूं। एक बच्चा सामने आ जाता है।

मैं क्रूरता से उस पर अपना पांव रखने जा रहा हूं कि उसके निकट एक मानवीय आकृति उभरती है। मैं बच्चे को पांव से दबा देता हूं। वातावरण चीत्कारों से भयभीत हो उठता है। ध्यान से देखता हूं, निकट खड़ी दयनीय सी मानवीय आकृति दयालसिंह की है और उसे देखते ही मैं प्रायश्चित की आग मे जलने लगता हूं।



दृष्टिकोण

चवालीस वर्षों का अनुभव अड़तीस वर्षों के अनुभव से टकरा रहा था। दोनों ही अफसर, किन्तु एक में भोगे हुए अकेलेपन के अहसास के साथ जिन्दगी की समझ और दूसरी में अफसरों के अनुकूल अपने अधिकारों के प्रति सजगता की भावना। दोनों में से कोई भी दूसरे की पकड़ में आने को तैयार नहीं। लगभग एक घन्टे की संक्षिप्त सी भेंट। वह भी अकेले में नहीं। विशेषजी के बाबू जी और अनुजी की माताजी व मामाजी की बाधक उपस्थिति। अपने चारों ओर सप्रयास खड़ी की गई पारदर्शी दीवारों को लांघने का अवसर दोनों में से किसी ने भी दूसरे को नहीं दिया।

"मैं एक सप्ताह के लिए सेमीनार में मसूरी जा रही हूँ। कल सुबह मेरे जाने से पहले आप सोच लीजिए। हम लोग भी तब तक निश्चित कर लेंगे।"

बाबू जी के साथ होटल की तरफ लौटते हुए विशेष जी बड़े असमंजस की स्थिति में थे। इस क्षुद्र अवधि में कोई निर्णय लेना बहुत बड़ा खतरा-मोल लेने जैसा था। रात को उन्होंने बाबू जी के सम्मुख प्रस्ताव रखा, "बाबू जी, अगर मैं भी तीन-चार दिनों के लिए मसूरी चला जाऊं तो कैसा रहे?"

और बाबू जी कुछ कहें, इससे पहले ही विशेष जी नीचे उतर आए थे, फोन करने के लिए।

दूसरे दिन सुबह अनु जी मसूरी गईं। तीसरे दिन सुबह विशेष जी ने भी बाबू जी को आगरा के लिए बस में बैठाकर, मसूरी की गाड़ी पकड़ ली।

पकड़ में न आने के प्रयत्न मसूरी में भी उतनी ही सतर्कता से जारी रहे। विशेष जी को लगातार ऐसा लगता कि वे किसी नारी से नहीं, एक आद्योपान्त अफसर से बात कर रहे हैं। अपनी समस्त श्रेष्ठ व्यावहारिकता के बावजूद अनु जी में नारी सुलभ कोमलता उन्हें कहीं भी दिखाई नहीं दी।

चार दिनों में हुई आठ मुलाकातों के बाद विशेष जी ने तय किया कि वे स्वीकृति दे देंगे। असफलता की सभी सम्भावनाओं का मंथन करने के बाद भी, लगता था, चवालीस वर्षों की भटकन को अवलम्बन की सख्त जरूरत थी। नौकरी

के कारण विशेष जी और अनु जी के साथ-साथ रह पाने की संभावना कम थी। कभी-कभी होने वाली भेंट को निभा ले जाना यों भी अपेक्षाकृत आसान लगा विशेष जी को। बढ़ती हुई उम्र के साथ स्थिरता की आशाएं धूमिल भी तो कितनी हो गई थीं ?

स्वीकृति का निश्चय कर लेने के बाद साधारणतः उन्हें हल्का व निश्चिन्त हो जाना चाहिए था। मगर कोई अज्ञात ग्रन्थि उन्हें हल्का होने नहीं दे रही थी। काफी सोचने के बाद भी जब उस ग्रंथि का अता-पता वे नहीं पा सके तो अनु जी से मसूरी में होने वाली अपनी अंतिम भेंट में, कुछ और समय पाने के उद्देश्य से उन्होंने कहा, "आपको एतराज न हो तो मैं अपने आगरा वाले बड़े भाई साहब और भाभी जी को आपसे मिलाना चाहता हूँ।"

"क्यों ?"

"ताकि इस सम्बन्ध में वे अपना मत दे सकें।"

"मान लीजिए, वे इंकार कर देते हैं। तब ?"

बिना हिचके एक गहरी मुस्कान के साथ विशेष जी कह गए थे, "आप मेरी समझ पर इतना अविश्वास क्यों करती हैं ?"

एक लमहे के लिए उन्हें लगा था, यह वाक्य नहीं कहना चाहिए था। किन्तु तुरन्त ही उन्हें अपने वाक्य के प्रस्तुतीकरण पर गर्व हो आया था। पहले की एक और मसूरी की आठ मुलाकातों में किसी तेज तर्रार अफसर की तरह पेश आने वाली अनु जी इस वाक्य का स्पर्श पाकर शरमा गई थीं। अड़तीस वर्षीय परिपक्व अर्द्ध प्रौढ़ महिला के चेहरे पर एकाएक उतर आई लालिमा की झलक पाते ही विशेष जी की संशयी, अज्ञात ग्रंथि स्वयमेव विलीन हो गई थी। अपने निर्णय से संतुष्ट और भावी जीवन की सुस्थिरता के प्रति आश्वस्त वे उसी रात मसूरी से वापस लौट आए थे और इस तरह विज्ञापन से प्रारम्भ हुआ सिलसिला भांवरों में बदल गया था।

विवाहोपरान्त प्रथम रात्रि—

"सुना है, सुहागरात पर पति अपनी पत्नी को कोई ऐसी भेंट देते हैं, जिसे वह जीवन भर सुहागरात की स्मृति स्वरूप अपने पास रख सके।"

"हाँ, सुना तो है।" विशेष जी ने सिगरेट का धुआं पत्नी के मुंह पर मारते हुए शरारत से जवाब दिया था।

"फिर, आप मुझे क्या दे रहे हैं ?"

"जो आप मांगें।"

"जो कुछ भी मांगू, आप दे देंगे ?"

"हां !" चुप होते-होते वे सतर्क हो गए थे, "कम से कम कोशिश तो जरूर करूंगा देने की।"

"कोशिश नहीं, वायदा चाहिए।"

"मेरी पहुंच से बाहर की बात हुई, तो कैसे पूरी करूंगा ?"

"आपकी पहुंच के अन्दर की बात हो, फिर तो पूरी करेंगे ?"

"हा, तो मेरा वायदा रहा। मागो, जो कहोगी, दूंगा।"

विशेष जी के भावुकता भरे चेहरे को तौलती दृष्टि से देखते हुए अनु जी ने धीरे से उनकी अगुलियो मे अटकी सिगरेट निकाल ली, "यह आपकी आखिरी सिगरेट होगी।"

वे मुस्कराए। पत्नी की समझदारी का इतना सुन्दर सबूत, इतनी जल्दी पाकर मुग्धता उनकी आँखों में उतर आई, "मंजूर है।"

इसके साथ ही हाथ बढ़ाकर उन्होने अनु जी को अपनी ओर खींच लिया।

सुबह बिस्तर में से उठते ही विशेष जी ने सिरहाने रखे रेड एण्ड व्हाइट के पैकेट मे से सिगरेट निकाली, मुंह में लगाई और लाइटर जला लिया। किन्तु लाइटर को सिगरेट की ओर ले जाते हुए अचानक उन्हें रात वाली घटना याद आ गई। उन्होने सिगरेट होठों से खींचकर उसे मसला और खिड़की से बाहर फेंक दिया। पत्नी से किए हुए वायदे को ईमानदारी से निभाने का निश्चय उनके चेहरे पर स्पष्ट अंकित था।

शौच जाने से पहले की उनकी दूसरी आवश्यकता चाय भी अभी उन्हे नहीं मिली थी। संभव है, चाय पीने के बाद शौच जाने की स्थिति बन जाए। वे अनु जी को आवाज लगाने का विचार करते यह सोच कर बिस्तर से उठ गए कि कमरे से बाहर निकल कर स्थिति का जायजा लेना बेहतर रहेगा। कमरे से निकलते ही सामने से आती अनु जी पर उनकी दृष्टि पड़ गई।

"गुड मार्निंग," उन्होने कहा।

"गुड मार्निंग।" अनु जी अफसरों के से लापरवाह, अभ्यस्त ढंग से बोलीं। फिर संभवतः उन्हें ध्यान आ गया कि वे दफ्तर के किसी मातहत से नहीं, पति से बात कर रही हैं। क्षतिपूर्ति के लिए चेहरे पर माधुर्य और ताजगी लाकर उन्होने हाथ जोड़ दिये, "हाउ वाज द एक्सपीरियन्स ?"

विशेष जी राजदाराना ढंग से मुस्कराए, "सुबह-सुबह एक्सपीरियन्स की नहीं, चाय की बातें की जाती हैं, मैडम।"

"श्रोह सॉरी।" वे तुरन्त लौट गईं श्रौर जल्दी ही चाय का कप ले आईं।

चाय पीने के बाद विशेष जी लगभग एक घंटे तक प्रतीक्षा करते रहे। धीरे-धीरे उन्हें पेट में गड़बड श्रौर दर्द-सा महसूस होने लगा, किन्तु हाजत की स्थिति नहीं आ पाई।

इस स्थिति में अपने वायदे की ईमानदारी उन्हें बेहद उकताहट भरी बात लगी। उनकी इच्छा हुई, वे सीधे अनु जी के सामने जाकर कह दें, सिगरेट मेरा शौक नहीं है, मेरी आवश्यकता है। रोटी की तरह सिगरेट को भी मैं छोड़ नहीं सकता।

"आप इस तरह गुमसुम क्यों हैं ? उठिए, नहा धोकर नाश्ता कर लीजिए न ?"

"हाँ उठता हूं।" कहते हुए विशेष जी ने तिपाई पर पड़ा अखबार अपनी श्रोर खींच लिया।

"आपने तो उठने की बजाय अखबार पढ़ना चालू कर दिया !" अनु जी ने कहा।

"जरा हेड लाइन्स देख लूं" विशेष जी ने अखबार के इस पार से जवाब दिया।

सिगरेट के बारे मे अनु जी से कुछ कहने का साहस वे जुटा नहीं पा रहे थे। पत्नी द्वारा सुहागरात पर मांगी गई किसी चीज को देने का वायदा करने के बाद वे किस मुंह से मुकरें! वे उनके बारे मे क्या सोचेंगी ? मना भी करें तो ऐसी चीज के लिए कि जो पत्नी के लिए किसी भी तरह महत्वपूर्ण नही है। महत्व-पूर्ण है तो विशेष जी के स्वय के लिए है, उनके स्वास्थ्य के लिए है। पति के हित मे, पत्नी द्वारा लिए गए वायदे को वे इतनी जल्दी तोड़ दें ? ऐसा करने के बाद भविष्य मे वे शायद कभी भी अनु जी का विश्वास प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

अखबार आँखों के सामने था। पेट में करवटें लेता दर्द श्रौर उथल पुथल थी। दिमाग पर अनिर्णय का बोझ था। एकाएक विशेष जी को विचार आया, यदि अखबार की ओट में सिगरेट पी ली जाए तो अनु जी को क्या पता लगेगा ? मगर नहीं। दिखाई चाहे न दे, तम्बाकू की गन्ध तो फैलेगी ही।

इस विचार के बाद विशेष जी ने ऐसे उपाय ढूंढने का प्रयत्न चालू कर दिया, जिनसे पत्नी की जानकारी में आए बिना वे सिगरेट पी सकें। कुछ देर तक

सोचते रहने के बाद उन्होंने धीरे से एक सिगरेट और लाइटर नाइट सूट की जेब में रखा और शौचालय में जाकर दरवाजा बन्द करते ही जल्दी से सिगरेट सुलगाकर उन्होंने एक गहरा कश लिया। धुएं के साथ राहत की एक तीव्रगामी लहर अन्दर तक दौड़ गई। यद्यपि उन्होंने निरापद स्थान ढूंढ़ लिया था फिर भी एक अपराध भावना बार-बार उनके मस्तिष्क में फन उठाकर उपलब्धि को डसने का प्रयत्न करती रही। वे सिगरेट पीते रहे, कसमसाते रहे।

अनु जी ने अपने मिलने जुलने वालों को, दफ्तर के मातहतों, साथी अफसरों को विवाह के उपलक्ष में एक दावत दी थी। दावत में सम्मिलित होने के लिए वे भी छुट्टी लेकर अनु जी के पास आ गए थे। संध्या को आयोजन था। अनु जी व्यवस्था में व्यस्त थीं। दफ्तर के चपरासी सजावट, आदि के कार्यों में जुटे हुए थे।

दोपहर के समय अनु जी को कुछ लोगों को विशेष रूप से निमन्त्रित करने के लिए जाना था। घर पर सभी तैयारियां प्रायः हो चुकी थीं। सब लोग दो-तीन घंटे के लिए इधर उधर हो गए थे।

"ताला सामने मेज पर रखा है। वैसे तो मेरे लौटने से पहले आप कहीं मत जाइएगा। यदि जाएं भी तो ताला जरूर लगाइयेगा। भूलियेगा बिल्कुल नहीं।"

इसके बाद अनु जी गाडी लेकर निकल गईं थीं।

नया स्थान। अकेला घर। विशेष जी जल्दी ही ऊब से गए। अनु जी की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उन्होंने सिगरेट का एक पूरा पैकेट फूंक डाला। उसके खत्म होने के बाद ऊबने का सिलसिला फिर चालू हो गया। उन्होने सोचा, क्यों न आसपास कहीं जाकर पान खा आया जाय। इस विचार के साथ ही वे उठे और ज्यों के त्यों घर से बाहर आ गए। ताला लगाने की बात उनको याद ही नहीं आई।

घर से निकलकर वे आराम से टहलते-टहलते पान की दुकान पर आए। पान खाया। बंधवाया। सिगरेट ली। एकाध गाना सुना और तफरीह से घर लौटे।

ड्राइंग रूम में कदम रखते ही उन्होने देखा, अनु जी आ गई हैं। उनके चेहरे पर क्रोध की स्पष्ट रेखाएं हैं। कोई बात मन के खिलाफ हो गई होगी, उन्होने सोचा।

"काम पूरा कर-आईं मैडम ?" उन्होंने मस्ती से पूछा और कुछ नहीं तो

भी एक मुस्कराहट की अपेक्षा से उन्होंने अनु जी को देखा। मगर मुस्कराहट के स्थान पर एक प्रश्न कोड़े की तरह आकर उनसे लिपट गया।

"मैंने आपसे कहा था कि आप ताला लगाए बिना घर से नहीं जायेंगे, आपको याद है ?"

विशेष जी को लगा था, वे पत्नी के सामने नहीं किसी ऊंचे अफसर के सामने खड़े हैं। वे कोई बहुत बड़ा अपराध कर बैठे हैं जिसकी जवाबतलबी उनसे की जा रही है। अपनी हतप्रभता पर अधिकार करके उन्होने तीखी नजरों से अनु जी को सीधा देखा।

अनु जी को अब तक शायद महसूस हो गया था कि पति से उन्हें इस ढंग से बात नही करनी चाहिए थी। वे सिर नीचे करके चुपचाप दूसरे कमरे में चली गई थीं।

संध्या के आयोजन में वे दोनों अस्वाभाविक न हो जाएं, यह सोचकर विशेष जी अनु जी के पीछे आ गये। अनु जी वार्डरोब खोलकर कुछ देखने का उपक्रम कर रही थी। ठीक पीछे खड़े होकर उनके कन्धों को पकड़कर अपनी ओर घुमाकर विशेष जी कुछ क्षण उन्हें देखते रहे। फिर बात आई गई करने वाले लहजे मे धीरे-धीरे बोले, "बी नॉर्मल। आई'ल बी परटीकुलर अबाउट योर इन्स्ट्रक्शन्स इन फ्यूचर।"

विशेष जी के होंठों पर अपने स्वर की भांति ही बेहद मुलायम मुस्कराहट थी। आँखों में एक ईमानदार आश्वासन की भाषा। अनु जी का चेहरा गम्भीर था। आँखें कुछ पढ़ती और सोचती हुईं। भंगिमा तटस्थ। दोनो कुछ देर तक अपलक एक दूसरे को निहारते रहे। फिर शायद अनु जी को लगा कि विशेष जी अपने कथन के प्रति सचमुच समर्पित हैं। धीरे-धीरे एक भीनी मुस्कान उनके होंठो पर उतर आई।

मुस्कान का अर्थ समझते हुए विशेष जी ने स्नेहिल स्वर मे कहा, "थैंक यू, सो नाइस ऑफ यू मैडम।"

दावत हो गई। विशेष जी दावत के बाद भी तीन दिन अनु जी के साथ रहे। इस घटना ने अपने किसी संदर्भ के साथ पुनरावृत्ति नही की। समय उनके लिए गुनगुनाता रहा और वे प्रसन्नतापूर्वक उसका आनन्द लेते रहे।

हाँ, हल्के फुल्के ढंग से एक बात और हुई थी इन तीन दिनों में। दावत के दूसरे दिन सुबह विशेष जी नित्य कर्म से निवृत्त होकर आराम से बैठे थे कि अनु जी

आईं। उन्होंने विशेष जी के पास बैठते हुए पूछा, "कल जब मैं घर से बाहर गई थी, कोई आया तो नहीं था ?"

विशेष जी ने याद करने की कोशिश करते हुए उत्तर दिया था, "नहीं, कोई भी तो नहीं आया था। क्यों ?"

अनु जी चुप रह गईं थीं। फिर विशेष ने ही पूछा था, "क्यों, कोई विशेष बात है क्या ?"

"हाँ,"

"क्या बात है ?"

"बात सिर्फ यह है कि आपने अपना वायदा पूरा नहीं किया है।"

"कैसा वायदा ?"

अनु जी ने साड़ी के आंचल में से एक हाथ बाहर निकालकर सिगरेट का जला हुआ टोंटा दिखाते हुए कहा, "कल ऐसे टोटे ड्राइंग रूम की ऐश ट्रे में थे और अभी इसे मैं शौचालय से लाई हूँ।"

विशेष जी हड़बड़ा गए थे, "दरअसल मैडम, वो........।"

"कैफियत देने से क्या फायदा ? छोड़िए, कोई बात नही।" वे उठकर चली गईं थीं।

इस घटना के बाद विशेष जी स्वयं को अनु जी के सामने दोषी महसूस करने लगे। अनु जी से कुछ कह पाने का नैतिक साहस वे अब भी जुटा नहीं पा रहे थे। सिगरेट छोड़ देने जितनी दृढ़ता की दृष्टि से तो वे स्वयं को अयोग्य पहले ही मान चुके थे।

विवाह के बाद जल्दी ही अनु जी की मानसिकता का एक और पक्ष विशेष जी के सामने उजागर होने लगा। अनु जी के मायके परिवार में उनकी वृद्ध माताजी, युवक छोटा भाई और किशोरी छोटी बहन ये तीन सदस्य थे। अनु जी उस परिवार के लिए प्रबल आर्थिक अवलम्ब थीं। उनके विवाह के बाद यह अवलम्ब सामान्यतः छूट जाना चाहिए था, किन्तु वैसा हुआ नहीं। भरण-पोषण का पूर्ण दायित्व पूर्ववत् अनु जी ही संभाले रहीं। आर्थिक सुरक्षा के प्रति आश्वस्त उनके भाई ने निश्चिन्त होकर ऐश करना चालू कर दिया था। यहां तक तो विशेष जी को कोई एतराज नहीं था। अनु जी का और उनका वेतन मिलकर ढाई हजार के करीब होते थे। यदि अनु जी इन ढाई हजार रुपयों में से पांच सात सौ रुपया अपने घर पर खर्च कर भी दें तो कोई खास फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन स्थिति विषाक्त धुएं की तरह असह्य होती जा रही थी। भाई के साथ अब छोटी बहन भी पांव तौलने लगी थी। इधर-उधर से कुछ न कुछ सुनने को मिल ही जाता था विशेष जी को। अनु जी ने अपनी ओर से कभी भी इस तथ्य की ओर संकेत नहीं किया। संभव है, संकोच रहा हो कि मायके की निन्दा विशेष जी से कैसे करें। हो सकता है अनु जी उनसे इतना जुड़ ही न पायी हों कि स्वाभाविक ढंग से अपनी और अपने मायके की बात उन्हें बता दें। एक संभावना और भी थी कि अनु जी मस्तिष्क मे इस समस्या का कोई स्थायी हल ढूंढ़ने में लगी हों।

कुछ भी हो, बहरहाल विशेष जी कुछ अरसे से बड़ी तीव्रता के साथ महसूस कर रहे थे कि अनु जी अब स्वाभाविक नहीं होतीं। कुछ खोई-खोई सी रहती हैं। अपने ढग से सूत्र पकड़कर विशेष जी ने इतना तो पक्का कर लिया था कि अनु जी की परेशानी का कारण उनका मायका है। थोड़ा बहुत हिलाने, कोंचने से जब कोई प्रभाव होता दिखाई नहीं दिया तो एक दिन उन्होंने अपने पत्ते अनु जी के सामने खोलकर रख दिए।

लगभग दस मिनट के छोटे-मोटे भाषण को अनु जी ने चुपचाप बिना किसी व्यवधान के सुना। विशेष जी ने अपनी बात समाप्त करते हुए अन्त में कहा, "देखिए मैडम, इतना मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि आपके द्वारा मिली आर्थिक सुरक्षा के कारण ही आपके भाई और बहन आज वैसे नहीं हैं, जैसे वे होने चाहिए थे।"

विशेष जी को अपनी बात के उत्तर में किसी न किसी प्रतिक्रिया की अपेक्षा थी। किन्तु अनु जी को सर्वथा मौन पाकर उन्हें कुछ विचित्र सा लगा। थोड़ा इन्तजार करने के बाद उन्होने कह ही दिया, "क्यों, मेरी बात के जवाब में आप कुछ नही कहेंगी ?"

उत्तर में जो कुछ अनु जी ने कहा उसे सुनकर वे चकरा गए थे, "आप मेरे पति जरूर हैं, किन्तु इस रिश्ते से मेरे व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार आपको बिल्कुल नही मिलता। आपको मैं साफ तौर पर बता देना चाहूंगी कि यह मेरा नितान्त व्यक्तिगत मामला है। इस मामले में मुझे किसी का भी हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं है।"

चोट खाकर संभलने के बाद उन्हें दो बातें तुरन्त चीर गईं थीं। यह अनु जी नहीं उनका अफसर बोल रहा है और वे पति को अपने सामने कुछ भी नहीं समझतीं। अपनी प्रकृति के प्रतिकूल विशेष जी कुछ क्रोधित हो उठे थे, "और यदि इस विषय मे हस्तक्षेप को मैं अपना अधिकार मानूं तो ?"

"मैं आपको छोड़ना नहीं चाहती। आप चाहें तो तलाक ले सकते हैं।" अनु जी निर्णयात्मक लहजे में यह सपाट ढंग से बोल गईं थीं।

विशेष जी अन्दर ही अन्दर बुरी तरह तिलमिला उठे थे। कुछ कड़वी बातें उनकी जीभ तक आकर मुंह का स्वाद बिगाड़ने लगी थीं। पत्नी उन्हें पति नहीं अपना मातहत समझती हैं। वे अपने हर निर्णय को अन्तिम निर्णय मानकर चलती हैं। उनके किसी गलत निर्णय को भी किसी को चुनौती देने का अधिकार है ऐसा वे नहीं मानतीं। घर में पत्नी की अफसरी बर्दाश्त करते चले जाने की जिलाजत वे क्यों उठाएं ?

विशेष जी कुछ कहने ही वाले थे कि विवाह से पहले की स्थिति उनके सामने मुखर हो उठी थी। टूटना, एकाकीपन, विध्वंसात्मक उथल पुथल। उन्हें बरबस यह सब याद आ गया था और याद आ गया था कि स्वभाव की अफसरी को जानते समझते हुए भी उन्होंने अनु जी से विवाह का निर्णय लिया था। आज अनु जी अपने स्वभाव की रौ में यदि कोई अनुचित बात कह रही हैं तो वे मूल कारण से परिचित होते हुए भी तूल क्यों देते हैं सारी स्थिति को ?

वे घर से बाहर आकर टहलने निकल गए थे। उस दिन के बाद विशेष जी ने पत्नी और उनके मायके वाले विषय को कभी नहीं छेड़ा। अनु जी का भाई, उनकी बहन अगर जहन्नुम में भी जाते हैं तो जाएं, उनकी बला से। उनके पीछे विशेष जी अकारण ही अपनी गृहस्थी क्यों खराब करें ? दो-चार महीने में पांच सात दिन साथ रहने का सिलसिला किसी तरह बैठता है। उसे भी ऐसे झगड़ों में बर्बाद किया जाय, इस बात में उन्हें कोई समझदारी नजर नहीं आई।

इस तरह के सोच विचार से मुक्त होकर विशेष जी निश्चिन्त हुए ही थे कि एक और परेशानी आ खड़ी हुई। कुछ समय से पैदल चलने या सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद उनकी सास फूलने लगती थी। अब एकाएक ही यह तकलीफ बढ़ गई। उन्हें महसूस होता, जैसे सांस आ ही नहीं रही है और यदि आ भी रही है तो बहुत कठिनाई से आ रही है। डॉक्टर ने पूर्ण विश्राम की सलाह दी। विशेष जी ने दफ्तर से छुट्टी लेकर बिस्तर पकड़ लिया। अनु जी को अपनी बीमारी का समाचार दे दिया। पत्र मिलते ही अनु जी तुरन्त आ गईं। विशेष जी की बाकायदा परिचर्या प्रारम्भ हो गई।

सास की बीमारी ने विशेष जी के सामने एक और विकट समस्या खड़ी कर दी। सिगरेट अब उनसे पी नहीं जाती थी। सिगरेट पीते ही सांस धौंकनी की तरह चलने लगती थी, खांसी प्रारम्भ हो जाती थी। उन्हें लगने लगा था कि किसी भी क्षण उनका दम घुट जायेगा और वे मर जाएंगे। सिगरेट न पीना अब उनकी मजबूरी हो गई थी।

बीमारी के दौरान सिगरेट न पीने के कारण होती पेट में गड़बड़ और सांस

की तकलीफ से भी ज्यादा उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि इस बहाने उनका धूम्रपान छूट जाएगा। धूम्रपान छूटने का सीधा अर्थ यह निकलता था कि अनु जी को दिया हुआ वायदा पूरा हो गया। उन्होंने परोक्ष में अनु जी से इस बात का जिक्र भी किया। किन्तु इस भय से कि दृढ़ता की कमी के कारण, ठीक होते ही यह लत उन पर फिर हावी न हो जाय, उन्होने किसी प्रकार का दावा नहीं किया।

रोग का प्रकोप कम होने के बाद विशेष जी ने अनु जी को वापस भेज दिया। कुछ दिन और आराम करके वे ठीक हो गए। दफ्तर जाने लगे।

इस बार अपनी इच्छा शक्ति के समुचित प्रयोग से वे छूट गई सिगरेट को दुबारा चालू न करने मे सफल हो गए थे। यद्यपि कभी-कभी उन्हें लगता था कि सिगरेट न पीकर वे उतने खुश नहीं हैं जितने खुश वे चोरी छिपे सिगरेट पी लेने के बावजूद पहले रहा करते थे। फिर भी एक सतोष था कि उन्होंने अनु जी के साथ किया हुआ वायदा पूरा कर लिया है। इस समाचार को उन्होंने अनु जी से अगली भेंट तक के लिये अपने पास सुरक्षित रखा था। अनु जी की प्रसन्नता से चमकती आँखें, संतोष से खिला चेहरा देखने की आतुरता मे इस समाचार को अपने पास रोके रहने में उन्हें अधिक कठिनाई भी नही हुई।

दीपावली और ईद की छुट्टियों के बीच मे एक दिन की छुट्टी ले लेने पर पूरा एक सप्ताह मिल जाता था। विशेष जी को सप्ताह भर लम्बी इन छुट्टियो की बहुत बेसब्री से प्रतीक्षा थी। बीमारी की एकरसता ने शहर और दफ्तर मे भी ऊब भर दी थी। ऊपर से सिगरेट की विलगता। वे परिवर्तन चाहते थे। एक दिन की छुट्टी में सप्ताह भर के लिए परिवर्तन की सुविधा का आकर्षण ऐसी स्थिति मे मोहक होना ही था।

छुट्टियां चालू होते ही वे अनु जी के पास आ गए थे। तीसरे दिन दीपावली थी। दूसरे दिन वे सारा समय घर पर लेटे रहे। सिगरेट छोड़ देने वाली बात उन्होने अब भी अनु जी को नहीं बताई थी।

दीपावली की सुबह बिस्तर से उठते ही वे अनु जी के निकट जा खड़े हुए। अनु जी नहा धोकर गीले बाल पीठ पर बिखेरे बालकनी में खड़ी थी।

"विश यू ए हैप्पी दीवाली, मैडम।"

"सेम टु यू।"

"अगर इजाजत दें तो एक खुशखबरी से आपके दिन की शुरुआत करूं?"

"सुनाइए, खुशखबरी सुनाने में क्यों देर करते हैं ?"

"निवेदन है कि शादी की पहली रात को आपसे किया हुआ वायदा बन्दे ने पूरा कर दिया है।"

"कौन सा वायदा ?"

"गुस्ताखी मुआफ, हमने सिगरेट पीना बिल्कुल छोड़ दिया है।"

"छोड़ा है, तो अपनी बीमारी के कारण। मेरे कहने से छोड़ते तो मैं मानती कि हाँ, आपने अपना वायदा पूरा किया है।"

अनु जी का जवाब सुनकर विशेष जी को लगा कि वे एक भ्रम पाले हुए थे। अनु जी को इस बात से कोई मतलब नहीं था कि सिगरेट छोड़ने से विशेष के स्वास्थ्य में सुधार आयेगा। विशेष की जिन्दगी कुछ दिन, कुछ महीने लम्बी हो जाएगी। उन्हें कोई मतलब नहीं है कि विशेष मर जाएगा या जिन्दा रहेगा। विशेष मर भी गया तो अनु जी यह नहीं कहेगी कि विशेष मर गया है। वे यह कहेगी कि वे विधवा हो गई हैं। विशेष से सिगरेट छोड़ने का आग्रह अनु जी ने इसलिए नहीं किया था कि इससे विशेष को फायदा होगा। यह आग्रह सिर्फ परखने के लिए किया गया होगा कि विशेष अनु जी के कहने से इतना कठिन काम भी कर सकता है या नहीं ?

उन्होंने वहीं खड़े-खड़े नौकर को आवाज देकर अपने पास बुलाया और स्लीपिंग सूट की जेब में से पांच का नोट निकालकर उसे दिया। फिर बड़ी बेफिक्री से बोले, "एक पैकेट रेड एण्ड व्हाइट लाना। जरा जल्दी।"



दूध की लाज

पढ़ कर मैं स्तम्भित सा रह गया। सघन प्रतिभा की लालिमा से मण्डित दो ओजपूर्ण मुखमण्डल मेरे कल्पना चक्षुओं के सम्मुख आकर ठिठक गये। मैं विजड़ित सा उन्हें देखता रहा। घनी मूंछें, भरा हुआ चेहरा, दृढ़ता से चमकती आँखें, सजीला यौवन यह था माधव। क्लीन शेव, दुबला-पतला मगर लम्बा शरीर, अंग-प्रत्यंग से टपकती हुई फुर्ती और सतर्कता, आँखों में लहराता शरारत का स्रोत यह था स्वरूपसिंह। किशोरावस्था तक साथ पढ़े हुए हम घनिष्ठ मित्र अब सदैव के लिए बिछुड़ गये हैं, विश्वास नहीं हो रहा था। मैं स्वयं को भुलावा या धोखा देने की स्थिति में भी नहीं था। समाचार अखबार में थे। घटना का विस्तृत विवरण था। आँखों के सम्मुख प्रत्यक्ष रूप से सम्पादित होती घटनाओं की तरह सब कुछ स्पष्ट था। थोड़ी सी धुंध की गुंजाइश भी कहीं नहीं थी।

दृढ़ता और साहस के साथ कर्त्तव्य मार्ग पर बढ़ने वाले इन जवानों ने क्या इतनी आसानी से मौत के सामने घुटने टेक दिये होंगे? क्या इतनी आसानी से उनके मस्तक मृत्यु के कदमों में झुक गये होंगे? एक बारूदी सुरंग और बस? क्या उनके महत्ती इरादों का क्रूरतापूर्वक दमन करते हुए मौत हिचकिचायी न होगी?

अखबार का और कोई समाचार मुझ से पढा नहीं गया। मैंने वितृष्णा से उसे फैंक दिया। कई विचार मेरे मस्तिष्क में बजते रहे। मैं सिर झुकाए बैठा रहा। कई यादों के नख-शिख उभरते रहे। उनके गूंजते कहकहे मुझे त्रस्त करते रहे। कतिपय कठिन क्षणों में माधव और स्वरूप के चेहरों पर उभरती जिद्द ठोस होकर मेरे सामने आती रही। विषम परिस्थितियों में एक इंच भी न डिगने वाली उनकी इच्छा शक्ति, उनकी सबलता, उनकी आस्था मेरे सामने साकार होती रही। इन सबके पार्श्व में गड़गड़ाहट होती रही। परखचियों में बदलती हुई इन्जिन के टूटे-फूटे अंग हवा में उड़ते रहे। मौत के स्वर अट्टहास करते रहे। वीभत्सता नृत्य करती रही। स्वप्न गिड़गिड़ाते रहे। अरमान सिसकते रहे।

लोकोशेड। रात्रि के प्रायः नौ बजे का समय। इन्चार्ज परेशान। ड्यूटी ड्राइवर गाड़ी ले जाने के लिए तैयार नहीं है। अपने विकराल जबड़ों को फैलाये, सामने खड़ी मौत के मुंह में जाना और वह भी जानते-बूझते हुए। नौकरी पर बने रहने

का लालच उसे पर्याप्त नहीं लगता, इतना बड़ा खतरा मोल लेने के लिए। तीन सौ रुपये की नौकरी और जिन्दगी को एक ही तराजू में कैसे तोला जा सकता है ? जिन्दगी इतनी हल्की तो नहीं है। कौन जाने कौन से क्षण आसमान से बम आकर गाड़ी को उड़ा दें। दिन मे कई-कई बार हवाई हमले हो रहे हैं। शत्रु की दृष्टि संचार व्यवस्था को भंग करने पर लगी हुई है। वह इस प्रकार के काण्ड करके जन-जीवन को मानसिक आघात पहुंचाना चाहता है। सामान्य आदमी के दिमाग में दहशत भर देना चाहता है। ऊपर से जंगी जहाज झपटते हैं। नीचे दुश्मन के जासूस सक्रिय हैं। ऐसे मे किसके पास फालतू है अपनी जान कि गाड़ी ले जाय और एक धमाके साथ अपनी शिनाख्त खो दे।

दूसरा ड्राइवर उपलब्ध नहीं है। सब लाइन पर हैं। एक माधव है जरूर मगर कौन जाने वह जाने के लिए तैयार होगा या नहीं। ड्यूटी उसकी नहीं है। इसलिए उसे मजबूर भी तो नही किया जा सकता। गाड़ी ले जाना जरूरी है। मोर्चे पर लड़ने वाले जवानों के लिए रसद ले जाने का काम कल पर नहीं छोड़ा जा सकता। गाड़ी को भेजना ही होगा। तुरन्त भेजना होगा। ड्यूटी ड्राइवर के विरुद्ध कार्यवाही करके भी तुरन्त कुछ हो नहीं सकता।

माधव को बुलाकर प्रयत्न करना ही होगा। प्रश्न व्यक्तिगत सुरक्षा का नहीं, राष्ट्रीय सुरक्षा का है। प्रश्न यह नही है कि अमुक आदमी जीयेगा या मर जायगा। प्रश्न यह है कि देश जीवित रहेगा या मर जायेगा। बरसती आग में, हर आदमी के नाम की गोली अपने सीने पर झेलने को सन्नद्ध जवान की जरूरत को प्राथमिकता देनी ही होगी। उसे पूरा करना ही होगा। विकल्प कोई नही है।

आदमी भेजा जाता है, माधव को बुलाने के लिए। माधव लोकोशेड के द्वार पर उभरता है कि इन्चार्ज बेफिक्री से आगे बढ़ जाता है उसकी ओर।

"माधव गाडी को ले जाना है।"

"क्यो, ड्यूटी ड्राइवर कहाँ गया ?"

"ड्यूटी ड्राइवर तो यह खड़ा है, मगर अपने देश से अधिक अपनी जान प्यारी है इसे।"

"क्या मतलब ?" आँखें सिकोड़ कर अपनी विशेष अदा से उसे घूरकर देखता हुआ माधव, "तुम गाड़ी ले जाने से डरते हो ? उन सैनिकों को तुम भूखा मार देना चाहते हो जो तुम्हारे लिए प्राण हथेली पर लेकर खन्दकों मे पड़े हैं। लानत है तुम पर। देश अपनी सुरक्षा के लिए लड़ रहा है और तुम जैसे भीरु अपना कर्त्तव्य निभाने के लिए भी तैयार [illegible] हैं ?"

वातावरण ठण्डी सांसें लेता रहा । खामोशी सांय-साय बिखरी रही । "क
बात नहीं, आप चिन्ता मत करिये । इस देश के हर युवक को घुट्टी में गद्दारी न
सिखाई गई है । माधव जायेगा । लगातार दस ट्रिप भी करने पड़े तो करेगा । क
जाना है ?"

"अभी जाना है माधव, इसी वक्त ।"

"ठीक है, तो फिर मैं चला ।"

"शाबास माधव और सुनो इनको भी अपने साथ ले जाना । सैन्ट्रल इन्टे-लीजेन्स ब्यूरो के इन्सपेक्टर स्वरूपसिंह । उस इलाके मे इनकी ड्यूटी लगी है ।"

"मैं इसे जानता हूं शर्मा जी । हम दोनो साथ पढ़े हैं । यह सही सलामत पहुंच जायेगा, आप किसी तरह की फिक्र मत करिये । उल्टे मेरा रास्ता अच्छी तरह कट जायेगा । आ स्वरूप, चलें ।"

मस्त चाल । जिम्मेदार, विश्वासपूर्ण कदम । कर्त्तव्य भाव से परिपूर्ण हृदय । मुझे महसूस हुआ, मेरे सामने ही उन दोनों ने लोकोशैड छोड़ा है । मेरे सामने ही बेफिक्री से झूमते हुए किसी प्रकार की दुश्चिन्ता से बेपरवाह वे आगे बढ़े हैं । मेरे सामने ही वे इन्जिन मे जाकर बैठे हैं । मेरे सामने ही अपने पांव उन्होने मौत के मुंह में रखे हैं । मेरे सामने ही नियति ने कुचक्र रचा है । मेरे सामने ही अमंगल घट रहा है । मैं सब कुछ जानता हूं कि वे बारूदी सुरंगों पर इन्जिन को दौड़ाने जा रहे हैं और मैं उन्हें रोक नहीं रहा हूं । मेरी जानकारी में ही वे दोनों एक क्रूर साजिश के शिकार होने जा रहे हैं और मैं उन्हे बता नहीं रहा हूं । उन्हें इस साजिश से बचाने के लिए प्रत्यक्ष, परोक्ष कोई भी प्रयत्न नहीं कर रहा हूं । उनके हित के लिए कोई शुभकामना तक नहीं कर रहा हूं । बस, मौन खड़ा उन्हे इन्जिन में बैठता देख रहा हूं ।

मेरे देखते ही देखते कोयलों से भरा हुआ इन्जिन छुक-छुक करके आगे बढ़ने लगा है । मेरी नजरों के सामने ही वह प्लेट फार्म छोड़ रहा है और मैं टुकुर-टुकुर ताक रहा हूं । मौन खड़ा देख रहा हूं । उन्हें रोकता क्यों नहीं हूं मैं ? मैं ही क्यों, इतने सारे और लोग भी हैं । इनमें से भी तो कोई आगे आकर इनको हाथ पकड़ कर नहीं कह रहा है कि मत जाओ, मौत के मुंह में मत जाओ कि जिन्दगी बाहें पसारे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, रुक जाओ । सब लोग गूंगे हो गये हैं क्या ?

दिशाएं अन्धकार की गोद में छटपटा रही हैं । इन्जिन की आंखें बन्द हैं । मस्त हाथी की तरह इन्जिन दौड़ा जा रहा है और बेफिक्र महावतों की तरह माधव और स्वरूप कहकहे लगा रहे हैं । हर दुश्चिन्ता को धुएं की तरह उड़ाते जा रहे हैं ।

कुछ दिन पहले मैं, माधव और स्वरूप तीनों योजनानुसार एक स्थान पर मिले थे। स्मृतियों की धूप का हर छोटे से छोटा टुकड़ा हमने उस दिन बटोर लिया था। अपने अतीत को भरसक जीने के प्रयत्न में छेड़छाड़ करते हुए उस दिन मैंने माधव से कहा था, "माधव, शीला अब भी तेरे लिए कुंवारी बैठी है।"

"यहाँ ही कौन से घर बसा लिए हैं यार, पूछ लेना उससे डोली लेकर आ जायें क्या ?" फिर हँसी का वह तूफान उठा कि हम तीनों ही उसमें बह गये। क्योंकि हम तीनों ही जानते थे कि शील की भी शादी हो चुकी है और माधव की भी।

मुझे लगा, अन्धकार को चीरकर आगे बढ़ते इन्जिन में बैठे स्वरूप और माधव में भी यही बात हो रही है। मेरी बजाय स्वरूप उसके कंधों पर हाथ मार कर कह रहा है, "माधव, शीला अब भी तेरे लिये कुंवारी बैठी है।"

और माधव कहकहा लगाता हुआ जवाब दे रहा है, "अरे यार, ले तो चल रहे हैं यह डोली उसके लिए। इससे भी तेज ले चलूं क्या ?"

मैं क्षुब्ध हो उठता हूं यह सोचकर कि क्यों एक मिनिट के लिये भी माधव के मस्तिष्क में यह विचार नहीं आया कि यह शील की डोली नहीं उसकी अपनी अर्थी है, कि किसी स्नेहसिक्त चौखट की ओर बढ़ती हुई नहीं है यह छुक-छुक के तबले से स्वर मिलाती शहनाई, यह बारूदी सुरंग के रूप में अपना विकराल मुंह फाड़कर बैठी हुई मृत्यु के स्वागत में बजती हुई धुन है, कि यह डोली रुकेगी नहीं, चलती रहेगी। अन्तर बस इतना होगा कि कंधे बदल जायेंगे। लोहे के कंधों के स्थान पर इस डोली को मौत का कंधा मिलेगा।

और क्यों स्वरूप ने भी सोचा नहीं कि शील के लिए जाती हुई इस डोली की मंजिल क्या होगी ? कि कहीं डोली का गवाह बनने की बजाय जिन्दगी की आखिरी उड़ान में वह माधव का हमसफर तो नहीं बन जायेगा ?

एक जोरदार धमाका होता है। सब कुछ हिल जाता है। जर्रा-जर्रा विस्थापित होता है। मैं पहचानने की कोशिश करता हूं। यह स्वरूप का हाथ है....... उसकी हथेली के पीछे ओम गुदा था.........वही हथेली जिसे थामकर मैं न जाने कहाँ-कहाँ हो आया हूं.........यह माधव का पांव है.........उसके बांयें पांव में छः अंगुलियां थी.........वही पांव जिसने मेरे पांवों का न जाने कहाँ-कहाँ तक साथ दिया है.....। मैं अपने मित्रों की पहचान खो चुका हूं। क्या मैं अपनी पहचान नहीं खो चुका हूं ? क्या मेरे दिमाग में जिन्दगी का कोई जाना-पहचाना चित्र शेष रह गया है ?

लोग किस तरह अपने जवान बेटों, अपने जवान भाइयों, अपने जवान पतियों की मौत का सदमा सह पाते होंगे ? मैं इतना हतप्रभ रह गया हूं जब कि हमारे बीच खून का कोई रिश्ता नहीं था, उन लोगों की क्या स्थिति हो जाती

होगी जिनके जवान रिश्ते बारूद की सड़ांध में सांस ले रहे होंगे ? कैसी जंग है यह जो देश की भीगती मसों को मौत के मुंह में ठूंस देती है ? कैसी देश भक्ति है यह जो जवानी को आत्म हत्या करने की प्रेरणा देती है ? कैसी खूंखार दुनियां में रह रहे हैं हम जहां मुल्क कातिलों को पालता है, नये-नये जवानों को खून करना सिखाता है।

क्या देश-भक्ति माधव की बूढ़ी मां को उसका बेटा वापस दे सकेगी ? क्या देश-भक्ति माधव की नवेली दुल्हन को उसका सुहाग लाकर दे सकेगी ? क्या देश भक्ति रोटी बनकर उनका पेट भर सकेगी ? कपड़ा बनकर उनके तन ढक सकेगी ?

मुझे लगा, मैं यह सब मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिकों के लिए नहीं सोच रहा हूं। उन सबका तो बस यों ही मुझे ध्यान आ गया था। वस्तुतः मैं सोच माधव और स्वरूप के सन्दर्भ में ही रहा हूं। किसी अजनबी की मृत्यु को देख सुनकर अन्दर से तटस्थ होते हुए भी आदमी 'च-च-च बेचारा' कह देता है। किन्तु जब अपने प्रियजन की मृत्यु होती है तब उसे महसूस होता है कि मृत्यु का दर्द, श्मशान की पीड़ा किसे कहते हैं ? ऐसे क्षणों में ही महसूस होता है कि किसी पर क्या गुजरती है जब उसके किसी अपने की अर्थी उठती है। ऐसे अवसरों पर ही अपने आत्मीय के सन्दर्भ में अन्य मृत व्यक्ति और अपनी पीड़ा, अपनी अनुभूति के सन्दर्भ में अन्य लोगों की मनः स्थिति याद आती है।

विचार आया, माधव और स्वरूप के घरों पर संवेदना और सहानुभूति का एक पत्र मुझे लिखना चाहिए। सक्रिय व नियमित सेना में दायित्व पूर्ण करते हुए सैनिकों के रिश्तेदारों को उनके सिरों पर मंडराती हुई मौत के साये की कल्पना तो होती ही है। किन्तु नागरिक सेवाओं में योगदान देते हुए व्यक्ति के घर के लोगों पर मृत्यु द्वारा इस प्रकार घात लगाकर किया हुआ आक्रमण निश्चय ही वज्र से कम घातक नहीं होता। माधव और स्वरूप के परिवार वालों ने स्वप्न में भी क्या कभी इस तरह की दुर्घटना की कल्पना की होगी ?

मैं कुर्सी को मेज के पास खींचकर बैठ गया। कागज सामने रखकर कलम हाथ में लेकर मैंने लिखना चाहा। लेकिन मुझसे कुछ लिखा नहीं गया। मैं स्वयं ही अन्दर कहीं इतना भीग गया था कि भावनाओं को कलम की नोक पर रखकर कागज पर उतार देना बहुत कष्ट साध्य लगा। दुख और क्षोभ का ठाठें मारता सागर हृदय के इस कोने से लेकर उस कोने तक मुझे मथ रहा था। अपनी इस अवस्था से डरकर किसी मां और किसी विधवा को सांत्वना दे पाने योग्य दूर-दूर तक कुछ मुझे नजर नहीं आ रहा था।

दो दिन बाद साहस बटोरकर स्वयं को सन्तुलित करके किसी तरह मैंने अपनी भावनाओं को शब्द दे दिये, "जानता हूं, अनपेक्षित, असामयिक मृत्यु का

आघात सह पाना आसान नहीं होता। विशेष रूप से तब जब मृत्यु ने उसे फैलाते समय यह विचार भी न किया हो कि उसके इस कृत्य से कुछ लोग प्रसन्नता की परिभाषा भी सुन सकते हैं। फिर भी, अब शोक करने से क्या होगा? मन को धैर्य देकर किसी तरह समझाना ही होगा। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य लिखियेगा।"

एक सप्ताह पश्चात् माधव की माँ का जवाब आया, "तुम्हारा पत्र मिला। मन को बहुत ठेस लगी। माधव पर मुझसे पहले देश का अधिकार था। इसी देश का अन्न खाकर, इसी देश का पानी पीकर, इसी देश की हवा में सांस लेकर उसकी कोंपलें फूटी थी न? यदि उसने भी इन्जिन ले जाने से इन्कार कर दिया होता तो क्या मेरा सिर शर्म से झुक न जाता? यह दुःख का नहीं बेटा, खुशी का मौका है। ऐसी बुरी बातें खुशी के अवसर पर नहीं लिखा करते।"

पत्र पढ़कर मेरी आँखों में आँसू भर आये। मुझे लगा, माधव और स्वरूप की मृत्यु के समाचार पढ़ने के बाद मुझ पर हुई प्रतिक्रिया पश्चात्ताप बन कर मेरी आँखों की चौखट पर गिड़गिड़ा रही है।

यह निडरता, यह साहस, देश के लिये उत्सर्ग हो जाने की यह लगन, इस देश के युवक को माँ के दूध के साथ मिली है। देश की लहलहाती हरियाली को इस देश की माँ का दूध ही है जो मुरझाने नहीं देता। इस देश की माँ का दूध ही उसे स्वतन्त्रता की पताका को गगन की ऊँचाइयों में फहराता देखने के लिए मृत्यु मार्ग का वरण करने की प्रेरणा देता है। शायद माँ के दूध की लाज रखने के लिये ही इस देश का युवक अपने सिर पर कफन बांधने में भी नहीं हिचकिचाता।



लौटते कदम–मंजिल की ओर

'भारत माता की, जय !'

'दीपक जी की, जय !!'

'जीत गया भाई जीत गया, हाथी वाला जीत गया !!!'

जुलूस उनके मकान के सामने से गुजर रहा है, उन्हें लगता है, एक-एक नारा उनके स्नायु तन्तुओं पर, उनके मस्तिष्क पर किसी भारी-भरकम हथौड़े की तरह बज रहा है और पीड़ा की हिलोरें लेता एक सागर उनके अन्दर छटपटा रहा है। पर्वत की छाती में युगों से छिपे लावे की तरह क्रन्दन और आर्तनाद हृदय के कण-कण से फूट पड़ना चाहते हैं।

यह राजनीति क्या है ? शायद एक दुर्दम्य चक्र है जिसमें एक बार फंसने के बाद लाख चाहने पर भी व्यक्ति बाहर निकलने का हर मार्ग अवरुद्ध पाता है। शायद एक प्रकार का चस्का है जो एक बार लग जाने के बाद व्यक्ति का पिंड नहीं छोड़ता। चस्का, हां, चस्का ही तो। शराब हानिकारक होती है, कसैली होती है, इन्सान को नाली में रेंगते कीड़े में बदल देती है, फिर भी क्यों एक बार मुंह लग जाने के बाद आदमी शराब छोड़ने को तैयार नहीं होता ? क्यों हर बार खाई हुई कसमों के जाम जामे-मय से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं ? शायद यह शराब का स्वाद नहीं होता जो व्यक्ति को इतना पसन्द आ जाता है। शायद यह उस सरूर, उस क्षणिक मस्ती का चस्का है जो शराब के प्याले को जिन्दगी का एक अहम हिस्सा मानने को विवश करता है। क्या राजनीति भी एक प्रकार का नशा है ? इस नशे के तहत ही क्या वे अपनी सघर्षरत माँ, अपने शहीद पिता, अपने सिद्धान्त, अपने आदर्श, सबको अपनी कुर्सी के नीचे दबाकर निश्चिन्त हो गये थे ?

धीरे-धीरे उन्हें लगता है, वे पीछे लौटते जा रहे हैं। स्मृति वाहन पच्चीस वर्ष पुराने एक 'माइल स्टोन' से टकराकर रुक जाता है। बी० कॉम० करने के बाद जब उन्होंने जीवन की राहों पर अपने कदम रखे थे, उन्हें लगा था कि रास्ते बहुत फिसलन भरे हैं और उनके कदम उस फिसलन का सामना करने में असमर्थ हैं, कि उनके पाँव बहुत कमजोर हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध से पहले का वह जमाना। बेकारी देश में टांग तोड़कर पड़ी हुई थी। देश के दिल में स्वतन्त्रता की आकांक्षा धधकती

थी, मगर रोटी के अभाव मे पेट मे धधकती ज्वाला उस जोशीली आकांक्षा मे कहीं अधिक सक्षम थी, कहीं अधिक शक्तिशाली थी, कहीं अधिक वजनदार थी। देश की आम जवानी रोजगार की तलाश में यहां-वहां भटकती फिरती थी।

उन दिनों उन्हे अपने कालेज के दिन बहुत याद आते थे, दिन भर दफ्तरों की खाक छानते, झिड़कियां सुनते, निराशा और क्रोध से पीड़ित आकृति लिए जब वे घर लौटते, माँ को द्वार पर अपनी प्रतीक्षा करती पाते। माँ उन्हे देखते ही सब कुछ समझ जाती थी। वे नौकरी के बारे में उनसे कुछ नहीं पूछती थीं, मगर फिर भी वे अन्दर ही अन्दर रोने लगते थे। क्रोध का उफनता लावा हो या निराशा की बर्फीली लहर वे अपनी भावनाओं को जमता महसूस करते, उन्हें लगता उनका अन्तर्मन दर्द की सीमाओं मे जमने लगा है। वे अपने आपको इतना विवश अनुभव करते कि भोजन उनके गले मे अटककर रह जाता। यह विवशता और भी बढ़ जाती थी जब माँ आग्रहपूर्वक कोर तोड़कर स्वयं उनके मुंह में डालने का उपक्रम करती और तब वे माँ की गोद में मुंह छिपाकर हिचकियां लेने लगते थे।

स्मृति जलियांवाला बाग की ओर दौड़ जाती है कि जहां उनके पिता गोली के शिकार हुए थे। राजनीति से कोसों दूर एक मूक निर्लिप्त किन्तु अपने देश से प्रेम करने वाले उनके पिता को जहां शहीदों की श्रेणी मे खड़ा कर दिया गया था। उन्हे आश्चर्य होता है कि इतने वर्षों तक वह करुण कहानी उनके मस्तिष्क में सोती कैसे रह गई?

माँ ने चौका-बर्तन करके उन्हे बड़ा किया और पढ़ाया-लिखाया, मगर उनको भी क्या पता था कि जब उनका बेटा बड़ा हो जाएगा, पढ़ लिख लेगा तो उसका भाग्य भी वही होगा जो देश के लाखों करोड़ों युवको का है। माँ के कष्टों की बात, उनके स्वप्नो के छिन्न-विच्छिन्न अंगों की बात उन दिनों जब वे सोचते, उनका मन करता था कि वे कहीं जाकर डूब मरें, मगर माँ का ख्याल उन्हें ऐसा करने नहीं देता था। इसी तनाव में वे रात्रि व्यतीत करते और सुबह होते ही उस पंछी की तरह घर से बाहर निकल जाते जो अकाल के दिनों में दाना चुगने की लालसा लेकर घोंसला छोड़ता है।

मजबूरियों की जंजीरों में जकड़ा वक्त घिसटता रहा था। विश्वाकाश पर महायुद्ध के बादल मंडराने लगे थे। काम धीरे-धीरे बढ़ने लगा था और काम करने वालो की कमी होनी लगी थी। उन्हे भी रक्षा-मन्त्रालय में 'अकाउन्ट्स क्लर्क' का काम मिला था। जिस दिन उन्हे नियुक्ति-पत्र मिला था, वे इतने खुश हुए थे, इतने खुश हुए थे कि माँ को गोद में उठाकर उन्होंने कई चक्कर खिला दिये थे।

युद्ध के दौरान उन्होंने दफ्तर मे जी तोड़कर काम किया। कभी दिन को

दिन नहीं समझा, रात को रात नहीं माना। उन दिनों उन्हें खातों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता था, उन्हें लगता, जिन्दगी स्वयं एक खाता है। लेजर, जर्नल और कैश बुक की तरह एन्ट्री दर एन्ट्री आगे बढ़ती हुई। दिनचर्या के सभी हिसाबों की जर्नल एन्ट्री पास करने की उनकी आदत हो गई थी। यहां तक कि नौकरी के दो साल बाद जब मां की मृत्यु हुई, श्मशान से शुद्ध पा लौटकर अकेले, सुनसान घर को देखकर उनके मस्तिष्क ने जर्नल एन्ट्री पास की थी।

वैक्यूम अकाउन्ट डी० आर०
डैथ अकाउन्ट डी० आर०
टु मदर'स अकाउन्ट

जर्नल एन्ट्री पास करने की अपनी उस आदत को वे अब तक नहीं छोड़ सके हैं। हर दैनिक घटना की एन्ट्री पास करने की आदत चाहे उन्होंने छोड़ दी हो, किन्तु विशेष घटनाओं का सामना करते समय उनका मस्तिष्क अब भी जर्नल एन्ट्री पास करने से नहीं चूकता।

युद्ध समाप्ति के बाद उनको और उनके साथ आपत्तिकाल में नियुक्त हुए हजारों लोगों को जब नोटिस दिये गये, उनको विरोध-समिति का मन्त्री चुना गया था। बड़े अधिकारियों से मिलकर, कई तर्क देकर उन्होंने अपना पक्ष प्रस्तुत किया था। इस बात का कोई परिणाम निकलता न देखकर उन्होंने आन्दोलन किये, घेराव किये, भूख हड़तालें की। उन्हीं दिनों वे देश के कई नेताओं से मिले। हर सम्भव उपाय से उन्होंने जन-समर्थन प्राप्त किया और अन्त में वे अपने अभियान में सफल हुए।

उन्हें उन क्षणों में अपने हृदय की स्थिति आज भी याद है। अभियान की सफलता के समाचार मिलते ही वे भीड़ से घिर गये थे। उनका गला फूलमालाओं से भर गया था, किन्तु उनके सामने नियुक्ति पत्र मिलने के बाद मां को गोद में उठाकर खिलाते हुए चक्कर घूमने लगे थे। उनकी आंखें नम हो गई थी और उनके मस्तिष्क ने जर्नल एन्ट्री पास की थी।

सक्सेना अकाउन्ट डी० आर०
टु लेबर अकाउन्ट
टु मदर'स अकाउन्ट

उस अभियान के बाद नेताओं से उनका सम्पर्क बढ़ने लगा था। उनके साथ उठते बैठते, घूमते मिलते, एक स्थिति यह आ गई थी कि, दफ्तर में उनका 'एक्सप्लेनेशन काल' हो गया था और जवाब में नौकरी छोड़कर वे देश की स्वतन्त्रता के अभियान में कूद पड़े थे।

धीरे-धीरे उनका यश, प्रसिद्धि सुगन्धित बयार की तरह फैलता गया। लेकिन उन्होंने कभी भी यह नहीं भुलाया कि उनकी मां ने चौका-बर्तन करके उनको

बड़ा किया है, कि गरीबी की विवशताएं क्या होती हैं ? उन दिनों रात्रि के एका प्रहरों में कई बार वे अपना तकिया भिगो देते थे। दिन भर भीड़ के बीच घि रहकर लोगों के दुख बांटते हुए कदम-कदम वे रात्रि की ओर बढ़ते जाते थे फिर सारा दिन बांट-बांट कर पीया हुआ गरल आंसुओं में ढालकर बहा दे और नई सुबह के साथ नई स्फूर्ति लेकर वे बाहर निकल पड़ते।

वे जानते थे कि दर्दमन्द आदमी की बात महानुभूतिपूर्वक सुनना भी दर्द बांट लेना है। यही क्या कम बात है कि किसी ने गरीब को कंगाल कह झिड़का नहीं वरन् गले लगाकर उसकी बात सुनी, कि किसी ने रोगश पर पड़े कराहते व्यक्ति को देखकर नाक-भौं नहीं सिकोड़ी, उसकी से शुश्रूषा की। गरीब पीड़ित, थका-हारा, निराश आदमी मांगता क्या है ? सिर्फ सहानुभूति ही तो। सिर्फ इतना ही तो समझना चाहता वह कि उसका भी किसी के लिए कुछ महत्व है, कि उसका भी कहीं कोई स्थान है।

स्वतन्त्रता मिली। सबको लगा, देश को एक कल्पवृक्ष मिल गया है जो मन चाहा सब कुछ हमें दे देगा। अब भूख, बेकारी, विवशता, गरीबी और इसके पर्याय समझाने के लिए हमारे पास उदाहरण तो क्या शब्द तक नहीं होंगे। जनता के तकाजों पर अनिच्छा होते हुए भी उन्होंने चुनाव लड़ा। चुनावों के दौरान किसी से वोट के लिये कहने नहीं गये। उन्होंने किसी चौराहे पर खड़े होकर भाषण नहीं दिया। बस, अपने नियम के अनुसार दुःख बांटते रहे, प्यार और सहानुभूति बरसाते रहे। चुनाव हारने या जीतने में उन्हें विशेष अन्तर महसूस नहीं होता था। क्योंकि दूसरों के आंसू पीने वाला जानता है कि वह कुछ भी बन जाए उसको करना यही है जो वह करता रहा है, कि आंसू और दर्द इन्तजार करते होंगे कि वह आए और उन्हें बांटे और गले लगाये। वे चुनावों में जीते और उन्हें एक ऐसी जगह पर बैठा दिया गया, जहां से वे समाज का कल्याण और अधिक सुचारू रूप से कर सकते थे। प्रारम्भ में उन्होंने अपने नियमों का भली-भांति पालन भी किया। वे पूर्ववद झोपड़ियों में जाते रहे। जरूरतमन्दों को स्नेह और अपनत्व के साथ अनुदान भी देते रहे, किन्तु जल्दी ही उन्हें लगा कि वे अपने मूल पथ से बहुत दूर आ गये हैं, जहां कोई नहीं बस उनकी तारीफों के पुल बांध कर उनसे कुछ न कुछ झटक लेने की ताक में गिद्ध बसे हुए हैं।

उन्होंने अपने मिलने-जुलने वालों का दायरा घटाना चालू कर दिया था। फिर व्यस्तताएं इतनी बढ़ गईं थीं कि कभी अपने पुराने कार्यक्षेत्र में जाने का विचार आया ही नहीं और यदि आया भी तो उन्होंने इस विचार को टाल दिया। कभी-कभी अपने आपको कोसते और फटकारते भी थे कि वे अब पदलोलुप हो गये हैं, कुर्सी से चिपक गये हैं, कि वे समय निकालकर प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र में क्यों नहीं

उतरते ? फिर पद की मर्यादा का वास्ता देकर वे 'फाल्स सैटिस्फेक्शन' के आवरण में स्वयं को छिपा लेते।

दूसरे चुनावों के समय यद्यपि उनसे ग्राम जनता का कोई आदमी कहने नहीं आया, मगर वे चुनावों में खड़े हुए। कहने को इस बार भी व्यक्तिगत रूप से उन्होंने किसी से ये शब्द नहीं कहे कि मुझे वोट दो, मगर उस क्षेत्र के लोगों को स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व का उनका व्यवहार लौट आया सा महसूस होता। फिजा महक गई थी और चुनाव के दिन तक क्षेत्र में बहती हवा उनकी तूती बजाने लगी थी। इस बार भी वे चुनाव जीते। अपने चातुर्य और सामयिकता पर उनका विश्वास बढ़ गया। अपने क्षेत्र के लोगों की मूर्खता पर उन्हें हँसी भी आई। उस दिन उनके अकाउन्ट्स क्लर्क ने फिर सिर उठाया था।

पापूलेरिटी अकाउन्ट डी० आर०
टु टैक्ट्स अकाउन्ट

पांच वर्षों के लिये वे फिर उसी विभाग के सर्वेसर्वा बना दिये गये थे। इस बार अपने क्षेत्र में जाने का विचार एक बार भी उनके मस्तिष्क में नहीं आया। पद की गरिमा बनाये रखने का अहम् और समय की कमी से जूझती दिनचर्या के रहते यह इतना अस्वाभाविक भी तो नहीं था।

अनुदान स्वीकृति हेतु भेंट लाने वालों को पहले वे झाड़ देते थे। मगर अब उनका पी० ए० हर तरफ की भेंट उनके लिये स्वीकार करता था। प्रत्यक्ष रूप से न सही अप्रत्यक्ष रूप से ही सौगातें उन तक पहुंच जाती थी। बैंक में उनका बैलेंस बढ़ने लगा था।

पिछले चुनावों के बाद भी यद्यपि उन्होंने स्वयं क्षेत्र में जाकर मिलना-जुलना छोड़ दिया था किन्तु प्रत्येक व्यक्ति उनसे बेखटके मिल सकता था। अब हर आने वाले व्यक्ति को एक पर्ची भेजनी होती थी जो पहले चपरासी, फिर पी० ए० और अन्त में यदि आवश्यक समझी गई तो उनके पास आती थी। परिवर्तन की प्रक्रिया अबाध रूप से चलती रही। एक बार फिर आम चुनावों की घोषणा हुई। वे चुनाव लड़े। धुआंधार भाषण दिये। जी खोलकर पैसा खर्च किया। मतदाताओं से हाथ जोड़-जोड़ कर वोट मांगे। बोतलें खुली मगर इस बार अखबारों में मोटे-मोटे अक्षरों में उनकी पराजय की खबर छपी। अपनी पराजय का समाचार सुनने के बाद वे कमरा बन्द करके बैठ गये। इस तरह वे दुनिया से, उसमें रहने वालों से, अपने चुनाव क्षेत्र से, उसके मतदाताओं से तो कट गये किन्तु उनके हृदय का पोर-पोर निराशा और पीड़ा से संत्रस्त छटपटाता रहा। एक एन्ट्री उनके मस्तिष्क को मथती रही।

वेस्टेड अकाउन्ट डी० आर०

टु लाइफ अकाउन्ट

जुलूस दूर निकल गया है। वातावरण को गुंजित करती विभिन्न ध्वनियां लुप्त हो गई हैं। उनकी जीभ खारा-खारा सा कुछ महसूस करती है। ऊपर उठे हाथ गालों पर उतर आये आंसुओं में तर हो जाते हैं। वे जेब से रूमाल निकाल कर आंसू पोंछते हैं और एक ठण्डी आह भरते हैं। उन्हें याद आता है कई वर्षों से वे रोये नहीं हैं। खारे पानी का स्वभाव, स्वरूप और अर्थ सब कुछ वे मानों भूल गये पिछले वर्षों में। जब कांटों की चुभन का दर्द मुझे याद ही नहीं है तो किसी और के पांव में चुभा कांटा देखकर मैं उसके दर्द को किस तरह महसूस कर सकूंगा, वे स्वयं से पूछते हैं। तभी उन्हें लगता है, चुनावों में उनकी पराजय नहीं हुई है। वे विजयी रहे हैं। इस बार का चुनाव आयोजन शायद उन्हें याद दिलाने के लिये किया गया था कि वे क्या हैं और उन्हें कहां जाना है?

इलैक्शन अकाउन्ट

डिफीट अकाउन्ट डी० आर०

टु रीयलाइजेशन अकाउन्ट डी० आर०

वे अस्फुट स्वरों में एण्ट्री पास करते हैं और कई वर्षों के बाद उत्साह से खड़े होकर बाहर निकल जाते हैं, उन गलियों की ओर जहाँ गरीब का दुःख दर्द और रोगी की पीड़ा उनकी सहानुभूति को अतीत की कहानी मान बैठे थे। ☐

स्वनिर्मित लक्ष्मण रेखा

गाड़ी में वैसे भी नींद नहीं आती फिर रात भर बर्थ पर लेटे-लेटे उसके बदन में दर्द होने लगा था। जब नीचे बैठे यात्रियों में से किसी ने कहा कि अगला स्टेशन इलाहाबाद है तो वह उठ कर बैठ गया। पावों के पास रखे बैग की ओर उसने देखा। फिर झुक कर खिडकी की राह बाहर देखने लगा। गाड़ी नैनी स्टेशन पर खड़ी थी। उसके सामने वाली नीचे की बर्थ के पास से गुजरते गलियारे की तरफ वाले कोने में बैठे आदमी से, कंधे पर अंगोछा डाले कोई व्यक्ति पूछताछ कर रहा था। उसने अनुमान लगाया कि यह कोई पंडा होगा। धीरे-धीरे उसे पता लगा कि एक नहीं ऐसे अनेक पंडे पूरी गाड़ी में यात्रियों से पूछताछ करके मालूम करने के प्रयत्न में संलग्न थे कि उनमें से कौन क्रियाकर्म के लिए इलाहाबाद जा रहा है। एक पंडा उसके पास भी आया।

"इलाहाबाद कैसे आना हुआ, बाबू ?"

"अपना घर है यहां।" पूर्व निर्देशित उत्तर उसने दोहरा दिया।

"क्रियाकर्म कराना हो तो बता देना।"

"बताया न, अपना घर है यहां।"

"कौन से मोहल्ले में रहते हो इलाहाबाद में ?"

"आप अपनी बात कहिए ? बोलिए क्या चाहते हैं मुझ से ?"

"बात पूछने मे तो कोई गुनाह नहीं है, बाबू ? वैसे अस्थियां ले कर आए हो तो आओगे तो हमारे पास ही।"

"क्यों फालतू बात बढ़ा रहे हैं ? मैं कोई अस्थियां नहीं लाया हूं अपने साथ, कितनी बार कहूं कि आपको विश्वास आ जाए।"

इसके बाद उसके पास कोई भी नहीं आया। गाड़ी चली और नैनी स्टेशन के प्लेटफार्म को छोड़ कर पुल को पार करती आगे बढ़ने लगी। वह ऊपर ही

बैठा रहा। नीचे बैठे यात्री नैनी स्टेशन से ही जागरूक होकर इलाहाबाद स्टेशन की प्रतीक्षा में निमग्न थे। यों भी सुबह की लालिमा फैल चुकी थी।

जल्दी ही गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन पर आकर रुकी। स्टेशन पर सैकड़ों की तादाद में पंडे शिकार की तलाश में खड़े थे। गाड़ी से उतर कर वह बिना किसी की ओर ध्यान दिए बैग उठा कर 'एग्जिट' की ओर बढ़ गया। कनखियों से उसने देखा, उसके डब्बे से उतरने वाले उन लोगों को जो अपने साथ किसी प्रियजन की अस्थियां लेकर आए थे, पंडों ने घेर लिया था। कुछ को लेकर खींचातानी भी शुरू हो गई थी।

जेब से टिकट निकाल कर उसने टी० सी० को दिया और बरामदे को पार करता, अर्द्ध गोलाकार छत के नीचे फैली सीढ़ियों से उतरता हुआ सड़क पर आ गया। सामने तांगा स्टेण्ड था।

"आइए बाबू जी, बैठिए, कहाँ जाना है ?"

"घाट जाना है, क्या लोगे ?"

"आप से ज्यादा थोड़े ही लेंगे, बाबू जी बैठिए, जो मन में आए दे दीजिएगा।"

"नहीं भाई, बाद की झगड़ेबाजी पसंद नहीं है, साफ-साफ कहो।"

"दो रुपए होंगे, बाबू जी।"

उसे बताया गया था कि तांगा घाट तक एक रुपये में ले जाता है, वह दूसरे तांगे की ओर बढ़ने लगा।

"क्यों, क्या बात हो गई, बाबू जी ? ज़रा सुनिए तो।"

"एक की जगह अगर दो रुपए की बात कहोगे तो/ यही तो करना पड़ेगा।"

"मैंने पहले ही कहा था, जो आपके मन में आए दे दीजिएगा। बाबू जी, बोहनी का टैम है। एक रुपया ही दे दीजिएगा। आइए, बैठिए।"

तांगे वाला चला। मगर तब, जब घाट जाने वाले तीन यात्री उसने और पकड़ लिए।

उसे लगा कि अब घाट अधिक दूर नहीं होगा उसने तांगे वाले से कहा, "मुझे सिंधी धर्मशाला पर उतार देना।"

"अच्छी बात है, बाबू जी ।"

उसका अनुमान गलत नहीं था । एक चौराहा आगे चलने के बाद तांगा गली में मुड़ गया और एक भव्य द्वार के सम्मुख जा कर खड़ा हो गया ।

"यही सिंधी धर्मशाला है, बाबू जी ।"

उसने अपना बैग संभाला, तांगे से उतर कर, तांगे वाले को पैसे देकर धर्मशाला की ओर उन्मुख हुआ । आगे बढ़ा ही था कि एक वृद्ध ने उसका स्वागत करते हुए बैग हाथ से ले लिया । सीढ़ियां चढ़ कर वह ऊपर पहुंचा । वहां एक भीमकाय व्यक्ति विराजमान थे । पूछने लगे, "कहां से आना हुआ है ?"

"जी, जयपुर से आ रहा हूं ।"

"क्रियाकर्म के लिए आए हैं ?"

"जी हां, माता जी का देहांत हो गया है ।"

"कब आए ?"

"बस स्टेशन से आ ही रहा हूं ।"

"क्यों, हमारा कोई आदमी स्टेशन पर नहीं मिला क्या ?"

"पूछ तो कई लोग रहे थे । मगर मैंने किसी की ओर ध्यान नहीं दिया ।"

"हूं ।" वह कुछ क्षण मौन रहे । फिर बोले," देहान्त कब हुआ ?"

"आज पांचवां दिन है ।"

"सिंध में कहां रहते थे ?"

"लारकाना मे ।"

"वही, जहां के सेठ दयालदास सुगनोमल और टोपणदास हैं ?

"जी हां ।"

"गोत्र क्या है ?"

"जी, नागदेव ?"

"आप निवृत्त हो कर चाय पीजिए। फिर हमारा आदमी आपको घाट ले जाएगा। रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई न ?"

"जी नहीं।"

"ठीक है।"

निवृत्त होकर हाथमुंह धोकर वह महाराज के पास पहुंचा। वह निकट खड़े दो तीन नौकरों से रोबदार लहजे में कह रहे थे, "मैंने उन्हें हरामखोरी करने के लिए नौकर नहीं रखा है। जजमान ध्यान दे चाहे न दे उन्हें अपना काम करना चाहिए। शक्ल देख कर आदमी को नहीं पहचाना तो किया ही क्या? आएं तो मेरे पास भेजना। उनको आज की तनख्वाह नहीं मिलेगी। रसोइए से कहो कि उन में से किसी को भी दोपहर का भोजन नहीं देना है।"

अब जा कर उसे मालूम हुआ कि गाडी में आने वाले और स्टेशन पर इन्तजार करने वाले लोग पंडे नहीं, पंडों के दास हैं।

उसके साथ आदमी भेज दिया गया जो घाट पर बने महाराज के झोपड़े तक पहुँचाने के लिए जा रहा था। रास्ते में वह बताता रहा, "बाबू जी, बाईं तरफ एक नया पुल बन रहा है। वह देखिए, उस तरफ बना हुआ पुल पुराना पुल है। ये जो सीढ़िया ऊपर बुर्ज की तरफ जा रही हैं न, यहां खड़े होकर पुलिस वाले कुंभ के समय देखभाल करते है। वह दाहिनी तरफ सरकारी दफ्तर है बाबू जी, जो जमुना जी मे पानी का लेवल नापता है। कुंभ के समय सरकारी दफ्तरों का काम भी यही होता है। यह बड़े हनुमान जी का मन्दिर है बाबू जी, सारे हिन्दुस्तान मे सिर्फ यही जगह है जहाँ हनुमान जी लेटे हुए दिखाए गए हैं। साल में कम से कम एक बार पानी हनुमान जी को जरूर नहलाता है।"

"यहां से दस पैसे के फूल खरीद लीजिए बाबू जी, घाट पर काम आएंगे।"

झोपड़ी पर पहुंच कर उसने वहा बैठे पंडे को नमस्कार किया। उन्होंने भी धर्मशाला में पूछे गए प्रश्नों को दोहराया। अपनी वहियां खोल कर पूर्वजों के प्रयाग आगमन का विवरण सुनाने के बाद उन्होंने उसे सामने बैठाया। अस्थियां सम्मुख रखवाईं और मंत्रोच्चार प्रारम्भ किया। मंत्रोच्चार के बीच एक स्थान पर रुक कर उन्होंने पूछा, "आप एकमुश्त दान का संकल्प लेंगे या प्रत्यक्ष दान का ?"

"कुल मिला कर जो खर्च होना हो, उतने का संकल्प करा लीजिए।

मगर अंक वही दीजिएगा कि हम में से किसी को भी मोलभाव न करना पड़े।"

"अपने जजमानों के साथ हमारा व्यवहार बंधा हुआ है। यों तो आप फूल की एक पंखुड़ी भी उठा कर हमें देंगे तो हम और कुछ नहीं मांगेंगे। फिर भी आप पूरी श्रद्धा के साथ संकल्प ले सकें तो 31/– रुपये का संकल्प लीजिए। नौका के अतिरिक्त सब कुछ इसी में आ जाएगा।"

संकल्प, आदि लेकर, बाल देकर वह नौका में बैठ कर संगमस्थल की ओर चला। गहराइयों में उसने अस्थियाँ विसर्जित कीं और फिर नौका संगम पर बने घाट पर आकर रुकी। वहां उपस्थित पंडितों ने नौका से उतरते ही उसे घेर लिया। किन्तु किसी की ओर ध्यान न देकर वह पानी मे उतर गया।

शीतल जल, सफर की थकावट, पांच दिन से मस्तिष्क पर पड़ा हुआ विषाद का बोझ, सब कुछ उसे संगम पर मिलती गंगा, यमुना और सरस्वती की धाराओं मे प्रवाहित होता महसूस हुआ। वह बहुत देर तक पानी में तैरता रहा। जब निकल कर घाट पर आया तो उसने देखा, चार पांच पंडे एक नंगे बदन व्यक्ति का, जिसके मुंडे सिर से लगता था कि वह भी अस्थि विसर्जन के लिए वहां आया होगा, मजाक उड़ा रहे थे। निकट ही अस्थियों की लाल पोटली हाथों मे लिए एक मल्लाह आलथी पालथी मारे बैठा था।

मल्लाह कह रहा था, "इन हड्डियों को पीस कर पुतवा दूंगा, तब तुम्हें पता लगेगा कि पांच रुपये की क्या कीमती होती है ?"

आंसू रोक कर वह व्यक्ति गिड़गिड़ाया, "मेरे पास पैसे नही है वरना तुम्हें जरूर दे देता। तुम्हारा उपकार मानूंगा मेरी माँ की सद्गति अब तुम्हारे ही हाथ मे है।"

"मैंने जब कहा था कि अस्थियों मे रखा रुपया और पांच रत्नो की पुड़िया मुझे निकाल लेने दो, तुमने इन्कार कर दिया। अब तुम्हे अपनी मां की सद्गति का खयाल आ रहा है। सरकार उपकार करके हमें मुफ्त में लाइसेन्स दे दे तो हम भी तुम पर उपकार कर दें। हर साल लाइसेन्स लेते हैं तब यहा बैठते हैं। मुफ्त में नहीं बैठते हैं यहां।"

एक पंडे ने समझौता कराने के स्वर मे कहा, "भैया, इनका हक तो बनता है, मगर कहते हो गरीब आदमी हू तो पाच के साढ़े चार दे देना। हम इनको मना लेंगे।"

"महाराज, मेरे पास पैसे नही हैं। मुझे गांव वापस भी जाना है। दो सौ

रुपये आप लोगों को दिये हैं। इतना खर्चा करके यहां आया हूं। पांच रुपये और दे देता। मगर मेरे पास हों तो दूं।"

दूसरे पंडे ने मल्लाह को सुना कर कहा, "ठीक है, भाई। अब तुम्हारी इच्छा की बात है। तुम अपनी मां की हड्डियों को दीवार पर पुतवाना ही चाहते हो तो कोई क्या कर सकता है। इससे वैसे आठ आने मैं छुड़वा देता हूं। चार रुपये दो इसको।"

"मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं। मेरे पास गांव पहुंचने भर के पैसे हैं। आप देवता लोग हैं। आप लोग ही दया नहीं दिखायेंगे तो कौन दिखायेगा?"

मल्लाह बोला, "अब उपकार और दया की बात कह रहे हो। उस समय जब हमने कहा था तुम नहीं दोगे तो हम अस्थियों की पोटली गंगा जी में से निकाल कर रुपये और पांच रत्न ले लेंगे, तब तुमने कैसी ठसक के साथ कहा था "निकाल कैसे लोगे? हम अपने हाथों से गहरे पानी में डाल कर आयेंगे" और उडालो गहरे पानी में, जाओ, जाओ।

उस व्यक्ति की आंखों से विवशता के अश्रु गिरने लगे। चेहरा करुण हो उठा। अब उससे देखा नहीं गया। वह उस व्यक्ति के पास गया।

"आप यहां अस्थि विसर्जन के लिये आये थे न?"

"हां बाबू जी।"

"अस्थियां तो आप विसर्जित कर चुके हैं न?"

"हां, कर तो चुका हूं बाबू जी, मगर ....।"

"अगर मगर सोचना अब आपका काम नहीं है। आपके यहां से चले जाने के बाद अगर यह लोग अस्थियां ले जाते हैं तो आप क्या कर लेंगे? आपने अपना काम कर ही दिया है। झंझट में क्यों पड़ते हैं?"

"नहीं बाबू जी, अपनी आंखों के सामने, अपने हाथों से अपनी मां को नर्क में नहीं ढकेल सकता। आप ही मुझे चार रुपये की भीख दे दीजिए। आप ही मुझ पर अहसान कीजिए बाबू जी!"

चारों ओर जोरदार कहकहा गूंजा। एक पंडे की आवाज हवा में तेज हुई, "बाबू, यह धंधा करते हैं तो आदमी को भी पहचानते हैं हम। आपका जादू इस पर नहीं चलेगा।"

उस व्यक्ति की ना समझी, अंध-श्रद्धा और अंध-भक्ति पर से ऐसी वितृष्णा हो आई कि पंडों और मल्लाह का व्यवहार भी उसे इससे कम हेय प्रतीत हुआ।

वह चुपचाप नाव में सवार हो गया ।

दान उचित व्यक्ति को, उचित पात्र को ही देना चाहिए । ये लोग दान के पात्र नही हैं । यहां दुकानों पर धर्म, मोक्ष सभी कुछ बिकता है रुपए पैसो के मूल्य पर । शिक्षित होते हुये भी अपने प्रियजनों की मृत्यु के बाद उनके लिए स्वर्ग में स्थान सुरक्षित कराने के लिए हम इतना खर्च कर देते है । इस महंगाई के समय में अपना पेट काट कर, कर्ज लेकर स्वयं अन्धविश्वास और ना समझी की लक्ष्मण रेखाएं अपने चारों ओर खीच लेते है । इन लक्ष्मण रेखाओ की कैद को फांद जाने का साहस हम कभी नही जुटा पाते ।

प्रयाग से लौटते हुये उसे लगा कि पाप तो छूटे हों या न छूटे हों हा, श्रद्धा और अन्धविश्वास का मैल जरूर धुल गया है संगम में । मां के लिए स्वर्ग मे स्थान सुरक्षित हुआ हो या न हुआ हो मगर स्वनिर्मित लक्ष्मण रेखाओं को गंगा के गहरे जल में बहा आया है वह ।



सवा सेर

हम लोगों को नये शिकार की गंध मिल रही थी। दफ्तर में सहकर्मी कपूर हमारे निशाने की जिद में आ रहा था। मौका चूकना हमने सीखा नहीं था। हमने जाल बिछाना शुरू कर दिया।

हम उसके पास पहुँचे, "कपूर, सगाई करली। न कोई पार्टी न और कुछ। यह क्या चक्कर है ?"

कपूर थोड़ा झेंप गया, "झेंपता क्या है बे ? सगाई की बात से ही झेंप रहा है तो शादी के बाद तेरा क्या हाल होगा ?"

"झेंप कहाँ रहा हूँ ?" कपूर ने और अधिक झेंपते हुये कहा।

"झेंपता भी है और पूछता भी है कि झेंप कहाँ रहा हूँ। बोल, पार्टी कब दे रहा है सगाई की खुशी में ?"

"शादी हो जाये, फिर पार्टी भी हो जायेगी।"

"शादी के बाद कहेगा, बच्चे हो जायें, फिर पार्टी होगी।" हममे से एक ने कहा।

"बच्चे हो जायेंगे तो कहेगा, उनकी शादी हो जाये, फिर होगी पार्टी।" दूसरे ने कहा।

"नहीं, शादी के बाद पार्टी दे दूंगा।" कपूर ने कहा।

"चल, शादी के बाद सही। लेकिन कैसी पार्टी होगी ?"

"जैसी तुम कहोगे।"

"हम कैसी पार्टी के लिये कहेंगे, यह तो तुम जानते ही हो।"

"हाँ, जानता हूँ।"

"वैसी ही पार्टी दोगे न जैसी के लिये हम कहेंगे ?" हम मे से एक ने उसे पक्का किया।

"हां, वैसी ही दूंगा ।" कपूर ने पिंड छुड़ाना चाहा ।

लेकिन पिंड छुड़ाना इतना आसान नहीं था । हमने बात आगे बढ़ाई," "पार्टी शादी के बाद सही, सेम्पल तो अभी हो जाये ।"

"कह तो रहा हूँ, शादी के बाद तुम्हारी मनचाही पार्टी दे दूंगा ।"

"शादी के बाद मनचाही पार्टी, सगाई के बाद चाय भी नहीं ?" एक ने कहा ।

"चाय तो कपूर, तुम्हें पिलानी ही पड़ेगी ।" दूसरे ने कहा ।

थोड़े और बचाव के बाद कपूर ने कहा, "चलो, चाय पी लो ।"

"चाय के बाद पान और सिगरेट तो चलता ही है ।" एक ने फिर छेड़ा ।

"नहीं, चाय के अलावा मेरी तरफ से कुछ नहीं होगा ।"

"होगा कैसे नहीं ? सगाई की है । कोई मज़ाक थोड़े ही किया है ?"

"तुम कुछ भी कहो । चाय से ज्यादा कुछ नहीं होगा ।"

"चल, पहले चाय तो पिला । बाकी फिर देखेंगे ।"

"फिर–विर कुछ नहीं । मैं चाय के अलावा कुछ नहीं पिलाऊंगा ।"

"अच्छा-अच्छा, चल । चाय ही पिला ।"

कपूर चाय से आगे नहीं बढ़ा लेकिन हम आगे बढ़ गये । उससे अश्लील-अश्लील मज़ाक करते रहे । मौके-बेमौके उसे छेड़ते रहे । गाहे-बगाहे चाय पीते रहे । एकाध बार उसके घर भी हो आये । इस तरह उसके विवाह के बाद अपना दावा प्रस्तुत करने योग्य जमीन हमने तैयार करली ।

कपूर की शादी हुई । बरात को आगरे जाना था । इस दौरान तैयार की हुई हमारी ज़मीन ने पहला रंग यह दिखाया कि हमें भी कपूर ने बरात में साथ चलने का पुरजोर आग्रह किया । लेकिन हमारे सोचने का तरीका अलग था । आगरे जाकर कुछ मिलने की उम्मीद तो थी नहीं, फिर तीन दिन खराब करने से क्या फायदा ? हम बहाने बनाकर टाल गये ।

शादी के बाद कपूर वापस लौटा । बधाई के साथ ही हमने उस पर गोल दागा, "तुमने बधाई स्वीकार करली, इसका मतलब शादी तो पुख्ता तौर पर हो गई । अब पार्टी कब हो रही है हमारी ?"

"पार्टी भी हो जायेगी । जल्दी क्या है ?"

"तुम्हें शादी करने की जल्दी थी। हमें पार्टी की जल्दी क्यों नहीं होगी ?"

"शादी करके लौटे हैं। मेहमान चले जायें, ऊपर का कामकाज खत्म हो जाये, गृहस्थी कुछ जम जाये, इसके बाद दे देंगे पार्टी।"

"कोई बात नहीं। जम जाने दो गृहस्थी। लेकिन एक बात याद रखना, पार्टी हम होटल में नहीं लेंगे, घर पर लेंगे और खाना भी भाभीजी के हाथ का बना हुआ खायेंगे।"

"घर पर नहीं होगी पार्टी। बाहर जहां कहो, चल सकते हैं।"

"क्यों, घर पर क्यों नहीं होगी ?" हम चौंके।

"बस, नहीं होगी।"

"कोई कारण भी तो होगा ?"

"कारण कोई नहीं है। लेकिन पार्टी मैं घर पर नहीं दूंगा।"

"क्यों, हम से डर लगता है ?"

"डर-वर तो कोई नहीं लगता। लेकिन पार्टी मैं घर पर नहीं दे सकूंगा।"

बहुत कोशिशों के बाद किसी तरह उसने कारण बताया, "भोजन से पहले तुम लोग पीना भी चाहोगे और पीने का काम घर पर नहीं हो सकेगा।"

"घर पर नहीं पिला सकते हो तो कोई बात नहीं। पीने का काम बाहर कर लेंगे, फिर घर चलकर खाना खा लेंगे। यह तो ठीक है ?"

"नहीं, यह भी ठीक नहीं है। घर चलना है तो पीने का काम रद्द करना पड़ेगा।"

"बाहर पीकर आने में तुम्हें क्या एतराज है ?" एक ने पूछा।

"यार, इसको भाभीजान से डर लगता है।" दूसरे ने कहा।

"इसमें डर की क्या बात है ?" कपूर ने प्रतिप्रश्न किया।

"डर की कोई बात नहीं है तो इतनी परहेज क्यों कर रहे हो ?"

"नई-नई शादी हुई है। पत्नी के मन में हमेशा के लिये सन्देह के बीज मैं नहीं बोना चाहता।"

"सन्देह के कौन से बीज नहीं बोना चाहते हो तुम ?"

'मेरी पत्नी समझेगी, मैं भी आदतन पीने वालों में से हूँ'।

"आदतन न सही। कभी-कभी तो तुम पीते ही हो।"

"अब तो मैं कभी-कभी भी नहीं पीऊंगा।"

"चलो, कोई बात नहीं। खाना हम घर पर ही खा लेंगे। बोलो, क्या खिलाओगे?"

"घर पर तो शाकाहारी भोजन ही बन सकता है।"

"भाभीजान बकरे से भी परे रहती हैं क्या?" हम सबने ठहाका मारा।

"हाँ।" कपूर ने निरपेक्ष भाव से कहा।

"लगता है, शादी लड़की से नहीं, पंडितानी से की है।" एक बार फिर ठहाका लगा।'

कपूर चुप रहा। अन्ततः हमने भोजन सम्बन्धी उसकी शर्तें मानकर दिन तय करा लिया। इसके बाद उसकी पत्नी को केन्द्र बनाकर हमने योजनायें बनानी शुरू कर दीं। कपूर की बातों से हमें लग रहा था कि उसकी पत्नी अनगढ़ मिट्टी की तरह है। सीधी-साधी, ठंडी-गरम हवाओं से दूर। ऐसे चरित्रों को प्रभावित करना कुछ आसान होता है, यदि योजना ठीक हो। कौन क्या कहेगा, कौन क्या जवाब देगा, यह सब तदनुसार हमने निश्चित कर लिया।

कपूर को हमारी कारस्तानियों का बखूबी पता था। इसीलिये वह घर पर भोजन कराने के विरुद्ध था। अन्दर ही अन्दर वह घबड़ा भी रहा था। पीने-बीने की बात तो बहाना मात्र थी, सच यह था कि वह हमारे चंगुल से किसी तरह बच निकलना चाहता था। लेकिन हमारा फन्दा इतना कच्चा कहाँ था कि वह आसानी से बच निकलता। एक प्रकार से यह उसकी मजबूरी थी कि वह हमें घर बुलाकर भोजन करा रहा था।

निश्चित समय सज-धजकर, इत्र, आदि लगाकर हम लोग कपूर के घर पहुंचे। दुआ सलाम हुई, कपूर से इधर उधर की बातें हुईं। लेकिन एक बात हम लगातार महसूस करते रहे, हमारी उपस्थिति से जो तनाव उसके चेहरे पर होना चाहिये था, वह नहीं था सो नहीं था लेकिन बेफिक्री और प्रसन्नता की एक स्पष्ट झलक उसके हाव-भाव और चेहरे पर थी। यह भाव हमें बड़ा विचित्र लग रहा था। किन्तु इसकी विशेष परवाह करने का क्योंकि कोई कारण नहीं था इसलिये हमने कपूर से उसकी खुशी का कारण जानने की कोई कोशिश नहीं की।

हमें कपूर के पास आये पन्द्रह-बीस मिनट हो गये थे। लेकिन उसकी पत्नी अब तक नजर नहीं आ रही थी। हमने इस स्थिति को समाप्त करना चाहा, "कपूर! तुम्हारी पत्नी का क्या नाम है यार?"

"रजनी।"

"फिर तो रोशनियां बुझानी पड़ेंगी। सूरज से कहना पड़ेगा-तशरीफ ले जाइये।"

"क्यों?" कपूर चौंका।

"क्योंकि इतनी रोशनी के होते हुये दिन का आभास होता है और दिन व रजनी एक साथ एक जगह आ नहीं सकते।"

"लेकिन यह रजनी आ सकती है।" कपूर ने जिन्दादिली से हँसते हुये कहा।

"कब आयेगी? इतनी देर हो गई है हम लोगों को आये हुये।"

"वह तुम्हारे आतिथ्य की तैयारी कर रही है।"

"यही हम लोगों का आतिथ्य है क्या? पहले पता होता तो घर पर पार्टी के लिये जिद नहीं करते।"

"तुम लोगों के लिये खाना बना रही है। बनते ही आ जायेगी।"

"कपूर, तुम वाहियात बातें मत किया करो। खाना बना रही है तुम्हारी पत्नी इसका मतलब तुम मुलाकात भी नहीं करा सकते?"

"देखता हूँ। हो सकता है उसने अब तक खाना बना ही लिया हो।" हम शरारत से एक दूसरे की तरफ देखकर आँख मारते और इशारे करते रहे। हम सबके होठों पर एक कुटिल मुस्कराहट थी।

कपूर जल्दी ही लौटा, "खाना बन गया है। वह अभी आ रही है।"

लगभग दस मिनट का अन्तराल रहा होगा लेकिन तोबा, कितने लम्बे थे ये दस मिनट। कपूर की पत्नी आई। मंझला कद। तीखे नयन नक्श। चेहरे पर गजब का भोलापन। नमस्ते करके शालीनतापूर्वक वह एक ओर बैठ गई। कपूर ने परिचय कराया।

"कैसा लगा यह शहर आपको?"

"ठीक है।"

"आप तो आगरा मे रही हैं शुरू से?"

"जी हाँ।"

"पढ़ाई-वढ़ाई भी वहीं हुई ?"

"जी हाँ।"

"आगरा की कौन सी चीज सबसे ज्यादा मशहूर है ?" प्रश्न बड़ा मासूम था लेकिन पूछने का तरीका, प्रश्नकर्त्ता के चेहरे के भाव कहते थे कि प्रश्न कुछ और ही है।

कपूर की पत्नी की मुद्रा से लगा वह आशय समझ गई है। वह मुस्कराई और फिर बिना हिचकिचाये बोली, "औरों के लिये ताजमहल, आपके लिये चमड़े की चप्पल।"

जिस सधे हुए लहजे से जवाब आया था उसने हम सबको हक्का-बक्का कर दिया। क्या यह वही महिला है जिसे हम सीधी-सादी, भोली भाली, अनपढ़ मिट्टी जैसी समझ रहे थे ? हम झटके से उबर भी नहीं पाये थे कि वह 'अभी आई,' कहकर अन्दर चली गई।

शायद उसके अन्दर जाने और बाहर निकलने में कोई अन्तर नहीं था। वह वापस लौटी तो उसके हाथ में एक थाली थी। थाली में दूर से ही रोली, राखियाँ, मिठाई और नारियल नजर आ रहे थे। थाली मेज पर रखकर हम में से किसी को अवसर दिये बिना उसने एक राखी उठाई और निकटतम बैठे हमारे मित्र की कलाई पकड़ कर बांधनी शुरू कर दी।

इस एकाएक हुए हमले से वह घबड़ा गया। साथ ही हाथ खींचकर हकलाता हुआ बोला, "यह..........यह क्या कर रही हैं आप ?"

"राखी बांध रही हूँ, और क्या कर रही हूँ।"

इस दौरान दरवाजे पर दो तीन अन्य महिलाएं पता नहीं कहाँ से आकर खड़ी हो गई थीं। कपूर की पत्नी की बात सुनकर वे ठहाका मार कर जोर से हँसी। हमें काटो तो खून नहीं।

उस दिन हमने कपूर के घर खाना तो बेशक खाया लेकिन कैसे खाया, स्वाद आया या नहीं, हमारा वश चलता तो हम क्या करते, ये सवाल हम से न पूछे जायें तो अच्छा है। उस दिन के बाद हम सबने कपूर को न जाने कितनी बार चाय, लस्सी पिलाई है ताकि वह सहकर्मियों से इस घटना का जिक्र न करे। ऐसी नीयत से किनाराकशी करने का प्रण तो खैर हमने कपूर का घर छोड़ने से पहले ही कर लिया था।

☒

करवट

मैं सम्भल-सम्भल कर चलने वाला आदमी हूं। इस छोटी सी उम्र में ठोकरें भी बहुत खाई हैं इसलिए सम्भल कर चलने वाली बात गांठ बांध ली है। ठोकरें क्या खाई हैं, किसकी वजह से खाई हैं, इसकी तफसील मे नहीं जाऊंगा। लेकिन भाई साहब का इस दृष्टि से जो किरदार रहा है वह मैं शायद ही कभी भूल पाऊं। इन ठोकरों की जड़ में पैसा ही होता है, पैसा ही रहा है। अब तो खैर थोड़ा-थोड़ा करके कुछ पैसा भी जोड़ लिया है। इसलिए उम्मीद है किसी का मुंह देखने की नौबत अब नहीं आयेगी।

भाई साहब ने मेरे साथ चाहे जैसा भी सलूक किया हो लेकिन मैं कष्ट के समय कभी भी स्वयं को उनसे दूर नहीं रख पाया हूं। यद्यपि भाई साहब और भाभीजी दोनों सरकारी नौकर हैं किन्तु सम्भल कर चलना उन्होंने कभी सीखा नहीं। जितना पैसा आता है बराबर कर देते हैं। भाभीजी साड़ियां और सौन्दर्य प्रसाधन खरीद कर और भाई साहब शराब पीकर। इसलिए उनकी गृहस्थी में आपातकाल आते ही रहते हैं। ऐसे में पता नहीं कैसे मुझ मे संरक्षक प्रवृत्ति जाग उठती है। रुपया-पैसा, सिफारिश या व्यक्तिगत उपस्थिति, जैसा भी आवश्यक होता है मैं करने पर उतारू हो जाता हूं।

पिछले दिनों भाई साहब का पत्र आया था। उन्होंने लिखा था, "चित्रा अब सयानी हो गई है। उसके लिए लड़का देखना है। एक अच्छे लड़के की खबर मिली है। तहकीकात मैंने कर ली है। लेकिन देखने तभी जायेंगे जब तुम आओगे। लड़का अगर पसन्द आता है तो सगाई और फिर शादी के लिए रुपयों का भी इन्तजाम करना होगा।"

पत्र पाते ही मेरे संरक्षकत्व ने सिर उठाना शुरू कर दिया। हमेशा की तरह पत्नी ने मेरी सहानुभूतिपरक भावनाओं को कुचलने की पूरी कोशिश की। लेकिन सब प्रतिरोधो के बावजूद मैं भाई साहब के पत्र के अनुसार उनके पास पहुंच गया।

भाई साहब के पास मैं पहुंच तो गया लेकिन वहाँ के हालात देख कर मेरे लिए मानसिक सन्तुलन बनाये रखना बड़ा मुश्किल हो गया। शराब पीकर जिस तरह भाई साहब भाभीजी को मारते थे वह बड़ी त्रासदायक स्थिति थी। निजी रूप से मेरी स्थिति को उन्होंने साप छछून्दर जैसा बना दिया था। दोनों चाहते थे कि मैं उनके पक्ष में प्रतिपक्षी से लड़ूं। भाभीजी चाहती थीं, मैं भाई साहब से कहूं कि वे शराब पीना बन्द कर दें नहीं तो उनकी लड़की के विवाह के लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं दूंगा। दूसरी तरफ भाई साहब की इच्छा थी कि मैं भाभीजी से उनकी सिफारिश करूं कि वे भाई साहब से जुबान न लड़ाया करें और भाई साहब जब चाहें तब उन्हें पैसे दे दें।

मैं मन से चाहता था कि यह सिलसिला किसी तरह टूटे। लेकिन बीच में आने या कहा सुनी करने से कोई लाभ होने की आशा मुझे नहीं थी। इसलिए मैं चुप बना रहा।

उस रात भाई साहब सो रहे थे। भाभी मुझे अपनी व्यथा कथा सुना रही थी, "अब तो ये बात-बात मे मारपीट पर उतर आते हैं। सच कहूं तो अब मैं इनको अपने लिए जिन्दा मानती ही नही हूं। जिस दिन शराब पीकर इन्होंने मुझ पर हाथ उठाया था, मेरे लिए तो यह उसी दिन मर गये थे।"

मैंने इशारा किया, "जरा धीरे बोलिये। हो सकता है भाई साहब जाग रहे हों।"

भाभी लपक कर और भी जोर से बोलीं, "क्यों बोलूं धीरे, मैं कोई डरती हूं इनसे? मैं तो अब भी कहती हूं, मेरी तरफ से यह कल मरते हैं उसके आज मरें। मुझे तो खुशी होगी।"

भाई साहब सचमुच जाग रहे थे। वे झपट कर उठे और छलांग लगाकर भाभीजी के सामने आ गये। लात, घूंसे चलाते हुए वे कहे जा रहे थे, "ले, और खुश हो कुतिया, मुझे मारने चली है!"

भाई साहब मारपीट करते हुए उन्हें गालियाँ सुना रहे थे और भाभीजी चीख चीख कर भाई साहब को कोस रही थी। अब तक जो कुछ होता आया था मैं आगा पीछा सोचकर उसे बर्दाश्त करता रहा था। अब यह हंगामा मुझ से सहन नही हो सकता। चीख-चिल्लाहट और गाली-गलौज आसमान छू रही थी। भाई साहब भाभीजी गुत्थम-गुत्था हो रहे थे।

मैंने आगे बढ़कर उन्हें अलग किया। इस प्रक्रिया में दो-चार हाथ मुझ पर भी पड़े लेकिन उनको लेकर बुरा मानने का न अवसर था और न कारण। गुस्सा मुझे आ ही रहा था और कुछ नकली गुस्सा उसमें शामिल करते हुए मैंने भाई साहब से कहा, "बन्द करिये यह तमाशा, बहुत हो चुका।"

भाई साहब पर गुस्सा और नशा दोनों सवार थे। मेरे द्वारा उत्पन्न व्यवधान उनसे सहन नहीं हुआ। मुझे परे हटाते हुए वे चिल्लाये, "हट जाओ, मुझे मत रोको।"

मैंने गम्भीर होकर कहा, "आप अगर यही करना चाहते हैं तो करिये। मैं वापस जाता हूं।"

मुझे आशा थी कि वापस जाने की मेरी धमकी के सामने भाई साहब ढीले पड़ जायेंगे। लेकिन मेरी आशा पूरी नहीं हुई। भाई साहब ने मारपीट जारी रखते हुए और भी जोर से चिल्लाकर कहा, "चले जाओ। तुम मुझे धमकी दे रहे हो, तुम समझते हो तुम्हारे बिना मेरी लड़की कुंवारी रह जायेगी? जाओ, चले जाओ, मेरे घर से।"

मैं क्रोध से भर गया। लगा, भाई साहब ने मेरे गालों पर तड़ाक-तड़ाक चांटे जड़ दिये हैं। अनपेक्षित चोट के दंश से मेरा चेहरा जल उठा। मैं एकदम उठ खड़ा हुआ।

भाई साहब, भाभीजी एक दूसरे पर हावी होने की कोशिश में अब भी संलग्न थे। इधर-उधर पड़े अपने कपड़े समेटकर मैंने अटेची में रखने शुरू कर दिये। मारक व्यस्तता के बावजूद भाई साहब, भाभी मुझे जाने की तैयारी करता देख रहे थे। तभी भाभीजी अवसर पाकर छिटककर मेरे पास आईं, "भैया तुम चले मत जाना। इस समय ये नहीं बोल रहे हैं। इनके अन्दर की शराब बोल रही है।"

जवाब में मेरे हाथ रुक गये। भाभी जी ने जो कुछ कहा था उसे अन्दर ही अन्दर मैं भी महसूस कर रहा था शायद। लेकिन मुझे औपचारिक सम्बोधन की जरूरत थी। यह जरूरत भाभीजी के कथन ने पूरी कर दी थी। दिखावे के लिए मैं घर से बाहर निकल गया। यथास्थान पर पड़ी अटेची मेरे निर्णय की अभिव्यक्ति थी। थोड़ी देर इधर-उधर भटक कर मैं वापस आकर सो गया।

दूसरे दिन सुबह मेरे उठने से पहले ही भाई साहब उठ चुके थे। मैं उठा तो वे मेरे पास आये, "कल रात को तुमने मेरी बात का बुरा तो नहीं माना?"

मैंने जवाब नहीं दिया तो वे फिर बोले, "दरअसल गुस्से में मुझे पता नहीं लगा कि मैं क्या कर रहा हूं।"

"आप गुस्से से ज्यादा शराब के प्रभाव में थे और शराब के प्रभाव में रहते हुए आदमी पर कोई अन्य प्रभाव असर नहीं डाल सकता।"

"हो सकता है, तुम्हारी बात ठीक हो। लेकिन तुम मेरी कल वाली बातों का बुरा मत मानना।"

"आप बुरा मानने वाली बात कहते हैं, मैं तो कल आपकी बात मानकर वापस जा रहा था। यह तो भाभी जी का आग्रह था कि मैं रुक गया। लेकिन अब मैं आपसे क्षमा चाहूंगा। मैं यहां अधिक रुक नहीं पाऊंगा।" मैंने धमकी दी।

"कल रात वाली बातों के कारण या कोई और वजह है?"

"वही वजह मान लीजिये।"

"मानने को तो तुम जो कुछ कहोगे मैं वही मान लूंगा। लेकिन जब मैं अपनी गलती स्वीकार कर रहा हूं तो बाकी क्या रह जाता है?"

"भूल मानना शायद उतना महत्वपूर्ण नहीं है भाई साहब, जितना यह स्वीकार करना कि वह भूल दोहराई नहीं जायेगी।"

"तुम कहना क्या चाहते हो?"

"रात को आप फिर पीयेंगे। फिर भूल जायेंगे कि आप क्या कर रहे हैं। कल सुबह फिर आज वाले शब्द दोहरायेंगे।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा।"

"होगा, मैं जानता हूं, जरूर होगा।"

"तुम्हें अगर मुझ पर इतना अविश्वास है तो मैं क्या कर सकता हूं? तुम्हारी मर्जी है। जैसा चाहो सोच सकते हो।"

"इसमें मनचाहा सोचने वाली कोई बात नहीं है। सिर्फ एक ही शर्त पर मैं आप पर विश्वास कर सकता हूं।"

"कौनसी शर्त पर?"

"मेरे जाने के बाद आप जो चाहें करिये। किन्तु कम से कम अब आप तब तक नहीं पीयेंगे, जब तक मैं यहां हूं।"

"ठीक है, तुम्हारी शर्त मुझे मन्जूर है।"

इसके बाद सारा दिन ठीक टाक गुजर गया। चार बजे के लगभग हम लोगों को लड़का देखने जाना था। किराये-भाड़े के लिये भाई साहब ने भाभी जी से दस रु० मांगे। वैसे तो पता नहीं भाभीजी इतनी आसानी से उन्हें दस रुपये देतीं या नहीं किन्तु सुबह हुई मेरी और भाई साहब की बात चीत की जानकारी भाभीजी को थी। इसलिये उन्होने आसानी से दस रुपये का नोट भाई साहब के सुपुर्द कर दिया।

हम लोग गन्तव्य पर पहुंचकर, रिक्शा से उतरे। रिक्शा वाले को तीन रुपये देने थे। भाई साहब ने जेब से निकाल कर दस का नोट रिक्शा वाले को दिया। रिक्शा वाले के पास दस के खुल्ले नहीं थे। मैंने नोट भाई साहब को वापस दिला कर रिक्शा वाले को पैसे दे दिये।

लड़का देखा। बातचीत की। वर पक्ष की अपेक्षाओं, मांगों की जानकारी ली। उठते-उठते छः बज गये। लड़का हमें पसन्द आ गया था। प्रमुदित मन से हमने वापसी के लिये रिक्शा लिया।

रिक्शा घर के निकट मुख्य बाजार में पहुंचा था कि भाई साहब ने रिक्शा रुकवा दिया "तुम घर चलो। मैं अभी आता हूं।"

"इस समय कहां जायेंगे?" मैंने रोका।

"थोड़ा सा काम है। करके अभी आता हूं।"

भाई साहब रिक्शा से उतर गये। घर पहुंच कर मैंने प्रतीक्षारत भाभीजी को हालचाल सुनाये। बातें करते करते एकाएक उन्हें भाई साहब की अनुपस्थिति का ध्यान आया। उन्होने पूछा, "वे कहां हैं?"

"भाई साहब रास्ते में रिक्शा से उतर गये थे। उनको कोई काम था। अभी आते होंगे।"

"क्या काम था पूछा नहीं?" भाभीजी के मस्तक पर सलवटें उभरीं।

"पूछा था, लेकिन उन्होने बताया नहीं।"

भाभीजी किंचित मौन रहीं। फिर बोलीं, "दस रुपये मे से कितने रुपये उनके पास बाकी बचे थे?"

"सारे ही थे। रिक्शा का किराया दोनो बार मैंने दिया था।"

"तो वे किसी काम स नहीं गये हैं। पीने गये हैं।" वे झटके से बोलीं।

"नहीं भाभीजी, ऐसा नहीं हो सकता।" मुझे उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।
"तुम उन्हें नहीं जानते भैया। इस समय वे जरूर ठेके पर ही बैठे होंगे।"

उस समय मुझे उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन लगभग दो घंटे बाद जब भाई साहब लौटे तो पता लगा कि भाभी जी ने ठीक ही कहा था। भाई साहब नशे में धुत थे।

मैंने अपने आपको बुरी तरह अपमानित महसूस किया। आक्रोश का एक तूफान मुझे अपने भीतर उठता हुआ महसूस हुआ। मैं झटके से उठा। सूटकेस में कपड़े डालकर बिना कुछ कहे सुने घर से निकल गया, इस संकल्प के साथ कि भाई साहब के सन्दर्भ में अब कभी भी अपने अन्दर छिपे संस्कार को जागने नहीं दूंगा।

□

अन्तहीन

गोधूलि का समय है। मैं ताऊजी को साथ लेकर गोविन्ददेव जी के मन्दिर आ रहा हूं। सड़क के दोनों ओर भिखारियों की लम्बी कतारें हैं। उनके बीच से निकलता हुआ रिक्शा मन्दिर के मुख्य द्वार पर पहुंच कर रुक गया है। मैंने एक रुपये का नोट रिक्शा वाले को दे दिया है और ताऊजी जेब में हाथ डालकर कह रहे हैं, "तूने क्यों दिये पैसे ? मैं दे देता।"

"आपने दिये मैंने दिये, एक ही बात है।" मैंने हंसकर जवाब दिया है।

ताऊजी का अभिनय मुझसे छिपा नहीं रह सका है। जेब मे पैसे न हों, पैसे कम हों या देना न चाहते हों तीनों ही स्थितियो मे यह तरीका कारगर होता है। भुगतान मे थोड़ी ढील करके साथ वाले को पैसे देने दो। फिर उसकी फुर्ती को जिम्मेदार ठहराते हुए भुगतान न कर पाने का अपना दोष साथ वाले पर मढ दो। कुछ ऐसा ही व्यवहार मुझे ताऊजी का भी लगा है।

हमेशा की तरह मन्दिर में बेतहाशा भीड़ है। गोविन्ददेवजी की प्रतिमा के सम्मुख संगमरमर का बन्द दालान है। दालान के बाद एक लम्बा चौड़ा चौक है। पीतवस्त्र पहने पुजारी दालान में इधर-उधर घूमकर तुलसीदल बांट रहे हैं। चौक मे भक्त भक्ति में झूम-झूमकर गा रहे हैं, "यशोदा मैया खोल किवड़िया, कान्हो आयो गाय चराय।"

समुदाय में कुछ पुरुष, महिलायें दण्डवत् प्रणाम की मुद्रा में औंधे लेटे हुए हैं। कुछ के जुड़े हाथो पर उनके मस्तक रखे हुए हैं। कोने में खड़े दो लड़के एक अठारह-उन्नीस साल की लड़की की ओर इशारे करके बातचीत कर रहे हैं। लड़की मां के साथ है और अवसर मिलते ही मां की नजर बचाकर उनकी तरफ मुस्कराहट फेंक देती है।

दर्शनों के बाद मन्दिर की परिक्रमा लगवाकर मैं ताऊजी को पीछे तालकटोरे की ओर ले आया हूं। पहाड़ियों से लुढकता हुआ अंधेरा तालाब पर उतर आया है। गढ़ गणेश की सीढ़ियों के सहारे ऊपर चढ़ती बल्बों की झालर का तालाब मे बड़ा खूबसूरत प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है। हर ओर शान्ति है। सुखद, भावनापूर्ण, सम्मोहक और निश्छलता से सराबोर शान्ति।

मैं रेलिंग पर झुका नाहरगढ़ की चोटी पर जलती लाल बत्ती को ताक रहा हूं कि बारादरी मे बाईं ओर बने मकान से किसी पुजारी की किशोरी पुत्री का आरती गाता हुआ स्वर उभरा है। धुंधलाता हुआ गढ़ गणेश, हिंडोलो पर झूलता तालकटोरा। वीरान सन्नाटा। आरती की मन्थर गूंज। नास्तिक विश्वास का घेराव करते आस्था के प्रसारण में मैं डूब गया हूं। खामोशी और असम्बद्धता। ध्यान इस को कहते हैं क्या ?

आरती के स्वर रुक गये हैं। मैं ताऊजी की ओर देखता हूं।

"कैसा लग रहा है ?" मैंने इतना धीरे से पूछा है कि शब्द चुपके से सरक कर ताऊजी के कानों में फुस फुसा भर सकें।

"अच्छा, बहुत अच्छा।"

ताऊजी से पूछने के लिये कई सवाल मेरे दिमाग में उभरे हैं मगर वातावरण के खूबसूरत चेहरे पर दाग लगाने की इच्छा नहीं होती। मैं सवालों को दबा देता हूं।

हवा की सुगन्धित नमी से महकते हम पैदल ही बाजार में निकल आये है। काफी पीने का मेरा प्रस्ताव औपचारिक इनकार के बाद ताऊजी ने मान लिया है।

होटल का विशाल हाल। चेंजर, पर लगा हुआ रिकार्ड मद्धम स्वर में 'चेंजिग द स्ट्रेंजर' गा रहा है। थोड़े इन्तजार के बाद हमें दो कुर्सियों वाली एक खाली मेज मिल गई है।

"डिनर, सर ?" स्टीवर्ड ने नोटबुक पर पेंसिल की नोक जमाते हुए पूछा है।

"नो थैंक्स। टू कप एक्सप्रेसो ओनली।"

ताऊजी चारों ओर देख रहे हैं। मैं हाल में भरे शोर से इजाजत लेता हूं और बड़ी चालाकी से बात चालू कर देता हूं, "इन दिनों काम कैसा चल रहा है ?"

ताऊजी हल्का सा चौंके हैं, "ठीक ही है।"

"ठीक माने क्या ? पहले जैसा, पहले से खराब या पहले से अच्छा ?"

"ठीक माने ठीक। माने ठीक-ठाक।" ताऊजी खोखली सी हँसी हँस दिये हैं।

उनकी हंसी के खोखलेपन को नजरअन्दाज करके मैं पूछता हूं, "रवि के क्या हाल हैं ? कुछ मदद-वदद करता है या नहीं ?"

"इस काम में वैसे ही उसका मन कम लगता है। फिर इस साल उसे बी० काम० का इम्तहान देना है।"

ताऊजी के स्वर की सतत् उदासीनता मुझे बात बढ़ाने से रोक देती है।

बैरा काफी रख गया है। अपने-अपने विचारों में गुम हम काफी सिप कर रहे हैं।

अन्तिम इच्छा करार देकर इस बार भी दादी माँ की इच्छा को मान लिया गया। डाक्टर के आश्वासन का क्या भरोसा ? जो कुछ दादी माँ कहती हैं, वही सच है। उस हिसाब से दादी माँ को अब तक जिन्दा नही होना चाहिये था। मगर अपनी भविष्यवाणी को पूरा करने की जिद उन्हें कतई नही है। उनकी तो एक ही जिद थी, अपने बच्चों का मुंह देखने की जिद। जी हाँ, उन्हीं बच्चों का, जो अब खुद दादा-दादी, नाना-नानी बन चुके हैं और यह जिद उनके बच्चों ने पूरी कर दी।

जी नही, पहली बार नही। यह जिद जिसे वे अपनी इच्छा बताती हैं, उन्होंने तीसरी बार की है। इससे पहले दो बार उनके प्यारे बच्चे उनकी मरणासन्न अवस्था के समाचार पाकर दूरदराज के अपने घरो से ताबड़तोड़ उनकी सेवा मे हाजिर हो चुके हैं।

तीसरी मुंह दिखाई का आह्वान सुनकर बंगलौर से बुआजी, बड़ौदा से ताऊजी, लुधियाना से चाचाजी और जम्मू से छोटी बुआ सभी जोड़े से आ गये हैं।

वैसे तो बुआजी और चाचाजी को मैं कम इज्जत नही देता। लेकिन ताऊजी की बात कुछ और है। उनके लिये जितना प्यार और सम्मान मेरे दिल में है उतना पिताजी के लिये भी नही है।

ताऊजी के प्रति मेरी श्रद्धा अकारण नही है। दरअसल मेरा बचपन उनके साथ ही गुजरा है। सात आठ साल तक की उम्र के मेरे वारिस वही रहे हैं। पिताजी, उनसे छोटे, बाकी सब भाई-बहनो से बड़े हैं। छोटे भी होंगे कोई दस साल। जाहिर है, पिताजी से लगभग इतना ही पहले ताऊजी की शादी हो गई होगी।

मगर संयोग या दुर्भाग्य की बात कि ताऊजी के यहाँ किसी बच्चे का जन्म नही हुआ। मेरे जन्म के साथ मुद्दत से किलकारियों को तरसता घर आबाद हो गया। ताऊजी, ताईजी तो जैसे पागल हो गये। ताईजी का वश चलता तो अपने स्तनो मे दूध पैदा कर देती। ताऊजी की दाल गलती तो मुझे लिये-लिये विश्व-भ्रमण कर आते। घर न लौटते इस डर से कि मुझे उनसे कोई बांट लेगा।

ये बातें सिन्ध की है। बाद मे विभाजन हुआ। इतने बड़े परिवार का एक साथ सुरक्षित स्थानान्तरण सम्भव नही था। इसलिये इकाइयां बनाई गई। ताऊजी, ताईजी की भावनाओं को देखते हुए मुझे उनके साथ रवाना किया

गया । तब मैं रहा होऊंगा कोई चार साल का । घूमते फिरते ताऊजी बड़ौदा पहुंचे । उनके साथ मैं भी बड़ौदा पहुंचा । पिताजी जयपुर पहुंचे, चाचाजी लुधियाना । बाद मे ये इकाइयां अलग-अलग बस गई । वहीं धन्धे-पानी मे लग गई ।

ताऊजी ने बड़ौदा में ही मुझे स्कूल भेजा । दो-तीन साल पढ़ाया । उनके विवाह को तब शायद बीस-इक्कीस साल हो चुके थे कि उनके यहां लड़की का जन्म हुआ । विवाह के बाद पहली लड़की माने सीमा का जन्म । फिर तो हर दूसरे तीसरे साल यह सिलसिला चल निकला । अपनी वंशवल्लरी विकसित होने का श्रेय वे इस बात को देते हैं कि मैं उनके साथ था । सच कितना है, मैं नहीं जानता । मगर इतना खयाल जरूर आता है कि मैं तो सात-आठ साल से लगा तार उनके साथ था । अगर उनका कहना सच है तो वे इससे पहले ही पिता क्यों न बन गये ?

खैर, उस अवधि में जितना स्नेह ताऊजी से मुझे मिला, उसका प्रतिदान मैं उन्हें दे नहीं सकता । जितनी श्रद्धा या सम्मान मैं उन्हें देता हूं वह शायद उनके चढ़ाये हुए कर्ज के ब्याज के बराबर भी नहीं है ।

ताऊजी की बड़ौदा में होजरी की घरेलू इन्डस्ट्री है । बड़ी लड़की सीमा की शादी एक व्यापारी के गद्दीनशीन पुत्र से वहीं कर दी है । अब तीन लड़के और दो लड़कियां बाकी हैं । बड़ा लड़का रवि होगा कोई बीस साल का और छोटी लड़की मीना करीब पांच साल की ।

शुरु से ही ताऊजी स्वभाव से बहुत खर्चीले और दिल के बहुत बड़े रहे हैं । मुझे याद है, तब मैं बड़ौदा में पहली कक्षा में पढ़ता था । मेरा खाली जेब स्कूल जाना उन्हें नागवार गुजरता था । आना, दो आना वे जरूर मेरी जेब में डाल देते थे, भले ही वे सिक्के मैं खर्च करने की बजाय कही गिरा आऊं ।

मुफलिसी थी, मगर मेरी चाही हुई हर चीज उन्होंने लाकर दी और बड़े दुलार से लाकर दी । उन्हें पता है कि श्रीखंड मुझे बेहद पसन्द है । मैं जब-जब बड़ौदा गया हूं, उन्होंने पहले दिन ही मुझे श्रीखंड खिलाया है । बड़ौदा से जयपुर आते-जाते हर परिचित को वे मेरे लिये एक डिब्बा श्रीखंड पकड़ा देते हैं । यहां तक कि पिछली दोनों बार दादी माँ की बीमारी का तार पाकर भी जयपुर आते समय वे मेरे लिये श्रीखंड लाना नहीं भूले ।

दादी माँ की बीमारी का तार पाकर ताऊजी, ताईजी भी पहुंचे । उनके स्नेह का सागर छलक कर हमेशा की तरह मुझे सराबोर भी कर गया । लेकिन पता नहीं क्यों, इस बार वे मेरे लिये श्रीखंड नहीं लाये । दादी माँ क्योंकि उनके आने तक काफी ठीक हो चलीं थीं इसलिये घर का वातावरण सामान्य ही था । मुझसे रहा नहीं गया तो दो दिन बाद अवसर देखकर मैंने ताऊजी से पूछ ही लिया' "इस बार आप मेरे लिये श्रीखड नही लाये ?"

"जल्दी-जल्दी मे ग्राना पड़ा न, ला नहीं सके।" सुनकर मुझे विश्वास नहीं हुग्रा। मगर उनके चेहरे पर एकाएक उतर ग्राई जर्दी ने मुझे ग्रागे पूछने नहीं दिया।

स्टेशन पर जब उन्हे लेने गया था, रात के बारह बजे थे। सर्दी इतनी कि मैं ग्रोवरकोट के बावजूद सिकुड रहा था। वे गाडी से उतरे तो ग्राधी बाहों के बुशर्ट पर मात्र एक जैकेट पहने हुए थे। मुझे कपड़ों के बारे में पूछते झिझक हुई। मगर मेरी ग्रांखो की भाषा पढ़कर उन्होने स्वयं ही स्पष्टीकरण दे दिया, "बड़ौदा मे सर्दी बिल्कुल नही थी। मैं सारे गरम कपड़े वही छोड़ ग्राया।"

जयपुर उनके लिये जाना पहचाना शहर है। यहां की सर्दी से वे ग्रच्छी तरह वाकिफ हैं। यह सब जानते हुए उनका स्पष्टीकरण मुझे कैसे जंचता। सो नहीं जंचा। लेकिन फिर भी मैं खामोश हो गया इस मुद्दे पर ग्रौर उन्होने भी चुप्पी खीच ली।

दो दिन ग्रौर गुजर गये हैं। सबको ग्राये हुए हफ्ते भर से ग्रधिक समय हो गया है। वापस लौटने की बातें चलने लगी है।

ताईजी से भी इस बार जमकर बातचीत नही हो पाई है। मैंने कोशिश न की हो, ऐसी बात नही है। उनमे पता नही कैसे विचित्र परिवर्तन ग्राये हैं, जो मेरी समझ में नही ग्राते। ठीक है कि उनके घुटनों में दर्द रहने लगा है। सुबह-शाम एक-एक गोली निगले बिना उनका काम नहीं चलता। लेकिन इसका मतलब यह तो नही है कि वे ठीक से बात ही न करें।

कमोबेश यही हाल ताऊजी का है। कपड़े, जूते उनकी तंगदस्ती को समझाते हैं। मगर वे कुछ बताते क्यो नही? ग्रगर उनका काम ठीक से नही चल पा रहा है तो बतायें। दो-चार-पांच हजार देकर हम उनकी मदद कर सकते हैं। उन्हें सान्त्वना देकर उनकी हिम्मत बढा सकते हैं। भगवान की दया से हमारे पास सब कुछ है। खुद ही सोचना, खुद ही खिचे-खिचे रहना। इस पकी उम्र में तो ये लक्षण उन्हें तोड़ देंगे।

ग्रब दादी माँ से कोई क्या कहे? उनको कुछ समझ में ग्राता नहीं है ग्रौर पिताजी उनकी हर इच्छा पूरी करने पर तुले रहते है। एक तरफ महंगाई के मारे जिन्दा रहना दूभर है दुनिया का ग्रौर दूसरी तरफ उनके ये चोचले हैं। ग्रन्तिम समय में मिलना हो गया इनका तो। हजार बारह सौ खर्च करके सब लोग ग्रपने ग्रपने घर पहुचेंगे ग्रौर महीनो भुगतेंगे उनके मिलने को।

ताऊजी का व्यापार ग्रगर मन्दा चल रहा है तो क्या जरूरत थी उन्हें इस तरह दौड़ते हुए ग्राने की? लोकलाज निभाना ज्यादा जरूरी है या पेट भरना? धन्धे को

बेग्रासरा छोड़कर ग्रा गये। पैसे की चिन्ता में ग्रन्दर ही ग्रन्दर घुले जा रहे हैं। घूमना, फिरना, खाना, पीना, बात करना सब हराम हो गया है लेकिन एक सठियाई, नहीं ग्रसियाई बुद्धि की बेबुनियाद जिद के ग्रागे दुनिया की हर बात बेकार है।

ग्रन्दर ही ग्रन्दर नहीं कोसते होंगे, क्या पता ? जरूर कोसते होंगे। ग्रब मुंह पर क्या कहें कि मरने से पहले क्यों बुला लिया हमें, मरने के बाद बुलाना चाहिये था।

स्वभाव के खिलाफ कंजूसी। स्वभाव के खिलाफ बातचीत में परहेज। हाल चाल सुनने सुनाने से बचने की कोशिश। दिक्कत यह है कि खुलकर खिलाफत करने का साहस किसी में भी नहीं है। हकीकत से ताऊजी ग्रलग कन्नी काटने की कोशिश करते हैं ताईजी ग्रलग। जी हां, जी हां दोनों करते रहेंगे। सब लोग गेहूं की तरह पिसकर भी उजले दिखने की कोशिश में जुटे हैं।

ताऊजी, ताईजी के कपड़े लत्तों की ग्रोर ध्यान देता हूं। ताऊजी के पास या तो घिसी हुई पुरानी पेन्ट शर्ट है या बिलकुल नये फैशन के चौबीस इंच मोहरी वाले बेलबाट हैं। पांव में थोड़े मिसफिट से राउन्ड टो के हाई हील जूते हैं। इसी तरह ताईजी के पास भी रफूशुदा साड़ियों के साथ दो ग्राधुनिकतम प्रिन्ट की बाम्बे डाइंग की साड़ियां हैं। ताऊजी के कपड़े देखकर उनका बिगड़ा हुग्रा लड़का रवि याद ग्राता है। ताईजी की साड़ियां देखकर उनकी विवाहित लड़की सीमा याद ग्राती है। जयपुर जा रहे हैं, कुछ ग्रच्छे कपड़े होने चाहियें। नये-पुराने फैशन का भेद छोड़कर रवि ग्रौर सीमा के कपड़ें ले लो। तमाशा बनना मंजूर लेकिन यह नहीं होगा कि भावुकता को ताक पर रख कर उम्र यापता मां की बीमारी का तार पाकर सिर पर पांव रखकर दौड़ने से रोकें ग्रपने ग्रापको।

सीमा की चिट्ठी ग्राई है। ताऊजी घर पर नहीं हैं। ताईजी चिट्ठी को मेरे पास लाई हैं, पढ़कर सुनाने के लिये। लिखा है, "छोटे भाई-बहन बहुत रो रहे हैं। ग्रापके जाने के बाद दूसरे दिन उन्होंने देखा कि उनकी गुल्लकें टूटी हुई हैं। एक पैसा भी वहां नहीं है। दीवार के कोने में ग्रापने ही तो लकड़ी का टुकड़ा लगाकर मिट्टी से लीप दिया था, मम्मी। किसी ने खींचकर वह टुकड़ा निकाल लिया। मैंने रवि से भी पूछा था, मगर उसने इनकार कर दिया। समझ में नहीं ग्राता यह काम किसने किया होगा।"

पत्र पढ़कर मैं वापस ताईजी को देने लगता हूं। वे कहीं खो गई मालूम होती हैं। यह घर, ग्रासपास का माहौल, मैं, कुछ भी उनके निकट नहीं है। चेहरे पर ग्रजीब तरह की बेचारगी है। सूनी ग्रांखें शून्य में किसी ग्रनुपस्थित बिन्दु को ताक रही हैं।

गुल्लक किसने तोड़ा होगा, यह सवाल पूछना चाहकर भी मैं पूछ नहीं पाता। पत्र और ताईजी पर हुई उसकी प्रतिक्रिया मेरे दिमाग के एक कोने को अपनी सम्पूर्ण ताजगी के साथ कुरेद रही है। एक सन्देह मुझे घेर रहा है।

दादी माँ की बीमारी का तार, टूटी हुई गुल्लक, रेल का टिकट, हाथ खर्च के लिये कुछ रुपये वृताकर मेरे चारों ओर घूम रहे हैं। एक चक्कर जो न जाने कब चलना शुरू हुआ था और न जाने कब चलना बन्द होगा।

दोष किसे दिया जाय? दादीमाँ को, जिन्होंने थोथी जिद चलाकर अपने बच्चों को हैरान किया? पिताजी को, जिन्होंने जमाने की परेशानियों से परिचित होते हुए भी दादी माँ की इच्छा पूरी कराने के लिये तार भिजवाये? आने वालों को, जो अपनी औकात भूलकर चिन्ता का बोझ उठाये पहली गाड़ी से रवाना हो गये?

दोषी शायद कोई भी नहीं है इनमें से। दोषी है लीक पर चलने की हमारी आदत, हमारी परम्पराएं, सामाजिक मान्यताएं, डाल की तरह दूर रहते हुए भी जड़ से न टूटने की हमारी विवशता, तर्कों से परे हमारे भावुक रिश्ते और हिन्दुस्तानी बच्चों की गुल्लकें जिनमें बन्द सिक्के बड़ों का ईमान खराब करने की ताकत रखते हैं।

मैं बेचैनी से ताऊजी का इन्तजार कर रहा हूं।



पर्तों का शून्य

आज वे कुर्सी पर आ गये हैं। जनता के दिलों में आशायें लहरा रही हैं। वर्षों से चली आ रही गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अन्याय और अनाचार अब नहीं रहेगा। अभी न सही, साल-छः महीनों में सही लेकिन सब तरफ खुशहाली होगी। हर सताये हुए को सान्त्वना मिलेगी। सब की जायज मांगें पूरी की जायेंगी। जरूरतमंदों की जरूरतें पूरी होंगी। दुःख-दर्द मिट जायेंगे। इस तरह की अनेक उम्मीदें लोगों के दिलों में जाग उठी हैं।

मेरे भी कुछ दुःख-दर्द हैं। मेरी भी कुछ तकलीफें हैं। मेरी भी कुछ जरूरतें हैं, कुछ मांगें हैं। हिसाब से मुझे भी इन दिनों उन लोगों मे होना चाहिये जो आशान्वित हो उठे हैं। लेकिन ऐसा हो नहीं पा रहा है। हर कोशिश के बावजूद मैं अपने आपको समझा नहीं पा रहा हूं। पिटा हुआ आदमी था और पिटा हुआ आदमी महसूस कर रहा हूं खुद को।

आप कहेंगे मैं इतना अधिक निराश हो गया हूं कि प्रबलतम आशा भी मुझे उत्साहित नहीं कर सकती। मगर नहीं, ऐसा नहीं है। अकारण ही मेरी मनः स्थिति तटविहीन नदी जैसी नहीं बनी है। इजाजत दें तो कुछ खुलासा करूं।

सिलसिलेवार कहने को मेरे पास बहुत कुछ हो, ऐसा नहीं है। केवल मात्र एक घटना है। काफी पुरानी, लेकिन वह एक घटना ही मेरी आज की मानसिकता को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है।

तब मैं बी० ए० के दूसरे साल में पढ़ता था। पढ़ाई का खर्च खुद जुटाना होता था। इसलिये साल के शुरू मे ही दो ट्यूशनें पकड़ लेता था। पढ़ाई का खर्च घर से क्यों नहीं मिलता था या मैं ट्यूशनें क्यों करता था या मेरा घर, मां-बाप कहां थे, ये सब बातें जानने में आपकी रुचि हो नहीं सकती। मैं भी उस अतीत को दोहराने मे कतई रुचि नहीं रखता। आपकी अरुचि का कारण, जाहिर है, आपके लिये मेरा होना किसी गैर का होना है। जबकि मेरी अरुचि का कारण मेरा स्वार्थ है। मैं उस युग की कहानी दोहराकर अपना जी खराब नहीं करना चाहता। यदि किसी कारण यह तफसील जानने में आपकी रुचि है तो मैं गुजारिश करूंगा कि मुझे बाध्य न किया जाय।

तो, मैं अपनी बात बढ़ाऊं ? मन लगाकर पढ़ना, कॉलेज जाना और नियमित ट्यूशन करना--मेरी दिनचर्या, मेरा आमोद-प्रमोद, मेरा हाकी-फुटबाल सब कुछ यही तीन काम थे। नाटक, वाद-विवाद प्रतियोगिताएं या सांस्कृतिक कार्यक्रम जब-जब कॉलेज में होते मैं देखने-सुनने जरूर जाता। भाग इनमें भी कभी नहीं लिया था।

अक्तूबर का महीना चल रहा था। परीक्षा के लिये फार्म भरना था। फार्म भरने में कोई कठिनाई नहीं थी। बस, फीस का प्रश्न था। फीस के लिये उनतीस रुपये की जरूरत थी। मेरी ट्यूशन से मुझे ग्यारह और तेरह चौबीस रुपये मिलते थे। उसमें से अपना काम चलाना और फीस देना, बहुत टेढ़ा काम था। यह टेढ़ा काम भी किसी तरह हो जाता। लेकिन ट्यूशन वाले दोनों ही घरों से पैसा मिलना संभव नहीं था। एक सज्जन शहर से बाहर थे और दूसरे टाल गये थे, पहली तारीख के लिये।

फीस जुटाना सख्त जरूरी था। बिना उसके फार्म नहीं भरा जा सकता था और बिना फार्म के परीक्षा नहीं दी जा सकती थी। फीस जमा न हो और साल खराब हो जाय, यह मुझे बिल्कुल स्वीकार नहीं था। हाथ-पांव मारे। कुछ सहपाठियों से कहा। पांच-सात रुपये मिले भी। लेकिन समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। अन्तिम तारीख निकट आती जा रही थी और मेरी परेशानी बढ़ती जा रही थी। चिन्ता के मारे नींद उड़ गई थी। खाना-पीना बन्द हो गया था। अब क्या होगा ? यह प्रश्न मुझे घेर-घेर कर बर्छियां फेंकता रहता और मैं पल-पल ज्यादा सुराखदार, ज्यादा छलनी होता जाता। आत्म-विश्वास, आत्म-संतुलन सब खोता और टूटता जा रहा था। लगता था जिन्दगी ने मौत के मुहाने पर फेंक दिया है, बचना मुश्किल है।

तभी एक दिन कॉलेज के नोटिस बोर्ड पर एक सूचना देखी। तीन दिन बाद नगर के सभी कॉलेजों के विद्यार्थियों के लिये एक खुली भाषण प्रतियोगिता थी। विषय प्रतियोगिता से पहले मिलने वाला था। पिचहत्तर, पचास और तीस रुपये के तीन नकद पुरस्कार घोषित किये गये थे।

मुझमें एक आशा का संचार हुआ। प्रतियोगिता हमारे कॉलेज में होने वाली थी। मेरे सामने एक चुनौती थी जिसे स्वीकार करके मैं फीस के पैसे जुटा सकता था। सच था कि मैंने कभी कोई भाषण नहीं दिया था उससे पहले। लेकिन इस सूचना ने मेरे अन्दर दबती जा रही जिजीविषा को जगा दिया था। मैंने फैसला किया कि मैं प्रतियोगिता में भाग लूंगा।

इस फैसले के बाद मैं तैयारी में जुट गया। भाषण योग्य ताजा विषयों की सूची बनाई। लाइब्रेरी जाकर पुस्तकों, पत्रिकाओं और अखबारों की मदद से हर

विषय पर धुआंधार बोलने की कोशिश की। इस डर के बावजूद कि सचमुच बोलने के समय घबड़ा न जाऊं, मैं हिम्मत और जिद के साथ लगा रहा। नतीजे के तौर पर जिस दिन प्रतियोगिता थी, उस सुबह मुझमें आत्मविश्वास पैदा हो चुका था। अपने परिश्रम के बूते पर यह विश्वास भी होने लगा था कि एक न एक पुरस्कार जरूर ले जाऊंगा। अगर तीसरा पुरस्कार भी मिलता है तो तीस रुपये मिलेंगे। फीस उनतीस रुपये ही है। मेरे लिये तीसरा पुरस्कार भी काफी है।

खाने-पीने, पढ़ने-लिखने या किसी और काम में मन लगने का सिलसिला पहले की तरह अब भी बन्द था। अन्तर इतना ही था कि प्रतियोगिता की जानकारी से पहले चिन्ता के कारण कुछ अच्छा नहीं लग रहा था और प्रतियोगिता की जानकारी के बाद मस्तिष्क मे लगातार बने हुए तनाव के कारण। कहीं आते-जाते भी कोई-न-कोई सम्भावित विषय दिमाग में घूम रहा होता। भाषण की शुरुआत कैसे की जाय, अन्त में क्या बोला जाय, आदि-आदि प्रश्न तैरते होते। और कुछ नहीं सूझता तो किसी विषय पर राह चलते ही बड़बड़ाना आरम्भ हो जाता।

दो बजे प्रतियोगिता आरम्भ होने का समय था। मैंने अपनी सबसे अच्छी पोशाक पहनी। जो पोशाक मैंने पहनी थी, मेरे लिये सबसे अच्छी थी मगर मैं जानता था कि वैसे वह सामान्य से अधिक किसी हालत मे भी नही थी। मेरा कद-बुत, स्वास्थ्य, चेहरा-मोहरा अच्छा था। इसलिये व्यक्तित्व के प्रभाव के सन्दर्भ में अपनी कमतर पोशाक के बावजूद मैं आश्वस्त था। भाषण में कुछ बोल पाऊं-न बोल पाऊं, पुरस्कार मिले—न मिले, व्यक्तित्व के कारण नही पिटूंगा, यह भरोसा था।

कॉलेज पहुंचा तो डेढ़ बजा था। ऑडिटोरियम मे कुर्सिया लग रहीं थीं। विद्यार्थी यूनियन के अध्यक्ष द्वारिकाजी की देखरेख में कुछ छात्र और चपरासी व्यवस्था मे जुटे थे। मुझे आया देख द्वारिकाजी ने मुझे भी कुर्सियां लाने और लगाने के काम में लगा दिया। दो बजते-बजते यह सब पूरा हुआ। परिश्रम के कारण पसीना और पसीने के कारण चिपचिपापन महसूस हो रहा था। मैं कॉलेज के पीछे बने हॉस्टल में हाथ-मुंह धोकर ताजा होने के विचार से चला गया। विषय तब तक घोषित हो चुका था। लॉटरी डालकर वक्ताओं की सूची बना ली गई थी। उस सूची में अपना नाम और स्थान मैंने देख लिया था।

हॉस्टल जाते हुए मैं संभावनाओं के अतिरेक से दबा जा रहा था। दूसरे कॉलिजों से भाग लेने आये वक्ता छात्रों के बारे मे मुझे अधिक जानकारी नहीं थी। किन्तु हमारे कॉलेज के ही दो-तीन नाम ऐसे थे जो मुझे निराश करने के लिये

काफी थे। वाद-विवाद की अनेक अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत लड़कों के सामने मैं टिक सकूंगा क्या? अच्छा नहीं बोल सका तो पुरस्कार तो दूर रहा खिल्ली और उड़ेगी। ऐसे अवसरों पर हूटिंग का कैसा दौर-दौरा चलता है, यह मैं जानता ही था।

पन्द्रह या बीस जितने भी मिनट मुझे हॉस्टल में लगे होंगे एक ऐसे तैराक की मनःस्थिति मुझ पर हावी रही जो तालाब में उतर गया हो और कुछ शरारती साथी उसे पानी के अन्दर दबाये हुए हों। ऊपर उठकर फेफड़ों में हवा भरने का अवसर भी गोया नहीं पा रहा था मैं। आत्महीनता का भाव जो डेढ़ बजे ऑडीटोरियम जाने तक बिल्कुल नहीं था अब पूरी तरह मुझ पर सवार हो गया था। एक बार तो मैं ऑडीटोरियम न जाने की बात भी सोच गया था। लेकिन फिर परीक्षा, फीस और खाली जेब का अहसास हथौड़े की तरह मेरे दिमाग में बजने लगा था। धीरे-धीरे लड़ाकूपन मुझ में सिर उठाने लगा था। आत्म-संघर्ष के उस छोटे-से कालखण्ड पर विजयी होकर मैं नये उत्साह से भर उठा था। कुछ भी कर गुजरने का अदम्य जुझारू भाव लेकर मैं भाषण के विभिन्न बिन्दुओं और पहलुओं को मस्तिष्क में सजाता-संवारता वापस ऑडीटोरियम पहुंचा।

द्वारिकाजी छात्र संघ की ओर से आगन्तुकों का स्वागत कर रहे थे। कॉलेज की ओर से भाषण प्रतियोगिता के संयोजक प्रो० मंगलसिंह ने इसके बाद प्रतियोगिता के नियम सुनाये। ये औपचारिकताएं मुझे बेहद उबाऊ और नीरस लग रहीं थी। आगत को दूर धकेलने की कोशिश..............।

पहला छात्र बोलने के लिये उठा। हमारे कॉलेज का छात्र न होने का खामियाजा उसे भुगतना पड़ा। विभिन्न प्रकार की आवाजें, फब्तियां, फिकरे और शोर। दूसरा छात्र आया। पूर्व स्थिति का दोहराव। तीसरा छात्र। हमारे कॉलेज का छात्र। सम्पूर्ण शान्ति बीच-बीच में अनायास बजती तालियां और प्रशंसा सूचक ध्वनियां। मेरा उत्साह, आत्मविश्वास और कुछ कर गुजरने की लालसा तीव्रतर होती जा रही थी।

और फिर मंच से मेरे नाम की घोषणा हुई। पूर्व निश्चित ढंग से सधे कदम रखता आत्मविश्वास पूर्वक मैं मंच की ओर बढ़ा। दिल बल्लियों उछल रहा था। मंच पर जाने के लिये बनी तीन सीढ़ियां चढ़कर मैंने मंच पर पांव रखा। थोड़ा मुड़कर छात्रों की ओर देखकर, हल्का-सा सिर झुकाकर मैं मुस्कराया। तालियों की गूंज। लगातार तालियों की गूंज। माइक के सामने पहुंचकर मैंने अपने आपमें बेहद विश्वास उमड़ता पाया। होठों पर लगातार तनी मुस्कराहट को थोड़ा और चौड़ा करके मैंने हाथ उठाकर लड़कों को चुप हो जाने का संकेत

किया। यों मैंने ऐसी कोई योजना नहीं बनाई थी। बस अवसर के अनुरूप अपने आप यह सब हो गया।

मैं बोला। अपनी अपेक्षा से बहुत-बहुत अच्छा बोला। बार-बार बजती तालियों ने मुझमें यह सुगफहमी पैदा नहीं की। वस्तुतः भाषण के बाद कुछ छात्रों, सहपाठियों और एक प्रोफेसर के प्रशंसा-वाक्यों ने मुझे आश्वस्त किया कि हो-न-हो एक पुरस्कार तो मैं ले ही लूंगा। सफलतापूर्वक बोल लेने और प्रशंसा अर्जित करने के कारण मैं अपने आपको विशिष्ट और नया अनुभव कर रहा था। "मैं भी कुछ हूं," यह दिखा देने का अभिमान मुझमें जाग उठा था। नवधनाढ्य वर्ग की मानसिकता के बारे में यदि आप थोड़ा भी जानते हैं तो मेरी उस समय की मनःस्थिति की कल्पना बखूबी कर सकते हैं।

लोग मेरे बाद में भी बोले। मगर मैंने सचमुच उनमें से किसी को नहीं सुना। आत्म-क्रीड़ा में मग्न मैं खामोशी से खुद को सुनता रहा और खुद को ही सुनाता रहा।

दो-ढाई घंटों के बाद भाषणों का सिलसिला खत्म हुआ। निर्णायक निर्णय तैयार करें इस बीच समय गुजारने के लिये कुछ भाषण होने लगे। तभी एक आश्चर्य मेरे सामने कौंधा। मैंने देखा, मंच पर एक मेज लाई जा रही है जिस पर तीन खूबसूरत ट्राफियां सजाकर रखी हुई हैं। नियमानुसार पुरस्कार तो नकद राशि के रूप में मिलने वाले थे! फिर ये ट्राफिया क्यों लाई जा रही हैं मंच पर ? मैं उठकर द्वारिकाजी के पास गया।

"द्वारिका जी, ये मंच पर ट्राफियां क्यों रखवा रहे हैं ?"

"पुरस्कार बांटने के लिये।"

"पुरस्कार के रूप में तो नकद राशि देना तय हुआ था न ?"

"हां, पहले सोचा था। बाद में सुझाव आया, पैसा तो खर्च हो जाएगा। यादगार के लिये ट्राफियां ज्यादा ठीक रहेंगी।"

मैं तैश मे आ गया, "एक बार घोषणा करने के बाद पुरस्कार क्या देना है, यह आपकी मर्जी की बात नहीं रह जाती।"

"क्यों नहीं रह जाती ?" द्वारिकाजी ने मुझे घूरते हुए पूछा।

"क्योंकि प्रतियोगिता मे भाग लेने वाले छात्रों मे से हो सकता है कुछ ऐसे हों जो सिर्फ नकद पुरस्कार की घोषणा से आकर्षित हुए हों।"

"कोई नही हुआ नकद पुरस्कार की घोषणा से आकर्षित। यह जुआघर

नहीं है कि हर चाल पर पैसों की उम्मीद रखोगे । हमारे इस फैसले से सबको खुशी हुई है।"

"मुझे नहीं हुई खुशी।"

"नहीं हुई तो कर ले जो तुझे करना है।" कहकर द्वारिकाजी एक तरफ चले गये।

मैंने ग्राव देखा न ताव। धम-धम करता मंच पर चढ़ गया। माइक पर कब्जा करके मैंने गुस्से में बोलना शुरू किया, "हम प्रतियोगियों के साथ सरासर धोखा किया जा रहा है। हमें कहा गया था कि विजेताग्रों को नकद पुरस्कार दिये जायेंगे ग्रौर मंच पर ट्राफियां सजाकर रख दी गई हैं। मैं पूछता हूं, किसकी ग्रनुमति से हुग्रा है यह सब........?"

मैं ग्रागे कुछ कहूं इससे पहले ही प्रोफेसर मंगलसिंह मुझे पकड़ कर ग्रपने साथ मंच से नीचे ले गये। मैं उत्तेजित था ग्रौर वे मुझे समझाने की कोशिश कर रहे थे। तभी मैं ग्रनायास पीछे की ग्रोर खिंचता चला गया। मेरी कमीज का कालर किसी के हाथ में था। मुझे एक तरह से घसीट कर ग्रॉडिटोरियम के पीछे ले जाया गया। वहां ग्राठ-दस लड़के ग्रौर द्वारिकाजी खड़े थे। मुझे धक्का देकर द्वारिकाजी के सामने फेंक दिया गया, गालियों के बीच।

कमीज पकड़ कर द्वारिकाजी ने मुझे ऊपर उठाया। फिर ठण्डी ग्रावाज में कहा, "ग्रब बोल, क्या कहता है?"

"मैं .. ..", इससे ग्रागे मैं कुछ कह नहीं सका। एक चांटा मेरे गाल पर पड़ा। फिर दूसरा। फिर तीसरा। लडके चारों तरफ घिर ग्राये थे। वे सब खड़े तमाशा देखते रहे ग्रौर मैं पिटता रहा, पिटता रहा।

मेरी ग्रावश्यकताएं, मेरी जिजीविषा सबने उसी क्षण दम तोड़ दिया। हक ग्रौर सच्चाई के लिये लड़ने की मेरी ताकत चुक गई। मैं ग्राज समझौतापरक ग्रादमी हूं। ग्रादमी? हाँ, दोपाया होने के कारण ग्रादमी कहता हूं ग्रपने ग्रापको। वरना कीड़ों से बदतर जिन्दगी जीने वाले हम लोग ग्रादमी कहां हैं?

सत्ता की कुर्सी ग्राज उन्हीं द्वारिकाजी के पास है। जनता बड़ी उम्मीदों से उनकी तरफ देख रही है। उन्हें ग्राशा है कि ग्रब खेतों को पानी, मवेशियों को चारा, बेकारों को रोजगार, छतविहीनों को मकान, भूखों को रोटी ग्रौर सताये हुग्रों को न्याय मिलेगा। हो सकता है द्वारिकाजी सबकी, सब ग्राशायें पूरी कर दें। हो सकता है वे इस बीच बदल गये हों, जनसेवा की भावना उनमें प्रखर ज्वाला की तरह प्रज्वलित हो उठी हो। लेकिन माफी चाहूंगा, मैं ग्रपने ग्रापको उस सब के लिये समझा नहीं पा रहा हूं।



पांचवाँ पाकिस्तान

आदमी का चाहा हुआ काम उसकी अभिलाषा क्यों पूरी नहीं हो पाती ? हर तरह से सावधान रहने के बाद भी क्यों उसे बिल्कुल विपरीत स्थितियों से समझौता करना पड़ता है ? सब कुछ करने के बाद भी ये दूरियां क्यों बढ़ती हैं ? पीढ़ी अन्तराल के अस्तित्व को मूलत: नकारने वाले भूदेव इन दिनों खोये-खोये से सोचते रहते हैं। जो बातें उन्हें अपनी जिन्दगी में गलत लगीं, व्यवहार में पूरी सतर्कता के साथ उन्होंने उन बातों को परे रखा।

उन्नीस सौ सैंतालीस का विभाजन तो चौथा विभाजन था उनके लिये। सारी उम्र कटु अनुभवों, कष्टप्रद स्थितियों से गुजरते हुए भी वे अडिग रहे हैं। सच्चे अर्थों में स्वनिर्मित व्यक्ति। इन बच्चों को हर तरह की सुविधायें मिलती हैं। फिर भी बौद्धिक, शारीरिक या चारित्रिक दृष्टि से वे कितने अधकचरे और अपुष्ट हैं। जीवन भर इनके लिये ही सब कुछ किया। अच्छी शिक्षा, अच्छा रहन-सहन, क्या नहीं दिया है भूदेव ने इन्हें। मगर पिता इनकी नजर में दोषी ही है ठीक उसी तरह कि जैसे भूदेव का अपना पिता भूदेव की अपनी नजर में दोषी है।

छह साल की उम्र दुनिया का सामना करने के लिये ज्यादा तो नहीं होती ! इस छोटी सी उम्र में माँ उन्हें श्मशान से परिचित करा गई। माँ नाम के साथ आज अगर कुछ जुड़ा हुआ लगता है तो वह है ननिहाल नामधारी स्थान को उनका निर्वासन। याद करते हैं तो माँ का चेहरा तक याद नहीं आता है उन्हें। स्नेह नाम की कोई चीज जैसे बनी ही नहीं है उनके लिये दुनिया में।

पिता के पास सब कुछ था। मीलों तक फैली जमीन, ढोर-डंगर, गाय-भैंस, जमींदारी का रौब। चाहते तो बेटे की तरह न सही, नौकरों की तरह ही सही, रूखा सूखा खाना, फटी पुरानी पोशाक और पुआल का ढेर बहुत आसानी से दे सकते थे वे अपने बेटे को। मगर क्यों ? क्यों करता वह आदमी ऐसा ? उसने शादी की और इस बात का इन्तजार किये बिना कि सौतेली माँ उसके बेटे के साथ कैसा सलूक करती है, एक शाम को एक नौकर के साथ उसे रवाना कर दिया गया।

यह भूदेव का पहला पाकिस्तान था। उसके बाद जिन्दगी ने चाहे जैसी बद-

सलूकी की हो उनके साथ वे कभी नहीं रोये। किसके लिये रोयें, किसको द्रवित करने के लिये? इस नंगे सवाल ने उनको रोने दिया ही नहीं।

कहां भूदेव का वह छायाविहीन बचपन और कहां इन बच्चों की लाड़दुलार से परिपूर्ण जवानी। अन्धेरी गलियों, अनजान, अनचीन्हे रास्तों से गुजरे हुए भूदेव के पास जो कुछ आज है उसका सौवां हिस्सा भी सुविधाओं में पले उनके बच्चों के पास है क्या? सनक है, मगरूरी है, फैशनपरस्ती है। भूदेव किसी भी तर्कसंगत काम के खिलाफ कहां है? तुम्हें बाल बढ़ाने हैं, बढ़ाओ। मगर साबुन लगाकर साफ तो करलो इन्हें। तेल तो डाल दो इनमें। तुम रंगीन कपड़े पहनकर आधुनिक बनो, ठीक है। मगर कमीज के कफ तो बन्द करो। कफलिंक्स ही डाल दो इनमें। नहीं, ये किसी की नहीं सुनेंगे। पापा गुस्सा होंगे, इसलिये कहेंगे कुछ नहीं। लेकिन करेंगे वही लिजलिजा शौक। मोटर साईकिल चलायेंगे तो तसल्ली से नहीं। रेश ड्राईविंग में थ्रिल महसूस होता है इन्हें। एक्सीडेंट का डर नहीं लगेगा। एक्सीडेंट कर लेंगे, प्लास्टर चढ़कर महीनों भुगत लेंगे। मगर इन्हें थ्रिल चाहिये।

यथासंभव वे बच्चों से कुछ नहीं कहते। किन्तु जब अर्थवत्ता बिल्कुल समझ में नहीं आती और सिलसिला बढ़ता जाता है तो कभी समझाकर और कभी नाराज होकर वे अपनी बात कहते हैं। मगर असर? असर कुछ नहीं होता है किसी पर।

ननिहाल में गुजारे हुए वे चार-पांच साल जिन्दगी में न तो जोड़ने लायक हैं और न काटने लायक। बस गुजर गए, ऐसे ही। छठी कक्षा के लिए कस्बे के छात्रावास में भेज दिया गया। बाद में पता लगा कि छात्रावास में उन पर होने वाले खर्च को लेकर नानाजी और पिताजी में काफी लिखा पढ़ी हुई थी। शायद कुछ कहा सुनी भी हुई थी। तभी दो-चार लोगों के कहने सुनने से पिताजी ने खर्च भेजना मंजूर किया था। छुट्टियों के दो महीने पिताजी के साथ गुजारने की सजा इस खर्च के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ गई थी।

गनीमत थी कि भूदेव मेधावी छात्रों में से थे और इसलिए छात्रवृति मिल जाती थी। वरना मौनी बाबा की तरह चुपचाप बिना कुछ मांगे पढ़ाई पूरी करना मुश्किल हो जाता उनके लिए। पिता जो कुछ भेजते थे वह उनके छात्रावास के खर्च के लिए तो काफी होता था लेकिन स्कूल की फीस, कॉपी-किताब उनके लिए छात्रवृत्ति में से ही जुटते थे। ऊपर से तुर्रा यह था कि जमींदार के बेटे के नाते सब लोग उन्हें विशेष मानकर चलते थे।

चार-पांच साल की अतृप्त अवधि में जो थोड़ा बहुत स्नेह ननिहाल में उन्हें मिला उसने एक संरक्षण की भावना उनमें पैदा कर दी थी। जिस दिन वे छात्रावास के लिए रवाना हुए आश्रय हीनता का आभास फिर उन्हें सिहरा गया था। वह उनके लिए दूसरे पाकिस्तान की विभीषिका थी।

कभी-कभी उन्हें लगता है पिता कितने भी हृदयहीन बने रहे हों भूदेव स्वयं उनके प्रति सहृदय कहां हो पाए? दिन प्रतिदिन पश्चिम के उद्दंड तथा स्वेच्छाचारी व्यवहार को अपना कर उन्होंने पिता को जो जवाब दिया यह नैतिक मूल्यों की दृष्टि से उचित था क्या ? आज यदि उनके बच्चे अन्दर ही अन्दर उनके खिलाफ बागी हो गए हैं तो उन्हें दोष क्यों देते हैं वे ? वे स्वयं भी तो अपने पिता के खिलाफ यही भूमिका निभाते रहे हैं। यद्यपि यह सच है कि भूदेव और उनके बच्चों की स्थितियों में कहीं साम्य नहीं है किन्तु अंग्रेजों का अन्धानुकरण करने का मनोवैज्ञानिक अनुप्रेरण भी तो महत्वपूर्ण है।

भूदेव की अपेक्षायें और निर्णय पलट कर कैसे उनके विरुद्ध खड़े हो गये, यह उनके लिये आज भी न सुलझने वाली गुत्थी है। उन्होंने भूदेव टाइम इन्जीनियर्स नाम से कारोबार चालू किया। अपने हरएक लड़के और पत्नी को उसका हिस्सेदार बनाया। उद्देश्य था उन सबको आर्थिक दृष्टि से विस्तृत तर देना। उनमें से कोई यह महसूस न करे कि अपनी किसी इच्छा को पूरा करने के लिये उसे पापा के सामने हाथ पसारना पड़ता है। आर्थिक परतंत्रता उनमें किसी संकीर्णता को उत्पन्न न होने दे।

मगर परिणाम क्या निकला उनके इस निर्णय का ? शाम होते ही छोटे-बड़े सब भूदेव के चारों ओर घिरने लगे बिना बिल के हुई कमाई का हाथों हाथ भुगतान पाने के लिए। पिता के प्रति अविश्वास की भावना पैदा होने लगी उन सब में। उन्हें अपने पिता की नीयत पर सन्देह होने लगा। इस प्रवृत्ति ने बढ़ते बढ़ते सबको इतने संकुचित दायरों में बांध दिया कि आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे को तो क्या पिता को भी एक पैसा देने के लिए कोई तैयार नहीं था उनमें से। एक बार जब भूदेव बम्बई गये हुये थे उनकी गैरहाजिरी में किसी ने बिजली का बिल तक जमा नहीं कराया। बिल की एवज जमा कराये रुपये कहीं डूब न जायें यही डर सबको त्रस्त किए रहा।

उन्हें पता तब लगा जब विभाग वाले कनैक्शन काटने के लिये आ पहुंचे। बड़ी मुश्किल से उन्हें लौटाकर भूदेव ने जुर्माना देकर बिल जमा कराया। किस विश्वास से अपने आश्रितों को आर्थिक स्वावलम्बन की डोर सौंपी थी उन्होंने ? सब विपरीत हो गया। वे पैसे से न डिगने वाले व्यक्तित्व बनाने के चक्कर में ऐसे व्यक्तित्वों का निर्माण कर बैठे जो पैसे के परम भक्त थे।

पैसे ने जो रंग उन्हें दिखाये वे चुभने वाले जरूर थे। मौके-बेमौके ये रंग जानलेवा भी साबित हुए थे। किंतु वे अनुभव उन्हें पैसे का पुजारी नहीं बना सके और उनके बच्चे बिना कटु अनुभवों का सामना किये, बिना कष्ट भोगे ही खून के रिश्तों को गौण मानकर पैसे को प्रधानता दे बैठे हैं।

भूदेव का तीसरा पाकिस्तान ! अर्थजनित गुत्थी को सुलझाया था उनके इस पाकिस्तान ने । मैट्रिक की परीक्षा देकर छुट्टियों मे जब वे अपने जमींदार पिता के घर लौटे थे, पिता ने पढ़ाई बन्द करके घर का कारोबार देखने का हुक्म उन्हें सुना दिया था । सामान्य स्थितियों में तो यह प्रस्ताव बुरा नहीं था लेकिन भूदेव के मनोमस्तिष्क पर पड़ी गहरी खाइयों में इतना ताब नहीं था कि जीवन भर पिता के निकट रहा जा सके । उन्होंने कलकत्ता निवासी अपने एक सहपाठी से पत्र व्यवहार करके एक नौकरी की व्यवस्था की थी ।

नौकरी की बात पिता को इतनी खराब लगी थी कि आपे से बाहर होकर उन्होंने पाजामा कमीज पहने भूदेव को खाली जेब घर से निकाल दिया था । गहराती रात में खाली हाथ वे पहले तो कई शंकाओं से घिरे अनिर्णय की स्थिति मे भयभीत से खड़े रह गये थे फिर गुस्से का एक अंधड़ चलने लगा था । उसी अंधड़ के वशीभूत पांच कोस पैदल चलकर वे निकटतम रेलवे स्टेशन पहुचे थे । बिना टिकट सफर करके मैले कपड़ो, धूल सने बालो और भूखे पेट को लेकर जब कलकत्ता पहुंचकर उन्होंने अपने धनाढ्य मित्र की कोठी में घुसना चाहा था, लॉन में पानी दे रहे माली ने उन्हें डांटकर भगाना चाहा था । "छोटे बाबू से मिलना है", सुनकर उसे विश्वास नही हुआ था । यह गंदा, मैला, फकीरवेशी और उसके छोटे बाबू ! साम्य था भी कहां ?

अपने कलकत्ता निवासी मित्र से ही कपड़े रुपए लेकर भूदेव ने तीसरे पाकिस्तान की चुनौतियों का सामना करना चालू किया था । वहीं रहते हुए उन्होने रुपया बचाया । शादी की । बाद में नौकरी छोड़कर मिलिटरी मे सप्लाईज का ठेका लिया । हर दृष्टि से सुखी जीवन स्वामी बनकर उन्होंने कई वर्षों के बाद अपने पिता से सम्पर्क किया था । पिता बूढ़े हो गए थे मगर अपनी धन सम्पदा का घमण्ड अब भी उनमे ज्यों का त्यों था । पुत्र के साथ कभी उन्होने कोई गलत व्यवहार किया था, इस बात का अहसास उन्हें कतई नहीं था ।

पिता की अकड़ भूदेव को उनका दुश्मन बना बैठी थी । उस दिन के बाद से उन्होने पिता को सच्चे अर्थों में कभी पिता नहीं माना है । न उन्हें वैसा सम्मान दिया है, न उनकी किसी छोटी-बड़ी इच्छा की पूर्ति की दृष्टि से कुछ किया ही है । हर काम में वे उनके प्रतिद्वन्द्वी बने । उनके खिलाफ बोलने, उन्हें नीचा दिखाने में उन्होंने कभी परहेज नही की ।

इसीलिए आज की स्थितियों में कभी कभी भूदेव को लगता है कि बच्चे उनके व्यवहार का अनुकरण कर रहे हैं । अपना अतीत और अपने पिता का सलूक न जाने कितनी बार भूदेव स्वय अपने बच्चो को बता चुके हैं । मगर उनमे से किसी को शायद उस चुभन का सही अहसास नहीं हुआ है । शायद वह उक्ति ही सही है, जो

तन लागे सो तन जाने, अन्यथा पिता के साथ उनका व्यवहार उनके बच्चों के व्यवहार या सोच विचार को प्रभावित नहीं करता।

कुछ दिनों से भूदेव का हट्टा-कट्टा, लम्बा-चौड़ा, मजबूत काठी वाला शरीर टूटा-टूटा सा रहता है। पिन्डलियां दर्द से कराहती रहती हैं। एक दिन अपने छोटे लड़के से उन्होंने पिंडलियां दबाने के लिए कहा था। उसने दबा दीं। अगले दिन उसने यह सोचने की जरा सी भी तकलीफ नहीं की कि पापा पिंडलियों में दर्द रहने की बात कह रहे थे, दबा दूं। वे चुप बने रहे। कुछ-कुछ दिनों के अन्तराल से अपने तीनों लड़कों से, इन दिनों दर्द रहने लगा है कहकर, उन्होंने पिंडलियां दबाने के लिए कहा। जिस दिन जिससे कहा उसने दबादीं, अगले दिन या उसके बाद उनमें से किसी ने उनसे इस सम्बन्ध में कोई चर्चा तक नहीं की।

कैसे तो भावुक हो उठे थे वे उस रात। पत्नी उनके पैर और पिंडलियां दबा रहीं थी और वे बच्चों के सलूक के बारे में सोच रहे थे। अपने होने की निरर्थकता का अहसास इस कदर छा गया था उनपर कि पत्नी का पास बैठना, पैर दबाना भी उन्हें अच्छा नहीं लगा था। करवट बदलकर तकिए में मुंह छिपाकर उन्होंने टांगें समेट लीं थीं। लाख पूछने पर भी पत्नी को न तो उन्होंने कोई जवाब दिया था, न नजर उठाकर उनकी तरफ देखा था।

उनकी खुद्दारी उन्हें याचना करने की इजाजत नहीं देती। अन्दर से बुरी तरह टूटते कसमसाते रहने के बावजूद वे मांग नहीं पाते, भले ही वह मांग उनके अधिकार क्षेत्र में क्यों न आती हो। तटस्थ भाव से विचार करते हैं तो उन्हें लगता है कि वे अपनी संतान से जो अपेक्षायें रखते हैं वे आवश्यकता से अधिक हैं। उन्हें कुछ कहना है, कुछ कराना है तो वे मुक्त और निर्द्वन्द्व होकर क्यों नहीं कह पाते! क्यों सोचते रहते हैं कि उनके बच्चों को अमुक बात अपने आप सोच लेनी चाहिए थी, अमुक काम अपने आप कर लेना चाहिए था? क्यों वे हर मुद्दे को इज्जत का सवाल बनाकर सोचते हैं? कभी-कभी जब वे अच्छी मनःस्थिति में होते हैं तो उन्हें इल्हाम होता है कि बचपन से अपने बाहुबल के सहारे इच्छानुसार यात्रापथ का चुनाव करते हुए शायद वे मनमाने पन के इतने आदी हो चुके हैं कि किसी का उनकी इच्छा के विरुद्ध जाना उनसे सहन नहीं होता।

पत्नी हैं कि भूदेव और उनके बच्चों में तालमेल बठाये हुए हैं। वरना शायद सड़ी गली हुई यह एक सूत्र दिखाई देने वाली रस्सी बहुत पहले टूट गई होती। बच्चे मां के सामने अपना हर रोना रो देते हैं, अपनी हर खुशी उनसे बांट लेते हैं। स्वयं भूदेव भी पत्नी से कोई रखरखाव नहीं करते। लेकिन पत्नी को पता होता है कि किसकी कौनसी बात दूसरे पक्ष को बता देने से विप्लव की संभावनायें है? इसलिए वे बहुत चतुराई से इधर की बात उधर और उधर की बात इधर सम्प्रेषित करती हैं। दोनों पक्षों की सुनकर, दोनो पक्षों को यथासम्भव सन्तुष्ट रखकर भी वे दोनों पक्षों में सतुलन बनाये हुए हैं।

बच्चे भूदेव की सख्ती को पसन्द नहीं करते, उन्हें थोड़ा नर्म व्यवहार करना चाहिये। इस बात को वे बच्चों की शिकायत के रूप में कभी नहीं रखेंगी पति के सामने। अपने सुझाव के रूप में रखेंगी।

कम से कम रात्रि का भोजन सब लोग साथ बैठकर करें, भूदेव की हमेशा ऐसी इच्छा रहती है। बच्चे उनके साथ बैठकर समय व्यतीत करने से कतराते रहते हैं। पत्नी बच्चों से इसी बात को जब कहेंगी तो उनके शब्द होंगे, "तुम लोगों के पापा दिन भर के थके मांदे रात को तुम सबके साथ बैठकर यह महसूस करना चाहते हैं कि वे जिनके लिये इतना श्रम करते हैं वे सब उनके साथ हैं, उनके नितान्त अपने हैं। तुम लोगों से इतना भी नहीं हो सकता कि रात का खाना उनके साथ बैठकर खालो?"

यह सलीकेदार, तमीज भरा प्रस्तुतीकरण उनको बच्चों से और बच्चों को उनसे अटकाये हुए है। उनके बनी पत्नी खाई को सतर्कता से कभी इस हद तक बढ़ने नहीं दिया कि कोई शब्द उसमें गिरकर दम तोड़ दे। पत्नी ने माध्यम बनकर उनके सम्बन्धों को मरने नहीं दिया इसलिये उनमें गरमी है। वरना शायद वे तटस्थ हो चुके होते, तटस्थता जो मृत सम्बन्धों की पर्याय है। अनुरक्ति-विरक्ति, सुख-दुख जो कुछ भी वे बच्चों के सन्दर्भ में महसूस करते हैं वह उस धड़कन का ही तो परिचायक है।

उन्नीस सौ सतालीस का विभाजन, भूदेव का चौथा पाकिस्तान मरी में सामने आया था। एक प्रतिष्ठित व्यवसायी के घर में जो कुछ हो सकता है, वह सब उनके पास था। फर्नीचर, मूल्यवान कपड़े, गहने, नकदी। लेकिन उस एक क्षण में जिन्दगी के वरण ने हाथ बढ़ाकर दो-चार गहने, पाँच सात सौ रुपये उठा लेने तक का अवसर नहीं दिया था उन्हें। पहाड़ी के एक ओर से बढ़ता हुआ शोर, उग्र सैलाब उनके प्राणों को इस तरह धमका रहा था कि दूसरी ओर के दरवाजे से निकल कर पहाड़ी उतर जाने के अतिरिक्त कुछ सूझने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

फिर वही खाली जेब, एक जोड़ी कपड़े, पत्नी और एक बच्चे का बोझ उनके पास था और मुकाबले में थी भूख, रोजगार की चिन्ता और आश्रयहीनता की स्थिति में फंसे आदमी को उपलब्ध विद्रूप। इस बार अनुभवों की एक शृंखला उनकी अर्जित पूंजी थी। उसी पूंजी के भरोसे वे कमर कसकर संग्राम के लिये निकल पड़े।

गरीब आदमी की न जाने कितने बार मौत होती है। वे कुछ दिनों तक बम्बई में रुके थे, अपने सौतेले भाई के पास। उसका कपड़े का व्यापार चलता था वहाँ। भूदेव की बम्बई में ही किसी रेलवे कान्ट्रैक्टर से नौकरी की बात चल रही थी।

जून का महीना था। दोपहर को टेबिल फैन चलाकर वे सोये हुए थे। एकाएक गर्मी के कारण नींद खुल गई। पंखा बंद था। उन्होंने उठकर देखा। पंखे का रेगुलेटर बन्द था। भतीजा वहां से निकल रहा था। उसे आवाज देकर उन्होंने बुलाया। पूछा कि पंखा किसने बन्द किया है तो जवाब में छोटे भाई की पत्नी की तीखी आवाज सुनाई दी, "खुद को तो कोई काम धंधा है नहीं। मुफ्त की रोटी खायेंगे। ऊपर से दिन-रात पंखा चलाकर टांगे फैलाकर सोयेंगे। ऐसे निखट्टू रिश्तेदार हमारे ही पल्ले पड़ने थे क्या ? हे भगवान !"

मूदेव के तन-बदन में आग लग गई थी। गुस्से को दबाने की कोशिश में उनका चेहरा पीला पड़ गया था। हाथ पैर कांपने लगे थे। 'हाय गरीबी', वे बस इतना ही सोच सके थे। यह उनकी वही बहू जैसी छोटे भाई की पत्नी थी जो अभी दो साल पहले तक उनके सम्मान में जमीन-आसमान एक कर देती थी। नाश्ते पर दूध, दही दोनो हाजिर रखती थी उनके लिये कि जो जी चाहेगा ले लेंगे। मगर तब वे पैसे वाले थे। सम्पन्न श्रेणी के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। इज्जत उनकी नहीं उनके पैसे की होती थी तब। अब इतने वर्षों के बाद जब वे फिर अमीर हैं, कार के बिना कहीं नही जाते; वही औरत इतनी मीठी हो गई है कि मुफलिसी के दौर की वह घटना कोई कल्पित कहानी प्रतीत होती है।

पैसा, व्यवहार, संस्कार और इसी तरह के अन्य शस्त्र शायद अमोघ नहीं हैं, वरना चार-चार विभाजनों के दंश को पीकर जिस आदमी ने अपनी मर्यादाएं निश्चित की हों उसे इस उम्र में आकर ऐसा क्यो लगता कि उसके और बच्चों के बीच बहुत बड़ा शून्य पैदा हो गया है। यह सच है कि वह शून्य उन्हें पत्नी के रहते महसूस नहीं होता। खुदा न खास्ता अगर उनकी पत्नी उनसे पहले मर गई तो क्या होगा ? वर्षों से अपना लगने वाले घर के हर जिन्दा प्राणी से अपरिचित होकर रहना कितना पीड़ादायक अनुभव होगा ?

मूदेव को लगता है, पत्नी की मृत्यु के बाद वे अपने बच्चों के साथ रह नही सकेंगे। आज उनके पास एक विचारशील मित्र के रूप में बात सुनने के लिये उनकी पत्नी है। तब जब कोई मित्र उन्हें उपलब्ध नही होगा वे तो घुट-घुटकर पागल हो जायेंगे। उस समय तक शायद यह दिन प्रति दिन विस्तृत होता अन्तराल और बढ़ चुका होगा। उनकी बढ़ी हुई उम्र से प्रेरणा पाकर बच्चे ज्यादा स्वेच्छाचारी हो चुके होंगे। मुंह देख-देखकर खाने पीने, उठने-बैठने की यन्त्रणा उनका मस्तिष्क बर्दाश्त कर सकेगा क्या ?

एक काम नही हो सकता क्या, वे सोचते हैं। बच्चों को बिल्कुल स्वतंत्र करदें और स्वयं हरिद्वार या ऋषिकेश चले जायें ! जीवन के अंतिम चरण में स्वेच्छा से अपनाया हुआ विभाजन, उनके जीवन का पांचवां पाकिस्तान, शायद उन्हें सभी

प्रकार की चिंताओं से मुक्ति दिला सके। पीढ़ी अन्तराल और पत्नी की मध्यस्थता सब कुछ अस्तित्व-विहीन होकर उन्हें तनाव मुक्त कर सकें।

लेकिन यह विचार भी नया कहां है ? न जाने कितनी बार रात को सोने से पहले उन्होंने ठीक यही निर्णय लिया है। दूसरे दिन सुबह उठने के बाद निर्णय जरूर याद होता है, उसकी पूर्ति को वे खो चुके होते हैं। आज की रात नया होकर आया यह विचार उनका मोहग्रस्त हृदय सुबह तक ताजा रख सके तो कोई बात बने। यह सोचते समय वे खुद भी महसूस करते हैं कि इस विचार को कार्यान्वित वे कर नहीं पायेंगे। अपनी जानकारी में वे कितने भी आधुनिक क्यों न बनते हों उनके खून में दौड़ता पुरातनपंथी आसानी से पिंड थोड़े ही छोड़ेगा उनका।



भगवान ग्रटलानी

10 मार्च 1945, लारकाना (सिन्ध)
बी. एस.सी.

भारतीय स्टेट बैंक, गोंगानेरी गेट, जयपुर में अधिकारी।

पालतू (सिन्धी में पूर्णांकी नाटक)
भंडारो (सिन्धी में एकांकी संग्रह)
तीन सौ से अधिक रचनाएँ विभिन्न पत्र, पत्रिकाओं तथा आकाशवाणी से प्रकाशित, प्रसारित।

"पालतू" पर केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय और राजस्थान सिन्धी अकादमी से अलग-अलग 2500/-रु० का पुरस्कार।

भाषा विभाग हरियाणा से पांच बार, राजस्थान सिन्धी अकादमी से तीन बार, मुक्ता, आशीर्वाद, इन्द्र धनुष की ओर से कहानियां एकांकियां पुरस्कृत, राजस्थान पत्रिका में नाट्य समीक्षा का दो वर्ष तक स्तम्भ लेखन, द्विमासिक पत्र "सेतु" का चारवर्ष तक सम्पादन।